प्राचीन भारतीय वेश-भूषा

डा० मोतीचन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी०,
डायरेक्टर, प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम,
बम्बई

भारती-भण्डार
प्रयाग

भारत-दर्पण-ग्रंथमाला
ग्रंथ-संख्या—५

—विक्रेता—

भारती-भंडार
लीडर प्रेस, प्रयाग

सस्ता साहित्य-मंडल
कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण
सं० २००७ वि०
मूल्य १२)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विषय-सूची

भूमिका

कुछ वर्षों से भारतीय संस्कृति का नाम देश विदेशों में फैल रहा है और लोग उस संस्कृति के सब अंगों को जानने के लिए उत्सुक हैं। पर अभाग्यवश भारतीय संस्कृति का अर्थ अभी तक इस देश की गूढ़ विचारधाराओं और नाना मत मतांतरों तक ही सीमित है। भारतीय दर्शनों और धर्मों के प्रति इस अनुराग का नतीजा यह हुआ है कि संस्कृति के दूसरे अंग अछूते ही छूट गये हैं। विद्वानों ने भारतीय कला का, जो हमारी प्राचीन संस्कृति का एक विशिष्ट अंग है, कुछ न कुछ अध्ययन किया है, पर उसके समझाने में कुछ विद्वानों द्वारा छायावादी विचारों का आश्रय लेने से, हम उस कला में केवल अपनी दार्शनिक मनोवृत्तियों का ही प्रतिबिम्ब देखने लगे हैं। कला के इस दार्शनिक रूप की विचारधारा इतने कठिन शब्दों में व्यक्त की जाती है कि बिना भारतीय दर्शन के ज्ञान के वह समझी तक नहीं जा सकती। कला के दार्शनिक सिद्धांतों पर इतना अधिक जोर देने का नतीजा यह हुआ है कि 'कला के लिए कला' के सिद्धांत को ले कर हम भारतीय कला की समीक्षा करने में डरते हैं। दर्शन की पेचीदा विचारधाराओं में डूब कर कला अपना निजत्व खो बैठती है। कला की दार्शनिक पृष्ठिका भारतीय कला के उस महत् उद्देश्य की अवहेलना करती है, जिसके अनुसार लोक जनित कला सब के जीवन और भावनाओं का प्रतिबिम्ब है और जिसके द्वारा रसानुभूति करने का सब को अधिकार है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या अतीत के प्रति आध्यात्मिक विचार ही भारतीय संस्कृति है? कदापि नहीं। भारतीय द्रष्टाओं के मतानुसार जीवन का परम ध्येय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है, इन चारों के संतुलित और सम्मिलित प्रयोग से ही हम पूर्णता और विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं। अगर हम केवल धर्म और मोक्ष के साधन में ही लगे रहें, तो इसके माने होते हैं कि जीवन में अर्थ और काम की कोई महत्ता ही नहीं है। ऐसा करने से जीवन एकांगी बन जाता है और उस पूर्णता और गौरव तक नहीं पहुँच सकता, जो आदर्श जीवन के लक्ष्य है।

इसमें संदेह नहीं कि दर्शन और धार्मिक तर्क भारतीय जीवन को बहुत प्रिय थे और जहां तक सूक्ष्म से सूक्ष्म आधिदैविक विचारधाराओं से सृजन और मनन का संबंध है, भारतीय संसार के बड़े से बड़े दर्शनों से टक्कर लेते हुए आगे निकल जाते हैं। पर साथ ही साथ भारतीय जीवन और उसके आधिभौतिक साधनों से भी प्रेम करते थे। सुसज्जित महल, करीनेदार नगर, अनेक जातियों और वर्णों वाले दास-दासियों से युक्त राज सभाएं, वादक और नर्तक, चमचमाते हुए गहने और अनेक तरह की पोशाकें और कपड़े, प्रसाधन के लिए अनेक भांति के गंध द्रव्य, ये सब भी तो भारतीय संस्कृति और जीवन के प्रतीक थे। दार्शनिकों को सभ्यता के इन बाह्य प्रतीकों में अस्थिरता भले ही देख पड़ती हो, लेकिन सांसारिकता में पड़े हुए एक साधारण जन के लिए तो सभ्यता के ये प्रतीक सत्य और सुंदर देख पड़ते हैं। सभ्यता के इन बाह्य प्रतीकों से हम इतिहास की सूखी हड्डियों में जान डाल सकते हैं। कोरी घटनाओं के विवरण से यह संभव नहीं है।

भारतीय संस्कृति की पूरी तस्वीर खींचने के लिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हम उसके भौतिक पहलुओं की अच्छी तरह से जांच-पड़ताल करें। इस जांच पड़ताल के लिए संस्कृत, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश में काफी सामग्री है। इन से मिले विवरणों की सहायता हम पुरातत्व, मूर्तियों और चित्रों से जांच

सकते हैं। इस संबंध में हम यह कह देना उचित समझते हैं कि हमें साहित्य को सांस्कृतिक इतिहास में सब से ऊँचा स्थान नहीं देना चाहिए। एक लेखक चाहे वह कितना ही विद्वान् अथवा सूक्ष्म-दर्शक हो, एक वस्तु विशेष का विवरण हमारे सामने उतनी खूबी से नहीं रख सकता, जितनी सफाई या सुंदरता के साथ एक मूर्ति, स्तर अथवा चित्रकार। साहित्यिक पुरातत्व का अपने क्षेत्र में महत्त्व है, लेकिन और बच्चे सबूतों के रहते हुए इसको प्रधानता न देना ही श्रेयस्कर है।

इस पुस्तक का उद्देश्य प्राचीन भारत के सांस्कृतिक जीवन का एक पहलू अर्थात् वेश-भूषा का इतिहास लोगों के सामने रखना है। अभी तक विद्वानों ने भारतीय संस्कृति के इस पहलू पर ध्यान तक नहीं दिया है, क्योंकि उनकी राय में भारतीय वेश-भूषा में विकास क्रम नहीं है। आज धोती, चादर और पगड़ी पहनी जाती है, वही दो हजार बरस पहले भी पहनी जाती थी, फिर ऐसी रूढ़िगत वेश-भूषा का इतिहास ही क्या ? भारतीय वेश-भूषा के इतिहास की ओर विद्वानों का ध्यान न देने का एक कारण यह भी था कि लोगों का यह विश्वास था और अब भी है कि सिले कपड़े इस देश में १६ वीं शताब्दी में मुसलमान लाए। विद्वानों के भारतीय वेश भूषा के संबंध में दोनों विचार भ्रामक हैं। यह सही है कि अब तक भारतीय धोती, चादर, दुपट्टे और पगड़ी जो हमारे पहरावे में दो हजार बरस पहले प्रचलित थीं, पहनते हैं, लेकिन प्राचीन और आधुनिक वेश-भूषाओं की समानता यहीं खतम हो जाती है। कौन कह सकता है कि आज की धोती और दो हजार बरस पहले की धोती एक ही तरह से पहनी जाती थी अथवा आज की पगड़ी और तब की पगड़ी एक सी है? अब की साड़ी और तब की साड़ी में भी बहुत बड़ा अंतर है। ठीक बात तो यह है कि भारतीय इतिहास के प्रत्येक युग में कपड़े पहरने का ढंग बदल जाता है। सिले कपड़ों का भी यही हाल है। कम से कम वैदिक युग से लेकर ७ वीं सदी तक सिले कपड़ों के उल्लेख साहित्य में मिलते हैं और उनका अंकन भी बहुधा अर्धचित्रों और चित्रों में हुआ है। बात यह है कि इस उष्णता-प्रधान देश में धोती चादर ही आरामदेह और स्वास्थ्य-वर्धक पहरावा था और उसे लोग चाव से पहनते थे, पर इसके यह माने नहीं कि सिले वस्त्र कभी पहने ही नहीं जाते थे। स्त्रियां तो अक्सर कंचुक या चोली पहनतीं थीं। विदेशी संपर्क से सिले कपड़ों का इस देश में और अधिक प्रचार बढ़ा, पर जन-साधारण अपनी धोती चादर को कभी न छोड़ सका। इस बात को मानने का भी पर्याप्त कारण है कि बहुत प्राचीन काल से गंधार और पंजाब में लोग ठंडक की वजह से सिले वस्त्र पहनते थे और इन सिले वस्त्रों में हम यूनानी, ईरानी और मध्य एशिया का काफी प्रभाव देखते हैं क्योंकि इन प्रान्तों का उपरोक्त जातियों से बहुत प्राचीन काल से घनिष्ठ संबंध रहा और ऐसी अवस्था में दोनों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान का होना स्वाभाविक था।

वेश भूषा के इतिहास में भारतीय वस्त्रों का भी इतिहास आ जाता है, क्योंकि प्राचीन पहरावों में हमारी दिलचस्पी और बढ़ जाती है जब हम ठीक-ठीक जान लेते हैं कि वे किन कपड़ों से बनते थे और बड़े सादे होते थे अथवा नक्काशीदार। भारत के प्राचीन वस्त्र-व्यवसाय के इतिहास के लिए भी ऐसी जांच-पड़ताल बहुत जरूरी है। उदाहरणार्थ अभी तक हम प्राचीन भारतीय वस्त्रों के इतिहास के लिए यूनानी लेखकों के ही आश्रित थे और उनसे भी हमें उन कपड़ों के भारतीय नाम नहीं मिलते। हमारा साहित्य इस कमी को बहुत कुछ दूर कर देता है। वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्यों तथा आख्यायिकाओं और कोशों में वस्त्रों के ऐसे सैकड़ों नाम सुरक्षित हैं। इस वृहद् साहित्य में आयी तालिकाओं और उनकी टीकाओं से उन वस्त्रों के केवल नाम ही नहीं, उनके विवरण भी मिलते हैं। साहित्य से यह भी पता चलता है कि देश के किन-किन भागों और नगरों में अच्छे कपड़े बनते थे। इन तालिकाओं में सन और वल्कल के बने वस्त्रों के

नाम आये हैं, जिन्हें बहुधा साधु अथवा बहुत ही साधारण लोग पहनते थे । इनमें बहुत से चमडो और समूरो के नाम भी आये हैं । कृष्णाजिन ऐसे चमडे तो ऋषि मुनि पवित्रता के खयाल से पहनते थे, पर दूसरे चमडे तो लगता है इस देश के बाहर भेजे जाते थे, क्योंकि इस गरम देश में समूर अथवा चमडों के बने वस्त्र पहनना असभव था।

यह कहना कठिन है कि आदिम युग में भारतीयो की वेश भूषा क्या थी । हमें अभी तक की खोजो से यह पता नहीं लगा है कि वे कपडे पहनते थे अथवा नहीं और अगर कपडे पहनते थे, तो वे चमडे के बने होते थे अथवा पत्तियों और छालों के । प्रागैतिहासिक गुफा चित्रो से तो यही पता चलता है कि उस युग के लोग प्राय नग्न रहते थे और अचेलकत्व कोई बुरी बात नहीं मानी जाती थी । इस सबध में हम कुछ प्राचीन सप्रदायो में अचेलकत्व का उल्लेख कर देना चाहते है। बौद्ध साहित्य में तो ऐसे अनेक नंगे साधुओं के सप्रदायो का उल्लेख आया है जिनमें मुख्य जैन थे । लगता है उनका नग्नत्व उस प्राचीन समाज के नग्नत्व की ओर इशारा करता है जब शरीर ढकने की भावना का उदय नहीं हुआ था । धीरे धीरे जब सभ्यता ने आगे कदम बढाया, तब समाज तो वस्त्रों का आदी हो गया, पर उसके धार्मिक गुरु नग्नत्व की प्राचीनतम प्रथा अपनाये रहे, जो एक समय सर्वसाधारण का नियम था। वैदिक और बाद के साहित्यों में आये चमडे, वल्कल और तृणों के वस्त्र भी उसी आदि सभ्यता की ओर सकेत करते हैं । बात यह है कि पूरा समाज एक साथ ही उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं होता, उसका कुछ भाग हमेशा पीछे रह जाता है और प्राचीनता को निभाये चलता है । इन्हीं पिछडे लोगो के विश्वासों और आदतों से हम बहुत प्राचीन काल की सभ्यता का चित्र खींच सकते हैं ।

सब से पहले हमें भारतीय वेश भूषा का पता सिंधु घाटी से मिली प्रागैतिहासिक सभ्यता से मिलता है । मोहेन जोदडो और हडप्पा की यह सभ्यता ३५०० ई० पू० से लेकर १५०० ई० पू० तक फली फूली और इसका सबध मध्य पूर्व की सभ्यताओं से था । भौतिक सभ्यता के काफी आगे बढने पर भी लोग बहुत ही खफीफ कपडे पहनते थे । बहुधा लोग नगे रहते थे और अगर कपडे पहनते भी थे तो वह लगोटी या धोती छोटी तहमत होती थी। कभी-कभी लोग चादर ओढ लेते थे और अपने बाल फीते से बाधते थे। स्त्रिया कभी कभी पखे के आकार का शिरोवस्त्र पहनतीं थीं।

यह कहना कठिन है कि लोग सिले वस्त्र पहनते थे अथवा नहीं, गो कि एक मूर्ति कमीज जैसा वस्त्र पहिने दिखलायी गयी है । लगता है लोग कभी-कभी चिपकी और नोक्दार टोपिया भी पहनते थे ।

स्त्रिया करधनी से बधी लगोटियां पहनतीं थीं। एक स्त्री एक धोती पहरे दिखलाई गयी है । शिरो वस्त्र पखाकार होते थे और लगता है फ्रेम पर चढे माडीदार कपडे से बनते थे । इन शिरोवस्त्रों पर कभी कभी अलकार भी बने होते थे । कभी-कभी शिरोवस्त्र तिपाई नुमा होते थे । स्त्रिया कभी कभी पगडी भी पहनतीं थीं।

तकुओं की फिरकियो के मिलने से पता चलता है कि लोग सूत कातते थे । एक वस्त्र के टुकडे के वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि लोग कपास से अवगत थे । इससे इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि बाबुली भाषा का सिंधु और यूनानी भाषा का सिंडोन शब्द सिंधु देश के बने कपास के कपडे के लिए ही थे । इस तरह कपास से कपडे बनाने का श्रेय सब से पहले इसी देश को मिलता है।

मोहेन जोदडो के नष्ट होने (२५०० ई० पू०) और आर्यों के भारत आने (१५०० ई० पू०) के अतर में भारतीय सभ्यता की क्या अवस्था थी, इसका हमें पता नहीं है । जब इस अधकार युग का परदा उठता है, तब हमें वैदिक सभ्यता का दर्शन होता है। वैदिक युग की सभ्यता एक युग की न हो कर करीब

हजार वरस में फैली है और उसमें भिन्न-भिन्न स्तर मिलते है। लेकिन जहां तक वस्त्र-भूषा का संबंध है, उसमें ८०० वरस तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस युग में विजेता आर्यों ने विजितों से बहुत से वस्त्र ग्रहण कर लिये, फिर भी अपने निजी वस्त्रों के प्रति उनका मोह बना रहा।

कातना और बुनना आर्य सभ्यता के मुख्य अंग थे। ऊनी वस्त्र को आविक कहते थे । सिंध की घाटी में अच्छे ऊनी कपड़े मिलते थे और रावी के प्रदेश के धुले और रंगीन ऊनी कपड़े प्रसिद्ध थे। कंबल और शामुल्य ऊनी वस्त्र थे । शामुल्य समूर हो सकता है ।

बहुत प्राचीन युग में आर्य गोचर्म पहनते थे, पर बाद में गायों की आर्थिक उपयोगिता देखते हुए यह प्रथा छोड़ दी गयी । कृष्णाजिन बहुत पवित्र माना जाता था और यज्ञादि के अवसरों पर पहना जाता था । बकरो की खालें भी ओढ़ी जाती थीं । इस देश की जंगली जातियां और व्रात्य भी चमड़ो के कपड़े पहनते थे।

वैदिक साहित्य में कुछ ऐसे वस्त्रों के नाम आये है जिनकी ठीक ठीक पहचान नहीं हो सकती । वरासी शायद वरस नाम के वृक्ष की छाल के रेशे से बनता था। दूर्श शायद किसी किस्म का ऊनी वस्त्र था, क्षौम अलसी की छाल के रेशे से बना वस्त्र होता था जो कभी-कभी रंगीन भी होता था। पांडवाविक ऊन का बना सफेद वस्त्र था । तार्प्य की ठीक ठीक पहचान नहीं हो सकती, शायद यह किसी तरह का रेशमी कपड़ा था । कपास का सब से पहला उल्लेख आश्वलायन श्रौतसूत्र में आया है, इसके कई कारण हो सकते है। (१) सिंधु सभ्यता का आर्यो को ज्ञान नहीं था । पूर्वी भारत में आने पर उन्होंने कपास के कातने बुनने से परिचय प्राप्त किया। (२) शायद अनार्य वस्त्र होने से आर्य इसके व्यवहार करने में हिचकिचाते हों, पर इसकी संभावना कम है ।

कपड़ा बुनने वाली स्त्रियों के लिए वायित्रि और सिरी शब्दों का व्यवहार हुआ है। वैदिक साहित्य में बुनाई के बहुत से शब्द यथा ओतु (वाना), तंतु (सूत), तंत्र (ताना), वेमन (करघा), प्राचीनतान (आगे खिचा ताना), वाय (बुनकर), मयूख (ढरकी), आये है।

वैदिक साहित्य में पहरावे के लिए साधारणतः वासस् और वसन शब्दों का प्रयोग हुआ है । सुवसन और सुवासस् से अच्छी तरह से कपड़े पहनने का बोध होता है । सुरभि के अर्थ ठीक तरह से बदन पर बैठने वाला कपड़ा है । अच्छे कपड़े पहनने वालों का समाज में आदर होता था, रंग-विरंगे कपड़े भी पहने जाते थे ।

कपड़ों पर कभी-कभी कारचोवी का काम होता था । कपड़ों में झालर (सिच्) और अलंकृत किनारे (आरोक) भी होते थे । धुले और कोरे कपड़े पहने जाते थे। रंगीली स्त्रियां रंगीन और सुनहरे काम वाले कपड़े पहनतीं थीं। व्रात्य नीले कपड़ों के शौकीन थे ।

कसीदे के काम को पेशस् और कसीदे काढ़ने वालियों को पेशकारी कहते थे । कसीदे का काम वस्त्रों के ऊपर नीचे और मध्य में किया जाता था। कुछ अलंकार बुने जाते थे और कुछ काढ़े। खूब काम करने से सुईकार की पटुता बढ़ती थी।

आर्य नीवि (लंगोटी), वासस् और अधिवास पहनते थे । नीवि शायद तहमतनुमा वस्त्र था। कोई-कोई इसकी व्युत्पत्ति तमिळ नइ से जिसका अर्थ बुनना है, करते है। नीवि से प्रघान अथवा पटका लटका होता था जो फुदनों से सजा होता था। स्त्रियां और पुरुष दोनों अपने शरीर को ढाकने के लिए उपवसन, पर्याणहन, द्रापि और अत्क पहनते थे । उपवसन और पर्याणहन चादर थे और प्रतिधि स्तन पट्ट। अत्क पूरे शरीर का लंबा कंचुक था और द्रापि कोई कोटनुमा वस्त्र । उष्णीष, जिसका उल्लेख सर्व

प्रथम अथर्ववेद में आया है, राजे यज्ञादि अवसरों पर पहनते थे, कभी कभी स्त्रियां भी पगड़ी पहनती थीं। व्रात्यों के उष्णीष में कई फेंटे होते थे और वह एक तरफ झुका कर बांधा जाता था। जूतों का उल्लेख कम है, वट्टूरिणापाद शायद लड़ाई में पहनने का जूता था। उपानह यज्ञ के अवसर पर यजमान और व्रात्य पहनते थे।

यज्ञ के अवसर पर शुद्ध अनाहूत वस्त्र पहने जाते थे। लोगों का विश्वास था कि बाने में अग्नि, ताने में वायु, नीवि में पितृ, प्रघात में नाग, सूत में विश्वेदेवा तथा आरोक में नक्षत्रों का अधिकार है। इस विश्वास से शायद यह मतलब हो कि वस्त्र की पवित्रता से उसमें भूत प्रेत नहीं घुस सकते थे न उस में जादू टोना लग सकता था।

राजा धोती, चादर और पगड़ी पहनते थे। पगड़ी की जगह कभी-कभी पट्टियों से काम चल जाता था। यज्ञ के अवसर पर स्त्रियां रसना पहनतीं थीं। दीक्षित वस्त्र के ऊपर रेशमी चडातक जो अधोरुक जैसा कोई वस्त्र था पहिनतीं थीं।

व्रात्य उष्णीष, काली गोटवाले कपड़े और बकरों की खाल पहनते थे। अनुयायी व्रात्यों के कपड़ों के किनारे लाल होते थे और उनकी छोरें बटी हुईं। सूत्रों के अनुसार व्रात्य लाल पगड़ी और कुरते पहनते थे, उनकी पगड़ी टेढ़ी बंधी होती थी। वे जूते भी पहनते थे।

महाजनपद युग, शशु नागों और नंदों (६४२ ३२० ई० पू०) में भारतीय सभ्यता और आगे बढ़ी। इस युग के इतिहास की सामग्री हमें जैन सूत्रों, बौद्ध पिटकों और ब्राह्मण सूत्र ग्रंथों में मिलती है। इस युग की आर्य सभ्यता ग्रामों से निकल कर नगरों में पहुंच चुकी थी और देश का कला-कौशल काफी आगे बढ़ चुका था। कपास, क्षौम, रेशम और ऊनी कपड़ों का काफी चलन था। जातकों में सुईकार (पेसकार), बेंत बिनने वाला (नलकार) और बुनकर (तन्तुवाय) के व्यवसायों को नीचकर्म कहा है। उपरोक्त भाव बौद्धों के नहीं हो सकते, क्योंकि बुद्ध तो जात-पात मानते ही न थे, लगता है कहानियों में जाति पांति की भावना वैदिक समाज की वर्ण व्यवस्था की द्योतक है। जैन सूत्र तो दरजियों, बुनकरों इत्यादि को शिल्पार्यों की श्रेणी में रखते हैं।

इस युग में कपास की खूब खेती होती थी और बनारस की कपास मशहूर थी। रुई धुनने, कातने और सूत की गड्डियां बनाने का भी वर्णन है। रेशमी कपड़े भी पहने जाते थे। वाह्लीक और चीन से भी रेशमी कपड़े आते थे। क्षौम के बने कपड़े बहुत महीन और सुन्दर होते थे। यह कपड़ा अलसी की छाल के रेशों से बनता था। उड्डीयान और गंधार के रक्त कंबल बहुत मशहूर थे। शिवि देश के धुस्सों की तो काफी कीमत होती थी। पंजाब और गंधार ऊनी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध थे। पंजाब, उत्तरी सीमा प्रान्त, पूर्वी अफगानिस्तान से खालें कीमती शाल, समूर इत्यादि इस देश में आते थे। इस युग में पश्मीनों का बड़ा नाम था। आधुनिक पठानकोट में कोटुंबर नाम के बहुत ही अच्छे ऊनी वस्त्र बनते थे। किनाब को हिरण्य वस्त्र कहते थे।

काशी में बहुत अच्छे कपड़े बनते थे। कहा जाता है कि बनारस के बने कपड़े में बुद्ध का मृत शरीर लपेटा गया था। ये कपड़े नीले, पीले, लाल और सफेद होते थे तथा इनका पोत मुलायम होता था। ये कपड़े सूती होते थे। बनारस अपनी अच्छी रुई और धोने के पानी के कारण सूती कपड़ों के लिए मशहूर था। बनारस में रेशमी और ऊनी वस्त्र भी बनते थे। बनारस की अड्डी की एक जगह बड़ी प्रशंसा की गयी है। बहुत मामूली दरजे के कपड़े सन, भंगेला, फल के रेशों, कुश, वल्कल तथा एरगु, मोरगु और मज्जारू

नाम के तृणों से भी बनते थे। तरह-तरह के चमड़ों का प्रयोग वस्त्र और बिछावन के लिए किया जाता था। मालूम तो यह पड़ता है उस समय चमड़े बहुत उपलब्ध थे और दक्षिणापथ में तो चमड़े पहनने का काफी रिवाज था।

चांदनी, मेजपोश, परदे इत्यादि भी सादे अथवा ऊनी होते थे। गोणक बकरे के बाल से बने आस्तरण होते थे। लगता है यह कपड़ा ईरान से आता था जहां इसे कौनकेस कहते थे। ईरान में बना कौनकेस बाबुल भी जाता था जहां इसे लोग अधोवस्त्र की तरह पहनते थे। चित्तक ऊनी पट्टियों को सीकर बना कालीन होता था। सफेद कालीन को पलिका कहते थे तथा फूलदार कालीन का नाम पटलिका था। रजाई को तूलिका कहते थे। सिंह, व्याघ्र इत्यादि के चित्रों से अलंकृत कालीन विकटिका थी। ऊद विलाव की खालों से कंबल बनते थे। रूखे रोयें वाले कंबल एकंतलोमी कहे जाते थे। कट्टिस्स नाम के आस्तरण में जवाहर जड़े होते थे। कोसेय्य रेशमी कालीन को और कुत्तक बड़े भारी कालीन को कहते थे। हाथी, घोड़ों और रथों के लिए भी आस्तरण होते थे। मृगचर्म साट कर कंबल बनते थे। कदली मृग के समूरों से भी आस्तरण बनते थे। चिमिलिका चांदनी थी। वाहीतिक १६ हाथ लंबी और ८ हाथ चौड़ी ऊनी चादर थी। नमतक नमदा था और कोजव लंबे रोयें वाला कंबल।

कपड़े सज्जी खार में धोये जाते थे। कपड़े नीले, हरे, पीले, लाल और मजीठिया रंगों में रंगे भी जाते थे। भिक्षुओं को पीत वर्ण छोड़ कर और किसी रंग के कपड़े पहनने की आज्ञा न थी।

ब्राह्मण और श्रमण सन के बने कपड़े, कफन के कपड़े, घूर पर फेंके चिथड़ों के बने वस्त्र, तिरीट के रेशे से बने वस्त्र, मृग चर्म, कुश चीर, वल्कल, केस कंबल, वाल कंबल, उलूक पंख कंबल इत्यादि पहन सकते थे। उपरोक्त कपड़े हिंदू साधुओं के भिन्न-भिन्न वर्गों में प्रचलित थे।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के वस्त्र यथा संघाटी, अन्तरवासक और उत्तरासंग एक होते थे। इन तीनों के सिवाय, प्रत्यस्तरण, कंडूक प्रतिच्छादन, आयोगपट्ट, कायबंध का भी वे उपयोग कर सकते थे। कायबंध के किनारो पर पट्टियां लगी होती थीं और सकरपारेदार तगानी का काम। वस्त्रों में भिक्षु तुकमेक लगा सकते थे। अलंकृत वस्त्रों के पहनने की आज्ञा उन्हें नहीं थी।

बौद्ध भिक्षु अपने कपड़े स्वयं बुन सकते थे। करघे को तंतक, ढरकी को वेमक, टट्टी को शलाका, और डोर को वट्ट कहते थे।

भिक्षुणियां अन्तरवासक और संघाटी के सिवाय कंचुक भी पहन सकती थीं। एकांत में उन्हें एक तिकोने लंगोट पहनने की भी आज्ञा थी।

जैन साधु केवल तीन वस्त्र रख सकते थे। इनमें दो क्षौम की धोतियां होती थीं और एक ऊनी चादर। कपड़े धोने और रंगने का उन्हें अधिकार न था।

साधारण गृहस्थ अंतरवासक, उत्तरासंग और उष्णीष पहनते थे। स्त्रियां और पुरुष दोनों ही कंचुक पहन सकते थे। स्त्रियां मजबूत साड़ियां पहनती थीं। लोग अपने कपड़े बड़े संवार कर पहनते थे और अपने शरीर पर फबने वाले रंग के कपड़े ही उनको विशेष प्रिय थे। स्त्रियां तो अपने कपड़े बड़े ही सुरुचि से संभाल कर पहनती थीं। धोती हस्तिशौंडिक (हाथी के सूंड़ जैसी), मत्स्यवालक (मछली की पूंछ जैसी), चतुष्कर्णक (चौकोर), तालवृंतक (पंखे के आकार की), और शतवल्लिक (सौ चूननों वाली) ढंग से पहनी जाती थी। कमरबंद या कायबंध कई तरह के होते थे यथा कलाबुक (रस्सी का बना) डेड्डुभक (डेढ़े सांप की शकल का) मुरज (ढोल के आकार का), और मद्दवीन (अलंकार सहित)। स्त्रियां भी कमरबंद और पटके

पहनती थी, पर भिक्षुणिया केवल एक फंदे वाले सादे कमरबद पहन सकती थीं। पटके बास के रेशे, चर्म पट्ट, ऊनी पट्टी, गुथी हुई पट्टी और चोल वस्त्र से बनते थे।

जूते पहनने का काफी रवाज था। जूतों में एक से लेकर चार तल्ले तक होते थे और वे तरह तरह के रंगीन चमडो से बनते थे, लेकिन ऐसे जूते केवल गृहस्थ ही पहन सकते थे। जूतों में निम्नलिखित प्रकार होते थे—पुटबद्ध (घुटने तक के जूते), पालिगुठिम (पैर ढकने वाले जूते), खल्लकबद्ध (आधुनिक पेशावरी जूते जैसा), मेंडविषाण वद्धिक (जूते के नोक पर मेंढ की सींग होती थी); अजविषाण वद्धिक (बकरे की सींग वाला), वृश्चिकालिक (जूते पर बिच्छू की पछ जैसा अलकार होता था), मोरपिछपरिसिब्बित (तल्ले या बद्धों में मोर पख सिले होते थे), तूलपुण्णिक (रुई से भरा जूता) और तित्तिर पट्टिक (तीतर के परों जैसी बनावट)। बौद्ध भिक्षु उपदेश सुनते समय जूते और चप्पल नहीं पहन सकते थे। उपरोक्त जूतों के अलग बहुत से वन्यपशुओं के चमडो से भी जूते बनते थे। जूते पहनने का इस युग में इतना रवाज था कि चर्मकार के व्यवसाय का जातकों में कई बार उल्लेख आया है। जूतों के सिवाय गृहस्थ तृण, मूज, तालपत्र, बास और लकडी की बनी चप्पलें और पादुकाए भी होती थीं। कुछ शौकीन लोग सोने चादी और रत्नों से जडित पादुकाए भी पहनते थे।

इस युग के साहित्य में कभी कभी विशेष तरह की वेश भूषाओं के उल्लेख आ जाते हैं। प्रतियोगिता के समय एक धनुर्धारी एक सकच्छ लाल धोती, लाल कमरबद, सुनहला कचुक और उष्णीष पहने बतलाया गया है। राजे कभी-कभी दुकूल चुबट पहनते थे, लेकिन यह पता नहीं लगता कि चुबट कैसा वस्त्र था।

इस युग में सिलाई की कला बहुत उन्नत हो चुकी थी और सिलाई सबधी बहुत से शब्द बौद्ध साहित्य में मिलते हैं। तेज सूइया सूची नालिका में रक्खी जाती थीं और उनकी धार बचाने के लिए नालिकाओं में जौ का आटा, बालू, मोम इत्यादि भर दिये जाते थे। कुछ लोहारों के गाव अच्छी से अच्छी सूई बनाते थे और इस व्यवसाय में उनकी इतनी ख्याति थी कि लोग उन्हीं से सूइया लेते थे। कपडे काटने के लिए तरह तरह की मूठो वाली कैंचिया (सत्थक) भी होती थीं। सिलाई के समय सूई की नोक से अगुलिया बचाने के लिए अगुश्ताने (प्रतिग्रह) भी पहने जाते थे। एक तख्ते को, जिस पर कपडे बाध कर सिये जाते थे, कठिन कहते थे। कठिन के और भागो के भी नाम दिये हुए हैं। कपडे ब्योंतने के लिए उनपर ताडपत्र से अक बना दिये जाते थे तथा सिलाई और कटाई के पहले लगर (मोघ सुत्तक) डाल दिये जाते थे। दरजी की दूकान में आलमारिया (आवेसन वित्थक), और कठिन अर्थात् सीने के फ्रेम होते थे। इसमें खूटिया और टाडें भी लगी होती थीं।

काटने, सीने और रफू करने के भी बहुत से शब्द आये है, पर इनका ठीक ठीक अर्थ समझना आसान नहीं है। कटाई के लिए कपडे पर नख से बने निशान को उल्लिखित, लगर से जुटे कपडे के टुकडो को वधन, लबान में मोड देकर लगर को सिलाई को ओवट्टियकरण, बडे टुकडों से छोटे कपडों को जोडने को पट्टुसकरण, प्योंदा लगने अथवा पटन सीने के लिए दड्किरण, बटाईदार सिलाई को अनुवातकरण, बगल और पीछे की सिलाई को अनुवातकरण, कुछ जगहों की मोहरी सिलाई की ओवट्टेयकरण, तिरछेबल की सिलाई को कुसि, आधी दूर तिरछे बल की सिलाई को अड्ढकुसि, पाच खड से एक खड की गोल सिलाई को मडल, भीतरी मोड को विवट्ट, घुटने पर की सिलाई को जांघेयक, गले की सिलाई को गिवेय्यक और केहुनी पर लगे कपडों की सिलाई को बहन्त कहते थे। सूत से ऊचे रफू को सुत्तलूख, एक तरफे रफ को विषण्ण, रफू से ऊचा नीचा हटाने की क्रिया को विवण्ण उद्धरिनु, छोर निकालने को ओकिरति

और किनारों पर छीर बांधने को अनुगशातं परिभण्डं कहते थे। भीतरी गोंट को पत्ता, किनारीदार झालर को अट्ठपाद और कंधों पर लगी गोंट को अंसबद्ध कहते थे।

मौर्ययुग में भारतीय संस्कृति ने खूब उन्नति की। इस युग की वेश-भूषा के इतिहास के लिए हमें साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है, क्योंकि इस युग की मिली मनुष्य मूर्तियां संख्या में बहुत ही कम हैं। इस युग की वेश-भूषा और कपड़ों के इतिहास के लिए महाभारत सभापर्व और कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में काफी सामग्री है। इन ग्रंथों से यह भी पता चलता है कि भारत और मध्य एशिया से काफी व्यापारिक संबंध था और अफगानिस्तान, बलख और ताजिकिस्तान से यहां रेशमी और ऊनी कपड़े, खालें तथा समूर आते थे।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में चमड़ों और समूरों की विशद व्याख्या है। कान्तानावक एक नीले रंग का चमड़ा होता था और प्रैयक सफेद और नीले रंग का बुंदकी और धारीदार चमड़ा। द्वादश-ग्राम से बिसी, जो बालदार और चित्तीदार होता था तथा महाबिसी जो खुरखुरा और सफेद होता था, आते थे। हिमालय प्रदेश के आरोह नामक स्थान से गुलदार श्यामिका, भूरे और फाख्तई रंग की कालिका, काले भूरे और लाल रंग के कदली चर्म, गोल चित्तीदार चन्द्रोत्तरा और शाकुला नाम के चमड़े और समूर आते थे। बलख से काले समूर, चीन देश के समूर और गेहुएं रंग के सामूली आते थे। ऊद बिलाव के चमड़ों में सातीना काले रंग का होता था, नलतूला हरे रंगका। वृत्रपुच्छा का रंग भूरा होता था और इसमें ऊद बिलाव की पूंछ भी होती थी। चिकने, मुलायम और गज्झिन रोम वाले समूर अच्छे माने जाते थे। गोह, चीते, सूंस, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसे, सुरागाय और गयाल के चमड़े भी काम में आते थे।

भेंड़ के ऊन से बने आविक नाम के शाल, सफेद, शुद्ध रक्त और पक्ष रक्त रंगों के होते थे। सुई कारी और बुनाई द्वारा शाल में अलंकार योजना को खचित कहते थे, करघे पर ही जिस शाल में अलंकार बुने गये हों उसे वानचित्र और अनेक टुकड़ों को जोड़ कर बनाये गये शाल को खंड संघात्य कहते थे। किनारे पर जालीदार शाल को तंतुविच्छिन्न कहते थे। आज दिन भी कश्मीर में उपरोक्त विधियों से ही शाल और जामेवार बुने जाते हैं।

कौटिल्य ने दस तरह के ऊनी कपड़ों का वर्णन दिया है जिनमें अधिकतर बिछाने के काम में आते थे। कंबल सब तरह के ऊनी कपड़ों के लिए एक साधारण शब्द है। ग्वालों के कंबल को केचलक कहते थे, गजास्तरण को कुथमितिका, वृषभास्तरण को सौमितिका, और अश्वास्तरण को तुरगास्तरण। रंगीन कंबल को वर्णक, पलंगपोश को तलिच्छक, खूब मोटे कंबल को वारवाण, हाथी के झूल को परिस्तोम और हाथी के जांघो की रक्षा के लिए मोटे कंबल को समंतभद्रक कहते थे।

नैपाल देश से दो तरह के कंबल आते थे यथा भिंगिसी जो आठ टुकड़ों को जोड़ कर बनता था और बरसाती का काम देता था और अपसारक जो आधुनिक पट्टू की तरह कोई कपड़ा होता था।

जंगली जानवरों के बालों से भी कपड़े बनते थे। ऐसे ही कपड़े से संपुटिका अथवा पाजामा बनता था। चतुरश्रिका के कोनों पर अलंकार होते थे, लंबरा एक तरह की चादर होती थी। मोटे सूत से बनी चादर को कटवानक कहते थे और किनारेदार चादर को प्रावरक।

दुकूल वस्त्र दुकूल वृक्ष की छाल के रेशे से बने वस्त्र को कहते थे। बंगाल का बना दुकूल सफेद और मुलायम होता था, पौंड्र का दुकूल नीला और चिकना तथा सुवर्णकुड्या का दुकूल ललाई लिये होता था। मणिस्निग्धोदकवान दुकूल घुटे सूत से बनते थे, चतुरस्त्रकवान में बुनाई बराबर होती थी और

व्यामिश्रवान में रेशम मिला होता था या तरह तरह के रगीन सूतो से यह बुना जाता था। ताने वाने में एक, दो, तीन या चार तार लगते थे। कभी कभी ताने में एक तार होता था और वाने में दो।

काशी और पुड़ क्षौम के लिए प्रसिद्ध थे। पत्रोर्ण से बने कपड़ो के नाम उन देशो पर पड़ते थे जहा वे बनते थे। इस नियम के अनुसार उसके नाम मागधिका, पौंड्र और सौवर्णकुड्यका पड़े। पत्रोर्ण नाग वृक्ष, लिकुच, बकुल और वट वृक्षों की छालों से निकले रेशों से बनता था, और उसका रग गेहुआ, सफेद और मक्खन का सा होता था।

रेशमी वस्त्रो में कौशेय और चीन पट्ट मुख्य थे। कौशेय कोशकार देश का बना रेशमी कपड़ा था और चीन पट्ट चीन देश का बना रेशमी कपड़ा।

सूती कपड़ो के नाम भी उन देशो पर पड़ते थे जहा वे बनते थे। माधुर आधुनिक मदुरा में, अपरान्तक अपरात में, कालिगक कलिंग देश में और काशिक काशी जनपद में बने कपड़ो के नाम थे। अर्थशास्त्र से यह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काशी कर्पास और क्षौम वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थी, रेशमी वस्त्रों के लिए नहीं। पूर्वी बगाल में बने सूती कपड़े को वागक कहते थे, वत्स देश (आधुनिक प्रयाग के पास) के सूती कपड़े को वात्सक और महिष देश के कपड़े को माहिषक।

कोषाध्यक्ष को देश, काल और परिभोग के अनुसार कपड़ों की जानकारी आवश्यक थी। कीड़े मकोड़ों और चूहो से रक्षा करने का भी उसे प्रबन्ध करना पड़ता था।

राज के निजी कपड़े बुनने के कारखाने सूत्राध्यक्ष के जिम्मे होते थे। इन कारखानों में विधवाए, वृद्धा दासिया इत्यादि काम पर रक्खी जाती थीं और उन्हें ऊन, रूई, क्षौम इत्यादि से सूत तयार करना पड़ता था। कत्तिनो को उनके काम के अनुसार वेतन मिलता था। छुट्टियो में काम करने का भी पारिश्रमिक मिलता था, पर काम खराब करने वालों का वेतन काट लिया जाता था। अच्छे कारीगरों को दिमाग तर रखने के लिए तेल इत्यादि इनाम में दिये जाते थे। कारखानों के सिवाय ठीके पर भी कपड़े बुनवाये जाते थे। घर से बाहर न निकल सकने वाली स्त्रियों को घर पर ही काम देने का प्रबध था। कारीगरो को बढ़ावा देने के लिए रेशमी, सूती और ऊनी वस्त्र इनाम में दिये जाते थे। वस्त्रों पर चुगी भी लगती थी। कपड़े, किंगुर, कुसुभ और कुकुम के रगों में रगे जाते थे।

महाभारत में राजसूय यज्ञ के अवसर पर भारत के सीमा प्रान्त और बाहर से अनेक तरह के वस्त्रों के युधिष्ठिर के पास उपहार में आने का उल्लेख है। कबोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) से ऊनी कपड़े, समूर और सुनहले कपड़े, ऊनी चादरें, बेशकीमती दुशाले और कदली मृग की खालें आयीं। बलूचिस्तान या पारसिंधु प्रदेश से बकरे और भेड़ो की खालें आयीं। चीन, हूण, शक, बाह्लीक और ओड्र देशों से ठीक नाप के खुशरगीन और मुलायम वस्त्र, भेड़ के ऊनी कपड़े, पशमीने, रेशमी कपड़े, नमदे तथा समूर आये। अग कलिंग, ताम्रलिप्ति और पुड्र से दुकूल और पत्रोर्ण के बने कपड़े और चादरें आयीं। ऐसा लगता है कि उपरोक्त प्रदेशों से भारत का इस काल में घनिष्ठ व्यापारिक सबध था।

इस काल की भारतीय वेश भूषा का उल्लेख यूनानी इतिहासकारों ने भी किया है। उनके अनुसार भारत के लोग आधे पैर तक की धोती और चादर पहनते थे। ये वस्त्र कभी कभी सुवर्ण और रत्नखचित भी होते थे।

मौर्ययुग के अतिम चरण और शुगयुग की वेश भूषा का पता हमें यक्ष यक्षिणियों की मूर्तियों और और भरहुत के अध चित्रों से मिलती है। परखम का यक्ष आधे पैर की धोती, छाती पर तारमुद्दी

२

पड़ा दुपट्टा पहने है। धोती पैर तक भी पहुंचती थी और कमरबंद और वैकक्ष्य पहनने की प्रथा थी। एक जगह अटपटी पगड़ी भी आयी है। स्त्रियां एंड़ी तक पहुंचती साड़ी, कई लड़ों की करधनी, पटका और दुपट्टे पहनतीं थीं।

भरहुत के अर्ध चित्रों में पुरुष सकच्छ धोती पहनते हैं जो कभी आधे पैरों तक और कभी पूरे पैरों तक पहुंचती थी। धोती के साथ-साथ, कमरबन्द, पटके, दुपट्टे, और पगड़ियां पहनने की भी चाल थी। इस युग में दक्षिण भारत के पहरावे में कुछ अंतर था। शुंगयुग में पगड़ियां अनेक तरह से बांधी जाती थीं। साधारण रीति से तो सिर पर बाल के कूट के चारों ओर पगड़ी के फेटें बांध लिये जाते थे। लट्टूदार साफा, कामदार साफा, झालरदार साफा, पीछे उभरा साफा, अटपटी पगड़ी, हलका साफा, अटपटी लट्टूदार पाग तथा छोटे झालरदार साफा पहने जाते थे।

भरहुत के अर्ध चित्रों में सिले वस्त्र केवल दो जगह आये हैं। एक जगह एक राजा का अनुचर कोट-नुमा वस्त्र पहने दिखलाया गया है और दूसरी जगह एक उत्तरापथ का आदमी बंददार कोट पहने है। इसके बाल एक फीते से बंधे हैं, कमर में धोती और पटका है और छाती पर परतला। कभी कभी शुंग-कालीन मट्टी की मूर्तियां भी कोट पहने दिखायी गयी हैं। सांची के नं० के स्तूप के अर्ध चित्रों में जो शुंगकालीन है आधे और पूरे बांह के कंचुक आये हैं।

भरहुत के अर्धचित्रों में स्त्रियां घुटने तक की साड़ियां पहने दिखलायी गयी हैं। साड़ियों पर कमरबंद, करधनें और पटके होते थे। स्त्रियां कभी-कभी चादर और पगड़ी भी पहनतीं थीं। यक्षिणी चंदा की वेश-भूषा से एक शुंगकालीन संभ्रांत नारी के पहरावे का पता चलता है। उसके कमर में घुटने तक की धोती, सतलड़ी करधनी और कामदार कमरबंद है। सिर एक कामदार ओढ़नी से ढंका है। एक दूसरी यक्षी पतली साड़ी, सकरमुद्धीदार कामदार कमरबंद, करधनी और योगपट्ट पहने है। यक्षी चूलकोका का पटका मार्के का है

साधु कोपीन पहनते थे और उनकी स्त्रियां साड़ी और चादर। स्त्रियां रूमाल से सिर ढांक लेतीं थीं अथवा कभी-कभी पगड़ी भी पहनतीं थीं। दक्षिण भारत की स्त्रियों की पोशाक भी प्रायः ऐसी ही होती थी, घुटनों तक की साड़ी बक्सुएदार कमरबंद और चारखाने की ओढ़नी पहनने की प्रथा थी।

ई० पू० पहली शताब्दी की वेश-भूषा ई० पू० दूसरी शताब्दी की वेश-भूषा से मिलती; है पर उसमें थोड़ा अंतर भी आ जाता है। धोती सादी होती है और भारी कमरबंदों और पटकों का अभाव सा है; लेकिन लोग अपने कपड़े सजा कर पहनते थे। अनुचर वर्ग और सिपाही सिले कपड़े भी पहनते थे। स्त्रियां अपनी धोती और चादरें खूब सजा कर पहनती थीं। इस युग की दक्षिणी वेश-भूषा कुछ टीमटाम वाली होती थी। इस युग की वेश-भूषा के इतिहास की सामग्री हमें सांची और भाजा के अर्ध चित्रों से, अजंटा के ९-१० नं० की लेणों के भित्ति चित्रों से तथा मथुरा और कोशांबी से मिली मट्टी की मूर्त्तियों से मिलती है।

सांची के अर्ध चित्रों में धोती सकच्छ और कभी-कभी विकच्छ होती है। दुपट्टे कई तरह से ओढ़े जाते थे। लोग प्रायः साफे बांधते थे। साफे के फेंटे जूड़े के चारों ओर होते थे। साफे अलग-अलग ढंग के होते थे यथा नीची फेंट वाला साफा कुछ चुनन लिये, दाहिनी फेंट वाला साफा, मोती की लड़ी से सजा साफा, लंबोतरे लट्टू वाला साफा, गद्दीदार साफा, तिरछा गोलुबेंदार साफा, ढोल के आकार का लट्टू वाला साफा, शंखाकार साफा, चक्करदार पगड़ी, फिरहरीदार पगड़ी, लंबोतरी लट्टू वाली पगड़ी, पंखाकार पगड़ी, बेलन के आकार की पगड़ी, तीन लट्टुओं वाली पगड़ी।

टोपिया बहुधा विदेशी पहनते थे। निम्नलिखित प्रकार की टोपिया साची के अर्ध चित्रों में देख पड़ती है—कुलाहनुमा टोपी, चौकस गोल किनारें वाली टोपी, बीच से कटी झालरदार टोपी, नीचे धार की तुर्कीटोपी नुमा टोपी, पजवो से सजा कुलाह, चोटीदार टोपी। सिर कभी-कभी फीते से बाधे जाते थे।

स्त्रिया सकच्छ साडी और कमरबद पहनतीं थी। एक दूसरी तरह की साडी में एक भाग कमर में लपेट लिया जाता था। कभी कभी चुनन बगल में खोस ली जाती थी। ओढनी ओढने के निम्न लिखित प्रकार थे—घोघी के आकार की ओढनी, दोहरे किनारे की ओढनी, दोहरी ओढनी, पेचीदार ओढनी, पत्राकार ओढनी, वही ढकती हुई किनारेदार ओढनी। स्त्रिया कभी कभी पगडी और टोपी पहनती थीं। एक जगह एक स्त्री खोद पहने दिखायी गयी है।

मथुरा और कोसम से मिली मट्टी की स्त्री मूर्तिया कचुक और गहने पहनती है। इडियन इन्स्टिट्यूट म्यूजियम, आक्सफर्ड, में एक ऐसी ही मूर्ति गहनों के सिवाय बिना बाह का कचुक, जो केवल बाया कधा ढाकता है, और कमरपेटी पहनती है। दुपट्टे एक या उससे अधिक है।

साची के अर्ध चित्रों में सिपाही इत्यादि कचुक पहनते है। धनुर्धारी पूरे बाह का कचुक तहमतनुमा धोती, कमरबद और साफा पहनते थे। पैदल सिपाही धनुर्धारियो की तरह वस्त्र अथवा कमरबद से बधी जाघिया पहनते थे। विदेशी आकपूरी बाह का कचुक, तथा कमरबद पहनते थे और अपना सिर रूमाल से बाधते थे। एक जगह एक विदेशी अधबहिया कचुक, जाघिया और बूट पहने दिखाया गया है। विदेशी यूनानी चप्पल भी पहनते थे।

ब्राह्मणों का कौपीन घाघरेनुमा होता था और वे धकक्ष पहनते थे। ऋषि पत्नियो का भी वैसा ही पहरावा था।

उत्तर और दक्षिण भारत की वेश भूषा में कुछ स्थानिक विशेषताए थीं। अमरावती के इस युग के अध चित्रों में सद्गृहस्थ लबोतरा साफा, घुटनों तक की धोती और झब्बेदार कमरबद बाधते थे। महाराष्ट्र में धोती छोटी होती थी और कमरबद उमेठे दुपट्टे के होते थे। भाजा के अध चित्रों में एक अगरक्षक अटपटी पगडी और लहरियादार कचुक पहने है। एक द्वारपाल लबी धोती कमरबद, पटका तथा गुबददार पगडी पहनता है और एक सिपाही हलकी पगडी, धकक्ष, सरकती धोती और कमरबद पहनता है। एक जगह घुमावदार पगडी आयी है।

स्त्रियो के शिरोवस्त्र तरह तरह के होते थे यथा सिर पेंच सहित ओढ़नी, कई तहों की भारी ओढनी, दातेदार पगडी, गोल मूंगरीनुमा शिरोवस्त्र, फीतेदार जूड़ा और कान तक पहुचती पगडी।

अजटा के ९-१० न० की लेणों के भित्ति चित्रों में हलकी पगडी, अधबहियां कचुक और अगा आते हैं।

ईस्वी सन के प्रथम तीन सौ वर्षों में भारतीय जीवन और सस्कृति में काफी उन्नति हुई। इस युग में बृहत्तर भारत और मध्य एशिया में भारतीय उपनिवेश बने और भारत और रोम में रत्नों, गध द्रव्यों, स्फटिक के बरतनों और कपडों का कीमती व्यापार बढ़ा।

इस युग में भारतीय वेश भूषा के इतिहास की प्रचुर सामग्री हमें गधार की मूर्तियों और अर्ध चित्रों

से, मथुरा की मूर्तियों से और अमरावती और गोल्ली के अर्ध चित्रों से मिलती है। इस काल में उत्त पश्चिमी भारत में धोती, चादर, पगड़ी, साड़ी और ओढ़नी के सिवाय कंचुक, शलवार, टोपियां, जिर वल्तर और पूरे बूट प्रचलित थे, जैसे ईरानी और मध्य एशिया के पहरावे भी मिलते हैं। यहां हमें यूनानी वे भूषा के भी दर्शन मिलते हैं। शक राजाओं की पोशाकों का पता सिक्कों से चलता है। इस युग में दक्षि भारत में स्त्रियों और पुरुषों की वेश-भूषा काफी सादी होती थी। दोनों ही मलमली कमरबन्द अ धोतियां पहनते थे। पुरुष पगड़ी भी पहनते थे। सिपाही और द्वारपाल इत्यादि कंचुक पहनते थे अ कभी-कभी उनके सिर पर कुलाहनुमा टोपी भी होती थी।

कुषाणयुग के साहित्य से कपड़ों और वेश-भूषा पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। वस्त्रों के वर्ण छिटफुट से हैं और उनके माने समझने में भी कठिनाई पड़ती है। इस युग के कपड़ों का अच्छा वर्ण पेरिप्लस आफ दि एरीथ्रियन सी नामक ग्रंथ में आया है।

इस युग में कपास खूब होती थी। कपास बाजार से खरीद कर धुन ली जाती थी और उससे ए सा महीन सूत कात लिया जाता था। बुनकर चीर छोड़ कर कपड़े बिनते थे और उनकी स्त्रियां ताने माड़ी देती थीं।

कलिंग देश के नाग बुनकर बहुत अच्छी मलमल बिनते थे, जिसकी खपत यहां और विदेश दोनों ही होती थी। रोम साम्राज्य में भारतीय मलमल की गहरी खपत थी। पेरिप्लस के अनुसार बढ़िया मलम को मोनाचे और घटिया रूई के कपड़े को सगमतोगेने कहते थे। गुजरात के घटिया तरह के कपड़े व मोलोचीन कहते थे। यहां से कपड़े पूर्वी अफ्रिका के बंदरगाहों को, तथा अरब, मिस्र और सोकोत को भेजे जाते थे। त्रिचनापल्ली और तंजोर की मलमल को अर्गरतिक कहते थे। मसलीपटम में भी मलम बनती थी। पूर्वी भारत की मलमल को गेंजटिक कहते थे और यह शायद काशी और ढाका के पास बनती थी

इस युग में रेशमी कपड़े भी खूब चलते थे और इनके लिए पट्टांशुक, चीन, कौशेय और धौतप शब्दों का व्यवहार हुआ है। विचित्र पटोलक में तरह-तरह की नक्काशियां बनी होती थीं और इसकी तुल गुजरात की आधुनिक पटोला साड़ी से की जा सकती है।

सिंध नदी के बाब्रिकन बंदरगाह से रेशम और रेशमी कपड़ों का निर्यात होता था। इस युग चीनी रेशमी कपड़े ब्रह्मपुत्र की घाटी, आसाम और पूर्वी बंगाल हो कर भी आते थे। मलाबार के बंदरगा में भी पूर्वी बंगाल से रेशमी कपड़े आते थे। कावेरीपट्टन में रेशम के व्यापारियों की दूकानें थीं। रोम व्यापारी रेशमी कपड़े गंगा के मुहाने, खंभात की खाड़ी और त्रावनंकूर के बंदरगाहों से खरीदते थे, जहां चीन व्यापारी आते थे।

ऊनी कपड़ों को साधारणतः कंबल कहते थे। द्रुग्य भी किसी तरह का ऊनी कपड़ा होता था ऊन दुकूल मिलाकार भी अच्छे वस्त्र बनते थे। अच्छे पश्मीने भी बनते थे। इसी पश्मीने के बने ए लाल रंग के रूमाल को ईरान के एक बादशाह ने रोमन बादशाह आरेलियन को उपहार में भेजा। पश्म शायद रोमन कानून के संग्रह में मारकोकोरम लाना कहा है। हुरमुज़ द्वितीय को काबुल की राज कन्या साथ विवाह करने पर दहेज में पश्मीने के शाल मिले जिनकी सुन्दरता देख कर लोग चकित हो गये।

ऊनी और सूती कपड़ों के सिवाय, क्षौम, सन और सफेद दुकूल के कपड़े भी चलते थे। खालिस सुनह कलाबत्तू से बने वस्त्र को हरिणी अथवा हिरिवस्त्र कहते थे। बनारस के बने कपड़ों के लिए काशिक वस्त्र काशी, काशिकांशु इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। शायद काशिक वस्त्र का तात्पर्य रेशमी वस्त्रों से न

कर सूती वस्त्रों से है। काशी की मलमल बड़ी महीन होती थी और उससे पहनने के कीमती कपड़े बनते थे। फलक नाम का वस्त्र शायद फल के रेशों से बनता था। अपरांत में बने वस्त्र को अपरांतक कहते थे। कुट्टक वस्त्र से शायद छींट का मतलब है। पुष्पपट्ट से किमखाब का तात्पर्य है।

भिक्षुक तथा श्रमण-ब्राह्मण वृक्षों की छालों के रेशों, घास इत्यादि के बने कपड़े और ऊंट, बकरों इत्यादि के बालों के बने कंबल और जानवरों की खालें पहनते थे। इस युग में भारत और रोम के बीच चमड़े और समूरों का अच्छा व्यापार था। समूर चीन, तिब्बत इत्यादि देशों से भारत में आते थे। कुछ मामूली दरजे के चमड़े अथवा कंबल भी खंभात की खाड़ी हो कर पूर्वी अफ्रिका जाते थे।

इस युग में कपड़े का इतना गहरा व्यापार था कि बहुत से व्यापारी केवल एक ही किस्म के कपड़े रखते थे। सोपारा में काशी के वस्त्रों की दूकान और छींट की दुकान का उल्लेख है। मदुरा में बजाजे का जिक्र है। कावेरीपट्टन में कपड़े के दल्लालों का भी उल्लेख है।

इस युग के साहित्य में वेश भूषा का कम उल्लेख है। साधारणतः लोग धोती दुपट्टा पहनते थे। काशी के धोती दुपट्टे प्रसिद्ध थे और कभी कभी इनके बड़े ऊंचे दाम होते थे। राजे चौड़े किनारे वाले नये वस्त्र पहनते थे। मामूली किसान सन की धोती और लंगोटी पहनते थे। पगड़ी पहनने की भी प्रथा थी। राजे कभी-कभी कंचुक भी पहनते थे। अंग रक्षक और सिपाही तो अक्सर कंचुक और जिरह-बख्तर पहनते थे। दक्षिणी राजे जड़ाऊ टोपी और धोती पहनते थे। उच्च वर्ग के तामिल धोती पहनते थे और एक टुकड़े कपड़े से अपने सिर ढक लेते थे। अंग रक्षक कोट पहनते थे। यवन अंग रक्षक युद्ध क्षेत्र में कंचुक पहन कर पहरा देते थे।

तामिल स्त्रियां पैर तक पहुंचती साड़ियां पहनतीं थीं। वारवनिताओं की साड़ी आधी जांघ तक पहुंचती थी। जंगली स्त्रियां पत्तों की घघरियां पहनती थीं।

गंधार की मूर्तियों और अर्ध चित्रों में आयी वेश भूषा में हम भारतीय ईरानी, और यूनानी वेश-भूषाओं का सम्मिश्रण पाते हैं। राजे और सामंत पैर तक पहुंचती सिलवटदार धोती तथा चादर पहनते थे। चादर अनेक तरह से पहनी जाती थी।

डोरी से बने कमरबंद झब्बेदार होते थे। पटकी या न्यवाऊ पहनने की भी प्रथा थी। बाल अक्सर मोती की लड़ों और रत्नों से सजे होते थे, पर पगड़ी भी पहनी जाती थी।

ये पगड़ियां कपड़े बनाई पहनी जाती थीं। शीर्षपट्ट बहुधा अलंकृत होते थे। एक शीर्षपट्ट पर मिथुन का आकार है, दूसरे पर सुपर्ण और नाग, तीसरे पर बुद्ध मूर्ति और चौथे पर मोर। पगड़ी का कपड़ा सिर पर कसा होता था, और पेंच खूब सजी हुई। एक पगड़ी में गरुड़ मूर्तियों से सज्जित एक पट्टी है जिसके बल हवा में पीछे फड़फड़ाते दिखाये गये हैं।

पगड़ियों के निम्नलिखित रूप हैं—चक्करदार पगड़ी, कलगी पगड़ी, त्रिकोण अलंकार से सज्जित कलगी पगड़ी, पंखाकार कलगी पगड़ी, शीर्षपट्ट युक्त भारी पगड़ी।

श्रेष्ठि गण धोती उत्तरीय और चादर पहनते थे। सरदी में कंचुक पहनने की प्रथा थी। कभी कभी इसमें सुर क्षेत्र के लिए पट्टी होती थी। एक दाता कंचुक, पैजामा और फुंदनेदार टोपी पहने है। गमछी भारत यात्रा पूगा भी कभी कभी पहना जाता था।

गंधार की मूर्तियों में सिपाही दो तरह के कपड़े पहनते थे। एक तरह के सिपाही धोती, पेटी और कंचुक पहनते थे। उनके बाल जूड़े अथवा पगड़ी में बंधे होते थे। दूसरी तरह के सिपाही तंग पाजामे पगड़ियां कमरबंद और कपड़े पहनते थे। कभी कभी सिपाही जांघिया भी पहनते थे।

शिकारी केवल धोती पहने दिखाये गये हैं। खेतिहर एक छोटी धोती और मजदूर लंगोट पहनते थे। पहलवान लंगोट अथवा जांघिया पहनते थे । ब्राह्मण धोती और चादर पहनते थे ।

विदेशियों की टोपियां निम्न लिखित प्रकार की होती थीं—गोटदार कुलाहनुमा टोपी, अर्धचंद्र से अलंकृत फूंदनेदार टोपी, सकर मुट्ठी के रूप की चोटी सहित टोपी, कटे किनारे वाली टोपी या खोद ।

स्त्रियों की वेश-भूषा में तीन कपड़े, यथा कंचुक, साड़ी और दुपट्टा चादर, होते थे। कभी-कभी चादर का कोना कमर में खोंस लिया जाता था । स्त्रियों के कंचुक प्रायः घुटने तक पहुंचते थे। कभी-कभी वे आगे खुले भी रहते थे और तब यह कोटनुमा दिखते थे । एक दूसरी तरह का कोट नाभि को ढंकता दिखलाया गया है । कंचुक साड़ी के नीचे अथवा ऊपर पहने जाते थे। कसे कंचुक पर प्रायः मिलवटें पड़तीं थीं। स्त्रियां कभी कभी स्तन पट्ट भी पहनतीं थीं।

साड़ियां दो प्रकार से पहनी जातीं थीं। एक में एक हिस्सा कमर में लपेट लिया जाता था और दूसरा पीछे खोंस लिया जाता था, दूसरी में साड़ी का एक सिरा कंधे पर डाल लिया जाता था। कभी-कभी साड़ी काफी बड़ी होती थी और उसका छुट्टा भाग आगे अथवा पीछे लटका रहता था। कभी-कभी साड़ी का छुट्टा सिरा बायें कंधे पर योजक से बांध दिया जाता था, कभी-कभी साड़ी का छुट्टा सिरा दाहिने स्तन को अनावृत रखते हुए कंधे पर डाल दिया जाता था, ढीली तौर से साड़ी पहनने में बांयीं छाती खुली रह जाती थी, दुपट्टा या चादर का एक छोर कमरबंद में खोंस लिया जाता था। स्त्रियां अक्सर अपने जूड़े शेखरकों से सजाती थीं, पर कभी-कभी मुकुट भी पहनतीं थीं।

यवनियां भारतीय और यूनानी दोनों तरह की पोशाकें पहनतीं थीं। यूनानी पोशाक में कंचुक, घाघरा और कमरबंद होते हैं। सिर पर टोपियां होती हैं। भारतीय अंगरक्षिकाएं साड़ी, कमरबंद और चादर पहनती हैं।

मथुरा की मूर्तियों से हमें विदेशियों तथा मध्य देश के निवासियों की वेश-भूषाओं का पता चलता हैं। भारतीय प्रायः सकच्छ लंबी धोती, दोनों कंधों पर पड़ा दुपट्टा और पगड़ियां और पटके पहनते थे । कभी-कभी कमरबंद भी वेश-भूषा का अंग होता था। कभी-कभी कमरबंद रस्सी की तरह बटा होता था। दुपट्टों और कमरबंदों के पहरने के और भी बहुत से ढंग बतलाये गये हैं। घुड़सवार कई फेंटों से बंधी जांघिया पहनते थे।

पगड़ी प्रायः सादे कपड़े की बनी होती थी और जूड़े के चारों ओर लपेट ली जाती थी। रईस शीर्षपट्ट युक्त कामदार पगड़ियां पहनते थे। कभी-कभी शीर्षपट्ट चपकनदार होता था और कभी-कभी धातु की एक पट्टी से युक्त। कभी-कभी शीर्षपट्ट में कलंगी लगती थी।

विदेशी राजे और सिपाही कंचुक, शलवार, टोपी और जूते पहनते थे । कनिष्क की बेसिर वाली मूर्ति घुटने के नीचे तक पहुंचता कंचुक, चुगा और तस्मेदार बूट पहने है। एक शक राजा की मूर्ति अलंकृत वस्त्र का बना गोटदार कंचुक और पूरे बूट पहने है । एक तीसरी मूर्ति गोटदार कंचुक और कमरपेटी पहने दिखायी गयी है। सूर्य की एक मूर्ति गोटदार चुस्त कंचुक, कमरबंद और कारचोबी टोपी पहने है। एक ईरानी की मूर्ति खूब कामदार कंचुक, पीठ पर लहराता रूमाल और चंद्र सूर्य के आकारो से अलंकृत कुलाहनुमा टोपी पहने है ।

ईरानी और शक टोपियां पहनते थे । टोपियां निम्न लिखित तरहों की होती थीं—दो टुकड़े नमदों से बनी कुलाहनुमा टोपी, बल खायी हुई कुलाहनुमा टोपी, अर्धचंद्र युक्त टोपी, बिल्लीवाल पगड़ी नुमा टोपी, चपटी छत वाली सजी हुई टोपी ।

स्त्रियां करधनी से युक्त साड़ी और तहदार दुपट्टे पहनती थीं, कमरबंद में दोनों ओर फंदे पड़ते थे। कभी-कभी कमरबंद का झब्बेदार सिरा आगे लटकता हुआ छोड़ दिया जाता था, कभी कभी दोहरे कमरबंद का निचला भाग साड़ी में खोंस लिया जाता था, कहीं-कहीं कमरबंद का एक सिरा हाथ में ले लिया जाता था। पटके भी पहने जाते थे।

कभी कभी लहंगा भी पहना जाता था, पर कुषाणयुग की वेश-भूषा में यह अपवाद स्वरूप है। मथुरा की मूर्तियों में एक ग्वालिन की मूर्ति लहंगा पहने है। लहंगा कमर पर सीधा है और निचले भाग में केवल एक घेर पड़ता है।

विदेशी स्त्रियां कंचुक पहनती थीं। कंचुक का निचला भाग चुननदार होता था। कुछ स्त्रियां कंचुक के ऊपर साड़ी भी पहिनती थीं। कभी कभी ईरानी स्त्रियां खूब कामदार कंचुक पहनती थीं।

स्त्रियां प्रायः सिर नहीं ढकती थीं, पर कभी कभी ओढ़नी ओढ़ी जाती थी। कभी कभी स्त्रियां लीलावश अपने शिरोवस्त्र पगड़ी की तरह बांध लेती थीं।

इस युग में दक्षिण भारत के लोग, जैसा कि अमरावती इत्यादि के अर्धचित्रों से पता चलता है। सकच्छ लंबी धोती पहनते थे। धोती कभी कभी घुटनों तक और लांग सहित होती थी। कमरबंद बांधने की अनेक कलात्मक रीतियां थीं। नाचते समय कमरबंद की मोर मुरक से नर्तक के सादे पहरावे में एक गति आ जाती थी।

ऊर्ध्ववस्त्र पहनने की अनेक रीतियां थीं। कभी-कभी छाती पर दुपट्टा परतले की तरह पहना जाता था। और कभी कभी यह कंधों पर डाल लिया जाता था।

शीर्षपट्ट युक्त पगड़ियां दो तीन सादे फेंटोंमें बांध ली जाती थीं। पगड़ियों के निम्न लिखित बहुत से प्रकार मिलते हैं, यथा अटपटी पगड़ी, मोरपंख युक्त चक्करदार पगड़ी, कुंडेदार शीर्षाभूषण युक्त पगड़ी, छल्लेदार पगड़ी, सरपेंच युक्त छोटी गोल पगड़ी, तीन कुब्बेवाली पगड़ी, दोहरी पट्टी वाले आभूषण से सज्जित नीची पगड़ी, शीर्षपट्ट युक्त तीन फेंटे की पगड़ी, चौरीदार अटपटी पगड़ी, फिरकीनुमा आभूषण युक्त अटपटी पगड़ी, अनेक लटट्ओं वाली पगड़ी, गोल पेंचदार पगड़ी, दिल्लीवाल पगड़ी जैसी पगड़ी और चक्करदार ऊंची पगड़ी, इत्यादि।

दक्षिण भारत में झब्बेदार धातु निर्मित टोपियां भी पहनी जाती थीं। टोपियों के निम्नलिखित प्रकार मिलते हैं यथा मोरपंख और पत्राकार आभूषण से सजी टोपी, चायदानी के ढक्कन के शक्ल की टोपी, चपटी टोपी जिसका छज्जा ऊपर मुड़ा है, लहरियेदार छज्जे वाली टोपी, कटोप और शीर्षपट्ट युक्त टोपी। कोई-कोई अपने सिर और कान रूमाल से ढांकते थे।

साधारण इस युग में दाक्षिणी सिले वस्त्र नहीं पहनते थे, पर सेवक, गायक, वादक, और विदेशी इस नियम के अपवाद थे। कंचुक के साथ कटोप और धोती पहनी अथवा पगड़ी, दुपट्टा और धोती पहनी जाती थी। शरीर के साथ कंचुक कमरबंद से बांध दिया जाता था। कभी कभी पूरी बांह का कंचुक टोपी और घुटनेदार पाजामें के साथ पहना जाता था। पालकी उठाने वाले कहार बांहदार या बिना बांह के कंचुक पहनते थे। एक साईस अंग्रेजी टेल कोट नुमा कंचुक पहने है। ग्वाले जांघिया पहनते थे।

दक्षिणी स्त्रियां पैर तक पहुंचती करधनी और कमरबंद से युक्त साड़ियां पहनतीं थीं। कभी-कभी साड़ी पर करधनी, कमरबंद और पटका होता था और सिर पर पगड़ीनुमा वस्त्र। कभी-कभी स्त्रियां दुपट्टा या चादर हाथ में ले लेतीं थीं। स्त्रियां कभी-कभी पगड़ी और मुकुट भी पहन लेतीं थीं। पगड़ियां और मुकुट निम्न लिखित प्रकार के होते थे, झब्बेदार शीर्षपट्ट से युक्त चक्करदार पगड़ी, सींगनुमा केशवेश के ऊपर बंधी पगड़ी, मकराकृत मुकुट, पूरे मकर की आकृति वाला मुकुट, कलगी युक्त चक्करदार मुकुट, छोटा मुकुट और लहरियादार मुकुट। ओढ़नी ओढ़े केवल एक स्त्री दिखलायी गयी है।

ब्राह्मण साधु पटकेदार कौपीन और दुपट्टा पहनते थे। बौद्ध भिक्षु कभी-कभी पांसु दुकूल पहनते थे।

सिपाही कंचुक, कमरबंद और धोती पहनते थे।

बच्चे जांघिया और कमरबंद पहनते थे। कभी कभी वे छन्नवीर और पेट पर कस कर बंधा रूमाल पहनते थे।

प्राक् गुप्तयुग में हमें भारतीय वेश-भूषा का कम मसाला मिलता है। मथुरा से मिली इस युग की कुछ मूर्तियां तथा पवांय के अर्ध चित्रो के बल पर हम उत्तर भारत की वेश-भूषा का पता पाते हैं। दक्षिण भारत की वेश-भूषा का गोल्ली के अर्ध चित्रों में अच्छा प्रदर्शन है। खास गुप्त युग की वेश-भूषा के इतिहास की सामग्री हमें सारनाथ, देवगढ़, मंडोर इत्यादि से मिली मूर्तियों और अजंटा के १७ नं० की लेण के भित्ति चित्रों मे मिलती हैं। अजंटा की लेणें गुप्त-साम्राज्य में नहीं थीं, पर गुप्तयुग की कला स्थानिक न हो कर देश के कोने-कोने में फैल चुकी थी और इस दृष्टि से अजंटा की कला को गुप्त कला के अन्तरगत मानना ठीक ही है। गुप्त सिक्कों पर अंकित प्रतिकृतियों से भी तत्कालीन वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है। इनसे पता लगता है कि गुप्तयुग के आरंभ में राजों की वेश-भूषा शकों जैसी थी, गो कि वे कभी-कभी भारतीय वस्त्र भी पहनते थे, लेकिन इस युग के अंत में उनका पहिरावा पूर्ण भारतीय बन गया। रानियां कंचुक और साड़ियां पहनतीं थीं। सिक्कों पर आये वस्त्रों के सूक्ष्म अध्ययन से यह भी पता लगता है कि गुप्त-युग में भद्दे शक वस्त्रों में आकर्षण लाकर उन्हें भारतीय बाना दे दिया गया।

समुद्रगुप्त (३३५-३८५ ई० पू०), चंद्रगुप्त द्वितीय (३८५-४१३) और कुमारगुप्त (४१४-४५५) में साम्राज्य के बढ़ने के साथ ही कला और साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। गुप्तयुग सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है। महाकवि कालिदास ने इसी युग में अमर काव्यों और नाटकों की रचना की। भौतिक संस्कृति भी किसी से पीछे न रही। अंजटा के भित्ति चित्रों और पुरातत्व के अवशेषों से हम उस युग की संस्कृति का पूरा खाका खींच सकते हैं। कपड़े पहनने का लोगों को इतना शौक था कि प्रसाधन के लिए संस्कृत साहित्य में अनेक शब्द आये हैं।

गुप्तयुग में प्रायः नौकर-चाकर सिले वस्त्र पहने दिखलाये गये हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वे सब विदेशी थे। लगता है कुषाणयुग में राज दरबार की प्रथा के अनुसार दास-दासियां भी सिले कपड़े पहनने लगे और यही प्रथा गुप्तकाल में भी प्रचलित रही। इस युग में विदेशों से भी दास-दासियों के आने का जैन साहित्य में उल्लेख है जिससे पता लगता है कि अफ्रिका, अरब, ईरान, यूनान, मध्य एशिया इत्यादि से दासियां इस देश में आती थीं और वे अपने जातीय पहरावे पहनती थीं। लगता है राजमहल के अंदर रहने वाली दासियों के पहरावे का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ा होगा। पर गुप्तयुग में विदेशी व्यापा-

रियों और सिपाहियो के सिले वस्त्रों का प्रभाव भी पडा । समन्वय के इस युग की एक विशेषता है कि विदेशी वस्त्रो के ग्रहण करते हुए भी उन्हें भारतीयता के साचे में ढाला गया।

इस युग में सिपाहियों की वर्दी भी दो तरह की थी। एक वर्दी में तो सिपाही धोती दुपट्टा पहनते थे और दूसरी में कचुक और जाधिया । लगता है कि दूसरी वर्दी को लडाई में उपयोगिता देख कर गुप्तो ने उसे शकों और हूणों से ग्रहण किया ।

गुप्तयुग में बहुत तरह के महीन, छपे हुए और नक्काशीदार कपडे बनते थे जिनमें चारखाने, डोरिये, हस मिथुन इत्यादि मुख्य थे। अभाग्यवश इस युग के साहित्य में कपडों के छिटपुट वर्णन आये हैं, पर बाणभट्ट की कादम्बरी और हर्षचरित से तथा जैन छेद सूत्रो से तत्कालीन कपडो के वर्णन मिल जाते है। वस्त्र चार विभागो में बटे थे यथा वल्कल, फाल, कौशेय और राकव । राकव पश्मीना था, जो पामीर के प्रदेश से आता था।

जैन साहित्य में कपडो की निम्नलिखित तालिका आई है—भगिय (भगेला), जगिय (ऊट के बाल से बना कपडा), पोत्तग (ताड के पत्तों से बना कपडा), खोम, तूल कड (सेमल की रुई से बना वस्त्र), आइणग (चमडे के बने वस्त्र), सहिण (महीन कपडे), सहिण कल्लण (रगीन और नक्काशीदार कपडे), आजय (बकरे के रोए से बने कपडे), काय (नीली रुई के सूत से बने कपडे), दुकूल (दुकुल वृक्ष की छाल के रेशे से बने कपडे), हस दुकूल (हसाकृतियो से अलकृत महीन दुकूल), पट्ट (रेशमी वस्त्र) जिसके बहुत से भेद होते थे यथा मलय अशुक, चीनाशुक, कृमिराग और सुवर्ण, पत्रोर्ण (शायद जगली रेशम), वेसराग (जाटों के देश का रगीन कपडा), अमिला (कलफदार कपडा), गज्जफल (कडकडाता कपडा), फालिय (पारदर्शी कपडा), कोयव (रोयेंदार कबल), कबल (ऊनी चादर), पावर (चादर) इत्यादि।

शाल और चादरें निम्न लिखित भाति की होती थीं—उद्र (ऊद बिलाव के चमडे के बने रूमाल), पेस (सुईकारी के कामवाला शाल), पेसल (पश्मीने की चादर), नीलमिगाइणग (नीलगाय के चमडे से बना ओढना), गोरमिगाइणग (एक सफेद पशु के चमडे से बनी चादर), कणग (सुनहरे काम की चादर), कणगकतिय (सोने के भरपूर काम वाली चादर), कणगपट्ट (पूरी कलाबत्तू से बिनी चादर), कणगखचिय (जरदोजी के काम की चादर), कणगफुसिय (थोडे सुनहले काम की चादर), कणगयक (सुनहरे किनारे वाली चादर), कणगफुल्लिय (जिसके फूल कलाबत्तू से कढे हों), ऊट, बाघ और चीतो की खालों से बने प्रावार, आभरण (पत्ती को नक्काशी वाली चादर), आभरण विचित्त (भरी नक्काशीदार चादर), पलग (पश्मीना), तिरीटपट्ट (तिरीट वृक्ष की छाल के रेशे से बने महीन कपडे), वडग (टसर), इत्यादि। इनके सिवाय रल्लक (एक तरह का कबल) और शाणक (सन्नी कपडा) के नाम भी आये हैं।

इस युग के सूती कपडों का कम उल्लेख आया है । इसका कारण यह हो सकता है कि सूती कपडे इतने प्रचलित थे कि उनके वर्णन की आवश्यकता नहीं समझी गयी, फिर भी उपरोक्त तालिका में गजफल और फालिक शायद सूती वस्त्र थे ।

अमर कोश में कपडे बुनने की क्रिया का उल्लेख है। करघे से तुरत उतरे कपडे को निष्प्रवाणि, बिना धुले कपडे को अनाहत, और करघे पर चढ़े कपडे को तत्रक कहते थे। कपडे के किनारे को दशा या वर्ति, लबाई को दैर्घ्य, आयाम और आरोह और पनहे को परिणाह और विशालता कहते थे । साधारणत बहुमूल्य कपडों के लिए सुचेलक और पट और मामूली कपडों के लिए वराशि और स्थूलशाटक शब्द आये हैं। कपडे धोने के लिए पहले वे सज्जीखार के घोल में डाल दिये जाते थे और बाद में उबाल कर साफ पानी में धो लिये जाते थे ।

गुप्तयुग के साहित्य में कपड़े बुनने के प्रसिद्ध स्थलों के नाम आये हैं। मथुरा की डोरिया प्रसिद्ध थी। लाट देश से आकर मंदसोर में बसे पट्टवाय बहुत ही कोमल रंग बिरंगे और नक्काशीदार रेशमी कपड़े विनते थे। आसाम के रेशमी कपड़ों में जाती पट्टिका (चमेली के फूलों से अलंकृत मूंगा) और कोमल चित्रपट मुख्य थे। पौंड्र (उत्तर बंगाल) के धोती दुपट्टे प्रख्यात थे। गुजरात की बांधणी या चूंदरी को पुलकबंध कहते थे। कोट्टम्ब (आधुनिक पठान कोट), ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) और सिंधु कपड़े बुनने के बड़े केन्द्र थे। शायद पुष्पपट्ट (किखाब) काशी में बुने जाते थे।

विवाह के अवसर पर धनिक वर्ग और राजे महराजे दहेज में तरह-तरह के कीमती कपड़े देते थे। राज्यश्री के विवाह अवसर पर राज महल में अनेक तरह के कपड़े दहेज में देने के लिए सजाये गये थे जिनमें क्षौम, बादर (सूती कपड़े), दुकूल, लालातंतुज (बहुत महीन रेशमी कपड़ा) और नेत्र (एक तरह का रेशमी कपड़ा) मुख्य थे।

इस युग में सर्व साधारण जन धोती दुपट्टा पहनते थे। धोती के लिए चार शब्द यथा अंतरीय, उपसंव्यान, परिधान और अधोंशुक आये हैं और चादर के लिए प्रावार, उत्तरासंग, बृहतिका, संव्यान और उत्तरीय। कूर्पासक एक मिर्जई अथवा चोली की तरह कोई वस्त्र था। आधी जांघ तक की घघरी को चंडातक कहते थे। जाड़े में पहरे जाने वाले लबादे को नीशार और पैर तक लटकते अंगे को प्रपदीन।

इस युग में स्त्रियां साड़ी, चादर और वैकक्ष्य पहनती थीं। कभी-कभी वे रंग बिरंगे कंचुक और चंडातक पहनती थीं। साड़ियां कभी-कभी पुष्पों और चिड़ियों की नक्काशी से सजी होती थी। स्त्रियां बहुधा मौसिम के अनुकूल कपड़े पहनतीं थीं। गरमी में हलकी दुकूल की साड़ी और वसंत में केसरिया साड़ी और लाल स्तनपट्ट पहनने के उल्लेख हैं।

राजे सादे पर सजीले कपड़े पहनते थे। रेशमी धोती, सितारे टंके हुए दुपट्टे, तथा हंसदुकूल वे अक्सर पहनते थे। उच्चवर्ग के लोग भी अपनी मान मर्यादा के अनुकूल कपड़े पहनते थे।

पैदल सिपाही कंचुक, रूमाल और कमरबंद पहनते थे। सिपाही रंग बिरंगी पगड़ियां और कंचुक भी पहनते थे। अश्वारोही दुकूल की बनी पगड़ी और वारबाण पहनते थे। युद्ध के अवसर पर सामंतगण पाजामे, कंचुक, स्तवरक के बने वारबाण, चीन चोलक और कूर्पासक पहनते थे। उनकी पगड़ियों में कर्णोत्पल की नालें खुसी होती थीं और उनके सिर केसरिया रंग के उत्तरीय से ढके होते थे।

गुप्तयुग के साहित्य में पगड़ी के काफी उल्लेख हैं। ये मलमल की पट्टियों से बनी होती थीं।

जैन छेद सूत्रों से भी गुप्त की वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है। हमें बतलाया गया है कि निम्नलिखित अवसरों के लिए अलग-अलग कपड़े होते थे——नित्यनिवसन, मज्जनिक (नहाने के बाद के कपड़े) क्षणोत्सविक (तिहवारों पर पहरने के कपड़े) और राजद्वारिक (राजा से भेंट करने के समय के कपड़े)। कपड़े खूब साफ सुथरी तौर से रक्खे जाते थे। इनकी धुलाई (धौत), कुंदी (घृष्ट), माड़ी (मृष्ट), और वासने (संप्रधूमित) का उल्लेख है। कपड़ों के भिन्न-भिन्न भागों में देवताओं और असुरों के निवास का लोगों को विश्वास था। शायद इसका यह कारण रहा हो कि लोग धार्मिक अवसरों पर ठीक नाप के शुद्ध कपड़े पहनें।

जैन साधु ऊंट के बाल, भांग के रेशे, ताल के पत्ते, सन, ऊन, बकरे के रोएं इत्यादि से बने कपड़े पहन सकते थे। इनके कपड़े प्रमाणवत्, सम, स्थिर और रुचिकारक होते थे। उन्हें सूती और उसके न मिलने

पर रेशमी अधोवस्त्र, तथा ऊनी चादर और उसके न मिलने पर छालटी और रेशमी चादर ओढ़ने का आदेश है। साधु एक साथ केवल दो वस्त्र यथा ऊनी और सूती अथवा तिरीटपट्ट और छालटी पहन सकते थे।

जैन छेदसूत्रों में कटाई और सिलाई के अनेक शब्द आये है। यथाकृत सादे कपड़े होते थे। कटे किनारे अथवा थोड़े काम वाले कपड़े को अल्पपरिकर्म और काफी काट वाले शरीर के नाप के बने कपड़े को बहुपरिकर्म कहते थे। उपरोक्त तीन तरह के वस्त्रों में जैन साधु केवल यथाकृत वस्त्र पहन सकते थे, लेकिन यात्रा और बीमारी के समय इस नियम का उल्लंघन क्षम्य था। जैन साधु साधारण नागरिकों की भांति कृत्स्न वस्त्र ग्रहण नहीं कर सकते थे। कृत्स्न वस्त्र छ श्रेणियों में अर्थात नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव के अनुसार बटे थे। द्रव्यकृत्स्न वस्त्र के दो विभाग थे सकल और प्रमाण। सकल के अदर गजिन, चिकने, बिना छोर और किनारे वाले कपड़े होते थे। प्रमाणकृत्स्न वस्त्रों की नाप साधुओं के वस्त्रों के नाप से बढ कर या घट कर होती थी। क्षेत्रकृत्स्न वस्त्र अप्राप्य और बहुमूल्य वस्त्र होते थे। काल कृत्स्न वस्त्र साल के कुछ महीनो में बहुत महगे पडते थे और मुश्किल से मिलते थे। भावकृत्स्न दो विभागों में यथा मूल्य के अनुसार (मूल्ययुत) और रग के अनुसार (वर्णयुत) बटे होते थे। साधु इन दोनों तरह के कपडे नहीं पहन सकते थे। पर स्थूण देश में अथवा उन देशों में जहा चोरों का भय नहीं था और जहा अच्छे वस्त्र पहनना कौतुक का हेतु नहीं बनता था जैन साधु कीमती, कपड़े किनारे हटा कर पहन सकते थे, पर कुछ अवस्थाओं में किनारे रख भी सकते थे। उत्कचन से पीडित साधु प्रमाणहीन वस्त्र भी पहन सकते थे। नेपाल, ताम्रलिप्ति और सिंधु-सौवीर में अच्छे कपड़े पहनने की प्रथा थी, इसलिए जैन साधु भी अच्छे कपड़े पहन सकते थे। कुछ ठडे देशों में साधु कीमती कबल भी ओढ़ सकते थे। जैन सघ में आने वाले राजकुमारों इत्यादि को उस समय तक कोमल वस्त्र पहनने की आज्ञा थी, जब तक वे खुरदरे कपड़ों के पहनने के अभ्यस्त नहीं हो जाते थे।

दोनो चादर के सिवाय साधु सादे सूती कमरबद भी पहन सकते थे। बीमार साध्वियो की सेवा करते समय वे गोपालकच्छ नामक वस्त्र विशेष पहनते थे।

साधारण नागरिकों की तरह जैन साधु निम्नलिखित चादरो और उपधानो का उपयोग नहीं कर सकते थे—कोयव (रोयेंदार कबल), प्रावार (रजाई), पूरिका (पाटकी बनी चादर), विरलिका (दो सूती), उपधान (परों से भरी तकिया), तूलि (अक तूलसे भरी तकिया), आलिगणिका (गाव तकिया), मसूरक (गोल गद्दी), गडोपधान (सिर के नीचे एक तरफ रखने की तकिया)।

जैन साध्वियां अपने शरीर को अच्छी तरह से ढकने के लिए निम्न लिखित वस्त्र पहनती थीं—अवग्रह (गुप्तांग ढकने के लिए एक तिकोना कपड़ा), पट्ट (चौड़ी पट), अर्धोरुक (जांघिया), चलनिका (आधी जांघों की घघरी), अतरनिवसनी (कपडे पहनने समय आड के लिए एक गमछानुमा वस्त्र), बहिर्निवसनी (एडी तक पहुचती साडी), कचुक (यह बेसिला वस्त्र होता था), ओपकक्षिकी (छाती ढकने हुए दाहिने कधे पर कपडा वस्त्र विशेष), वैकक्षिकी (बरडय), सघाटी (भिन्न भिन्न अवसरों पर पहनने के लिए चार सघाटियां होती थी) और स्कधकरणी (हवा में कपड़े उडने से बचाने के लिए कधे पर पहराजाने वाला एक वस्त्र विशेष)। गृहस्थ स्त्रियों की तरह साध्वियां साडी की चुनन आगे या पीछे नहीं खोंस सकती थीं। वे कचुक भी नहीं पहन सकती थीं, पर बीमारी में यह आज्ञा लागू नहीं थी, फिर भी यह आवश्यक था कि वह जालदार न हो।

आश्चर्य की बात है कि जिस युग में अनावृत शरीर आकर्षक माना जाता था दासियां और नर्तकियां सिले वस्त्र पहनती थीं। रायपसेणिय में एक जगह इसका उल्लेख है कि नट उत्तरीय, चित्र-पट से बने परिकर, कंचुक और रंग बिरंगे वस्त्र पहनते थे। नटियां भी कंचुक पहनती थीं।

गाय, भैंस, बकरे इत्यादि के चमड़ों से इस युग में तरह-तरह के जूते बनते थे। ये जूते प्रमाण और वर्ण के अनुसार सकल, प्रमाण, वर्ण और बंधकृत्स्न में बंटे थे। सकलकृत्स्न एक तल्ले जूते होते थे और प्रमाण-कृत्स्न दो या इनसे अधिक तल्लों वाले जूते। खल्लक बूट नुमा जूते होते थे। इनके दो उपभेदों में अर्ध-खल्लक आधे पैर ढकते थे और समस्त खल्लक पूरे पैर। वागुर से पैर की अंगुलियां ढक जाती थीं और कोशा से ठोकर लगने से बचाव होता था। जंघा पूरे जंघे को ढकता था और अर्धजंघा आधे जंघे को। तसमेदार जूते को पुटक कहते थे। कोशक और खपुसा सरदी और बरफ से बचने के लिए पहने जाते थे। सकलकृत्स्न जूते एक चमड़े से बने होते थे और वर्णकृत्स्न रंगीन चमड़े से। बंधकृत्स्न जूते में कई बंद होते थे। जो घुटनों और पैर की अंगुलियों पर होते थे। उपरोक्त किस्म के जूते केवल गृहस्थ पहन सकते थे। जैन साधु तो कई टुकड़े चमड़ों से बने एक तल्ले जूते ही पहन सकते थे। कुछ अवसरों पर जैसे यात्रा, बीमारी, आकस्मिक विपत्ति में अविहित जूते भी पहने जा सकते थे।

जैन साधु और साध्वियों की उपरोक्त वेश-भूषा में हम जैन-धर्म के विकास का रूप पाते हैं। आरंभ में रूखे वस्त्र केवल सामाजिक नियमों की पाबंदी के लिए पहने जाते थे, पर धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति की विलासिता के प्रभाव से तप-प्रधान जैन धर्म भी नहीं बच सका और जैन धर्म को भी अपने वस्त्र संबंधी कठोर नियमों को ढीला करना पड़ा।

सातवीं शताब्दी के चीनी यात्रियों ने भी भारतीय वेश-भूषा का विवरण किया है। युवान च्वांङ के विवरण से पता चलता है कि पुरुष सफेद धोती, और वैकक्ष्य पहनते थे और स्त्रियां शायद कंचुक, चादर और साड़ी। उत्तर भारत में सरदी के मौसिम में लोग तातारी ढंग की बगल बंदी पहनते थे। ईत्सिंग के अनुसार कश्मीर से लेकर मंगोलिया तक लोग कमीज, पाजामें और रेफनाम का एक जाकेट नुमा वस्त्र पहनते थे।

ईत्सिग के अनुसार बौद्ध भिक्षु संघाटी, उत्तरासंग और अंतरवासक पहनते थे। इनके सिवाय वे निम्न लिखित वस्त्रों का व्यवहार भी कर सकते थे—निषीदक, निवसन, प्रतिनिवसन, कायप्रच्छन, मुखप्रोछन, केशप्रतिग्रह और भेषजपरिष्कार चीवर। रेशमी वस्त्र भी पहनने की आज्ञा थी। बौद्ध निकाय के चार संप्रदायों के भिक्षु अपने निवसन अलग-अलग ढंग से पहनते थे और इससे उनकी पहचान हो जाती थी।

भिक्षुणियां उत्तरासंग, अन्तरवास, और संकक्षिका तो भिक्षुओं के ढंग पर ही पहनती थीं; पर निवसन की जगह चार हाथ लंबी और दो हाथ चौड़ी घघरी पहनतीं थीं, जिसमें कमर पर बांधने के लिए बंद लगा होता था।

कुरता आज दिन भारतीयों का साधारण वस्त्र है। संस्कृत साहित्य में तो इसका उल्लेख नहीं आता; पर लि-येन के संस्कृत चीनी कोश में इसका रूप कुरतौ दिया हुआ है। यह तो निश्चय है कि कुरता पुर्तगाली भाषा का शब्द नहीं है जैसा कि कुछ लोग मानते हैं, हो सकता है कि मध्य एशिया की तुर्की भाषा का यह शब्द हो।

फानयुत्सामिग में जूतों के लिए कई शब्द आये हैं। कवषि, जो शायद ईरानी कफस का रूप है, बूट होता था, इसी से बृहत् कल्पसूत्र भाष्य का कफुस्स निकला है। ले-फान-तांग-सिआओसि में दो तरह के

और जूतों के नाम ह—शवनस और पूल, पर इन जूतो की बनावट का पता नहीं चलता । महाव्युत्पत्ति में जूतो के लिए उपानह, पादुका, पादवेष्टनिका, पूल और मड (मुड) पूल शब्द आये हैं । मडा जूता आज दिन भी उत्तरी भारत में पहना जाता है।

गोल्ली के अध चित्रो से पता लगता है कि गुप्तयुग के पहले दक्षिण भारत की वेश-भूषा अमरावती के आयी वेश भूषा से बहुत भिन्न न थी । उच्च पदस्थ लोग घुटने तक की धोती और चूडी से निकलता हुआ कमरबद पहनते थे। एक जगह एक राजकुमार चुनी धोती, पेटी कमरबद और शोपपट्ट युक्त पगडी पहने है । घर में भी लोग कमरबद पहनते थे । युद्ध यात्रा के समय सिपाही अपनी धोती कमरबद से खोंस लेते थे । अक्सर सिपाही धोती, कमरबद अथवा पगडी, कचुक और धोती पहनते थे । अक्सर लोग लागदार धोती पहनते थे। पगडी स्थिर रखने के लिए पीछे कभी-कभी चौपतिया कोडा लगा होता था। ब्राह्मण धोती और वैकक्ष्य और प्रतिहारी कचुक, ऊची टोपी और वकक्ष्य पहनते थे । गोल्ली में एक जगह एक स्त्री टोपी पहने दिखलायी गयी ह ।

— , गुप्तयुग की मूर्ति कला में रस और आध्यात्मिकता को प्रोत्साहन देने से उसमें यथार्थवादिता की कमी आ गयी ह। उसमें वेश-भूषा का चित्रण रूढिगत आधारो पर हुआ है, इसलिए इस युग की मूर्तियो का महत्त्व वेश भूषा के इतिहास के लिए कम है, पर इस कमी को अजटा के भित्ति चित्र पूरा करते ह । सिक्को से भी हम तत्कालीन वेश भूषा का सु दर चित्र पाते हैं । अजटा के चित्रो पर सिक्को से मिली वेश भूषा से हमें पता चलता है कि भारतवर्ष मध्य एशिया, चीन और ईरान में आपस के सास्कृतिक और व्यापारिक सबध के कारण इस देश में बहुत से विदेशी वस्त्र भी ग्रहण कर लिये गये ।

अजटा के भित्ति-चित्रो में तो बोधिसत्व धोती, चादर, और मुकुट पहने दिखाये गये ह, पर सिक्कों पर अकित राजे तो धोती, दुपट्टा, कचुक, पाजामा, पगडी, टोपी और जूते पहने दिखाये गय हैं । लगता तो यह ह कि बोधिसत्वो की वेश भूषा रूढिगत ह और सिक्को पर राजाओं की वेश भूषा यथार्थ ह । सिक्को पर गुप्त राजे अधबहिया चाकदार और कामदार कोट, चूडीदार पाजामा और पूरे बूट पहनते थे । यह कोट कभी-कभी पूरी और ढीली आस्तीन वाला होता था और उसके साथ बटनदार बूट होता था। अधबहिया कचुक कभी-कभी जाघियों के साथ पहना जाता था। राजे अक्सर कचुक, कमरबद, जाघिया और शोपपट्ट युक्त पगडी पहनते थे,। कभी-कभी वे तुकमेकदार कोट, ब्रीचेस और खपुसा किस्म के जूते पहनते थे । आराम के समय राजे धोती और टोपी पहनते थे। चद्रगुप्त एक जगह कचुक और कमरबद और कहीं-कहीं जाघिया और कमरबद पहने दिखलाये गये ह । शिकार के समय राजा कचुक, कमरबद, धोती और चोद पहने दिखाये गये हैं । घोडे पर सवार राजा धोती और कमरबद और कभी-कभी कमरबद, कचुक और धोती पहनते थे। कभी-कभी उनके गले में दुपट्टा भी पडा होता था । कुमारगुप्त के युग में एक जातीय पहरावे का आविष्कार हुआ, जिसमें से पाजामा और पूरे बूट निकाल दिये गये। साधारणत राजे चाकदार कचुक और धोती पहनते थे और उनके साथ कमरबद भी । सिर प्राय खुला रहता था। कभी कभी वे टोपी भी पहनते थे ।

अजटा के भित्ति चित्रों में राजे और सामत प्राय धोती और वैकक्ष्य पहनते ह, पर उनके मुकुट रत्न जटित और भारी भरकम होते थे। एक जगह राजा धारीदार धोती, फुब्बेदार कमरबद और सिर में पेंच युक्त पगडी पहने ह । एक दूसरी जगह उनके पहरावे में धोती, पेटी, पटका, दुपट्टा और टोपी ह। एक तीसरी जगह वे चारखानेदार धोती और धातु निर्मित टोपी पहने ह। एक जगह राजा कूर्पासक, कमरबद और टोपी पहने ह। दूसरी जगह राजा कूर्पासक, कमरबद, धोती, वैकक्ष्य, करधनी और मुकुट पहने

है। एक चित्र में घोड़े पर सवार राजा कंचुक, धोती और कमरबंद पहने हैं । वाग के एक चित्र में राजे धारीदार धोती और चौखूटा मुकुट, तथा धोती और तिकोना मुकुट पहने दिखाये गये हैं। राजे अक्सर दुपट्टे नहीं पहनते थे और उनकी धोती प्रायः धारीदार होती थी । एक जगह अवलोकितेश्वर धारीदार धोती तिकोना मुकुट और करधनी पहने दिखलाये गये हैं। एक जगह राजा चारखानेदार धोती, दुपट्टा और आकर्षक गहने पहने हैं। एक जगह वे धारीदार धोती, मुकुट और कमरबंद पहने हैं। एक जगह उनकी वेश भूषा में मुकुट, धोती, कमरबंद और करधनी है। एक ईरानी राजा कामदार लंबा कोट, गोल टोपी और बूट पहने दिखाया गया है।

अजंटा के भित्ति चित्रों में निम्न लिखित भांति के मुकुट पाये जाते हैं—रत्न जटित लंबोतरा मुकुट, चोटीदार मुकुट, मोती की लड़ों से अलंकृत लंबोतरा मुकुट, वृत्तों और अर्ध चंद्रो से अलंकृत तिरछा मुकुट, पुष्पों से अलंकृत त्रिभुजाकार मुकुट, कलंगेदार मुकुट, तख्तियों से मंडित त्रिभुजाकार मुकुट, चिपकी टोपी जैसा मुकुट, ऊंची टोपी जैसा मुकुट ।

अजंटा के भित्ति चित्रों में घुड़सवार अक्सर पूरे बांह वाले कंचुक पहने दिखलाये गये हैं। कभी-कभी वे कूर्पासक और जांघिया भी पहनते थे। ईरानी सवार तिकोने गले वाले अंगे और ऊंची टोपियां पहने दिखाये गये हैं। कभी-कभी चाकदार कंचुक पर एक दूसरा वस्त्र होता था । उनके कंचुक कभी-कभी चौड़े कालर के भी होते थे। वाग के एक गुफा चित्र में एक सवारों का गरोह तरह-तरह के कंचुक पहरे दिखलाया गया है।

हाथीवान बहुधा कूर्पासक और जांघिया पहनते थे, पर कभी-कभी लंबे कंचुक भी पहन लेते थे।

पैदल सिपाही धोतियां पहनते थे और कभी-कभी पट्टियों से सिर के बाल बांध लेते थे। कभी कभी वे कूर्पासक और सिर पर रूमाल बांधते थे । एक जगह एक असिवाहक और कुंतलवाहक (आ० ३२३) कंचुक और कमरबंद पहने हैं।

युद्ध भूमि में राजे और सामंत कूर्पासक और पगड़ियां पहनते थे। शिकारी और बहेलिये छोटी धोतियां पहनते थे । एक जगह एक शिकारी चप्पल पहरे दिखाया गया है । एक जगह एक जंगली लंगोटी पहरे और धनुषबाण लिये दिखलाया गया है । एक जगह एक सँपेरा चारखानेदार धोती पहरे है । एक दूसरी जगह ऐसी ही धारीदार धोती पर तीर के फल बने हैं ।

अच्छे श्रेणी के शिकारी कंचुक और पाजामे पहनते थे । कंचुकीगण पगड़ी, कंचुक और दुपट्टे पहनते थे । मंत्रिगण कंचुक, चादर और कूर्पासक पहरते थे। सामंत और राजकुमारों की वेश-भूषा सादी होती थी। वे कभी-कभी जांघिया के ऊपर धोती पहरते थे। धोती उनकी चुनी होती थी और उस पर बंटा कमरबंद होता था । कभी-कभी धोती और पगड़ी पहनने का भी रवाज था। धोती खूब चुन और सजा कर पहनने की प्रथा थी । कभी-कभी लोग धारीदार धोती और चक्करदार पगड़ी पहनते थे। धोती पर भारी पेटी और ढीले कमरबंद भी पहरे जाते थे।

गायक और वादक टोपी, कंचुक और पाजामा पहनते थे और कभी-कभी कंचुक और धोती । वे तरह तरह की टोपियां भी पहनते थे । वे धारीदार धोतियां भी पहनते थे । एक जगह एक वादक धोती, कमरबंद और पेटी पहरे हैं ।

द्वारपाल भी अपने कपड़े संभाल कर पहरते थे, उनकी धोती चुनी हुई और कमरबंद खूब सजा हुआ होता था। वे कंचुक और चौड़ी पेटी भी पहरते थे और कभी कभी फूलदार कोट और टोपी। एक जगह एक द्वारपाल बूट और कंचुक पहरे दिखाया गया है।

राजभृत्य सिले कपडे अथवा धोती पहरते थे। इनके कचुको, पर कभी कभी नक्काशिया बनी होती थीं। युद्ध के अवसर पर राजभृत्य अवसर कूर्पासक, सौंद और छोटी धोती पहरता था। नहलाने वाले नौकर लाल रग की धोती पहरते थे और उनके सर रुमाल से ढके होते थे।

साधारण जन धोती, दुपट्टा और पगडी पहनते थे। ब्राह्मण धोती, दुपट्टा, कट प और वैकक्ष्य पहनते थे। विदूषक कचुक, बूट, धोती, दुपट्टा और टोपिया पहनते थे। एक जगह मदारी चारखानेदार धोती और दुपट्टा पहने दिखाया गया है।

अजटा के भित्ति चित्रो में हम मध्य एशिया, ईरान और सिरिया के लोगों की वेश-भूषा के चित्रण भी पाते हैं। इन देशो से इस युग में भारत का व्यापारिक और सास्कृतिक सबध था। इनकी वेश भूषा का भारतीय वेश-भूषा पर भी प्रभाव पडा, और विशेषकर दास दासिया सिले कपडे पहनने लगें।

मध्य एशिया अथवा ईरानी लोग कसीदे के कामदार कचुक और कमरबद पहनते थे। कभी-कभी ये कचुक के साथ पगडी भी पहनते थे। ईरानी फीतेदार गोल टोपी, पाजामे, मोजे और रुमाल पहने दिखाये गये है।

अजटा में एक जगह एक राज दरबार में प्रणिधिवर्ग का समागम दिखलाया गया है। विद्वानो का अब तक विश्वास था कि इस दृश्य का सबध खुसरो द्वारा पुलकेशी के पास भेजे गये प्रणिधि वर्ग से है, पर वास्तव में यह दृश्य वेस्सतर जातक का है। यह हो सकता है कि इस दृश्य का अकन किसी विदेशी प्रणिधिवर्ग अथवा व्यापारियो के किसी भारतीय राज्य दरबार में आने के दृश्य को लेकर किया गया हो। कम से कम अजटा के इस दृश्य में तो ये सिरिया के व्यापारी मालूम पडते है जो राजा को अपनी भेंट देने आये हैं। ये धारीदार कमीज, कोट, पाजामे, नोकदार बूट और टोपिया पहरे दिखलाये गये हैं। सिरिया में ड्यूरा युरोपास की खुदाई से मिले कुछ भित्ति चित्रों में भी ऐसी ही पोशाक का अकन हुआ है और इसी के आधार पर हम कह सकते हैं कि अजटा के प्रणिधिवर्ग वाले दृश्य के विदेशी सिरिया के है।

अजटा के विदेशी तरह तरह की टोपिया और खोद पहने भी दिखलाये गये हैं।

अजटा के चित्रों में बच्चे, धोती, बालबद, पटके, जाघिया, कचुक, बूट, टोपी, छन्नवीर और कमर पेटी पहने दिखलाये गये है।

गुप्तयुग के सिक्कों में स्त्रिया साडिया, कचुक, स्तनपट्ट, चादर और कूर्पासक पहने दिखलायी गई हैं। कभी-कभी ये जालीदार टोपी भी पहनती थीं। एक जगह एक स्त्री कुरता और घाघरा पहरे दिखायी गयी है।

अजटा के चित्रों में रानिया साडी और घघरी पहनती हैं। साडी बहुधा धारीदार होती है। कभी-कभी ये चोली पहनती थीं। एक जगह रानी चोली और कामदार घघरी पहने है, और एक जगह कचुक और स्तनपट्ट भी पहना गया है। घघरी गोंटदार भी होती थी। चोली के साथ छोटी घघरी भी पहनी जाती थी।

अजटा के चित्रो में हम दास-दासियों की वेश-भूषा में काफी चटक-मटक पाते हैं। मामूली तौर से दासियां साडी, ढीला कमरबद और कमरपेटी पहनती थीं, लेकिन बहुत सी दासियां घघरिया और कचुक भी पहनती थीं। इन में सिले वस्त्रों में कचुक, कचुक के ऊपर जाकेट, चढावदार आगे वाला कचुक, फ्राकनुमा चोली, हसडुरुक का बना पूरे बांह का कचुक, विचित्र तरह की टोपी के साथ कचुक, कामदार टोपी और कुम्मेदार टोपी मुख्य हैं।

विदेशी नस्ल की दासियाँ, टोपी, कसीदेदार कंचुक झालरदार लहँगे पहनतीं थीं। एक दूसरी जगह एक विदेशी दासी कुब्बेदार टोपी और कंचुक पहने है। एक जगह कंचुक के साथ रूमाल है। एक जगह उसकी टोपी तस्नेदार है। एक जगह एक दासी जाकेट और खौदनुमा टोपी पहने है।

दासियां मोती के गोटों से सजी चोली भी पहनती थीं। एक जगह एक दासी कंचुक, चोली और घघरी पहने है। एक पंखा हांकने वाली स्त्री स्तनपट्ट और घघरी पहरे दिखलायी गयी है। दासियां अकसर अधबहियां कंचुक भी पहनती थीं। दासियां घघरी के साथ वैकक्ष्य भी पहनतीं थीं। वे बिना कंधों और बाहों वाला कंचुक और छपहली टोपी भी पहनतीं थीं। उनकी टोपी कभी-कभी चौपहली और धारदार भी होती थी। एक जगह एक मध्य वर्ग की स्त्री अथवा दासी बिना बांह की चोली पहरे है।

बाग के एक भित्ति-चित्र में हाथी पर सवार स्त्रियां जांघिया, चोली और घघरी पहने है।

अजंटा के भित्ति चित्रों में रानियां मुकुट पहने दिखलाई गयी हैं। दासियां कभी-कभी टोपी पहनती हैं। एक जगह एक स्त्री छपे रूमाल से अपना सिर ढके है। एक जगह टोपी झालरदार है।

जंगली स्त्रियां पत्तियों की बनी घघरी पहनतीं थीं। ग्रामीण स्त्रियां साड़ी पहने बतलायी गयी है।

नाचने बजाने वाली स्त्रियाँ धोती वैकक्ष्य और चोली, लंबा कंचुक जिसके ऊपर एप्रन जैसा वस्त्र होता था, घाघरा अथवा घघरी पहनतीं थीं। बाग के चित्रों में नर्त्तकी चाकदार कंचुक, या जामा और रूमाल पहनती है। एक बजाने वाली के कंधे पर रूमाल है। वे घाघरा और अधबहियां कंचुक भी पहनती हैं।

अजंटा से आये कपड़ों पर निम्नलिखित नक्काशियां मिलती है: पट्टियां और फूल पत्तियां, और फूल की पंखड़ियां, फ़ुल्ले, खिले फूल, पेचक, धारियां और तीर के फल, पत्तियां छोटे फूल इत्यादि।

प्रागैतिहासिक काल से सातवीं सदी तक की वेश-भूषाओं और कपड़ों के वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय वेश-भूषा के इतिहास में भी एक विकास क्रम है, जिसके अनुसार समय-समय पर इसमें लोगो के रुचि के अनुसार और विदेशियों के संसर्ग से परिवर्तन होते आये। हमारा देश उष्ण प्रधान है और इसीलिए यहां सिले वस्त्रो को उतनी प्रधानता नहीं मिली जितनी कि ठंढे देशों में। कपड़े सिले न होने से उनमें एक सादगी है, पर मनुष्य की रुचि सर्वदा से बनाव चुनाव की ओर अधिक रही है और इसी लिए हम इन सादे वस्त्रों में भी बनाव चुनाव अधिक पाते है। शिरोवस्त्र और पगड़ियों के इतने प्रकार तो शायद ही और किसी देश में और किसी काल में मिलते हों। सारांश यह है कि अगर वेश-भूषा के पैमाने से भी हम भारतीय सभ्यता को जांचें, तो भी वह किसी प्राचीन सभ्यता से कम नहीं रहेगी।

अन्त में मैं उन मित्रो का आभारी हूँ; जिन्होने मुझे इस कठिन विषय को आगे बढ़ाने में सदा प्रोत्साहित किया। इन मित्रों में डा० वासुदेवशरण मुख्य है। पर यह पुस्तक अधूरी ही रह जाती, अगर मेरे चित्रकार मित्रो ने मेरा हाथ न बंटाया होता। प्रारम्भ में श्री हरिहरलाल मेढ़ और श्री जगन्नाथ अहिवासी ने मेरी बड़ी सहायता की। बाद में श्री राम सूबेदार ने आकृतियों के बनाने का काम संभाला, बिना इनकी मदद के शायद यह काम ही न कर पाता। एतदर्थ मैं इन मित्रों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। प्रेस कापी तैयार करने में मेरी पत्नी श्रीमती शान्ति देवी ने पूरा हाथ बंटाया, इसके लिए मैं उन्हें क्या धन्यवाद दूँ।

प्रथम अध्याय

प्रागैतिहासिक युग में भारतीय वेश-भूषा—मोहेनजोदडो और हडप्पा

ऐतिहासिक अनुश्रुतियो के आधार पर तो हमारी सभ्यता सनातन है, और अधिकतर भारतीयो का विश्वास भी ऐसा ही है। पर किसी सभ्यता का इतिहास केवल अनुश्रुति गत कल्पनाओ को ही लेकर नही लिखा जा सकता। आजकल का वैज्ञानिक युग सत्य तो उसे ही मानता है जो दृश्य है और जिसकी सत्ता वैज्ञानिक आधारो पर भावित की जा सकती है। केवल आज मे पचीस तीस वर्ष पहिले पुरातत्व शास्त्री भारतीय सभ्यता के इतिहास का आरभ वैदिक युग यानी १५०० ई० पू० या अधिक से अधिक २००० ई० पू० से करते थे। वैदिक आर्यो के पूर्व इस देश में एक सभ्यता थी, यह तो विद्वान मानते थे पर उसका ठीक ठीक रूप क्या था इसका निश्चय विना पुरातत्व के सहारे करना कठिन था। युरोपीय विद्वानो को तो दृढ विश्वास हो चुका था कि भारतीय इतिहास का आरंभ करीव १५०० ई० पू० से ही होता है और इसके पहिले शायद एक द्रविड सभ्यता इस देश में थी पर उसकी सस्कृति आर्य सस्कृति से काफी कमजोर थी। द्रविड एक तरह से जगली थे और उनके धार्मिक विश्वास अर्थात नाग, वृक्ष पूजा इत्यादि भी उनके जगलीपन के सबूत है। इस विश्वास की मजबूती का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वेदों मे या बौद्ध और पौराणिक साहित्यो मे अगर भारत का किसी ऐसे देश से सबध का जिक्र है जिसकी ऐतिहासिक स्थापना से भारतीय सभ्यता का इतिहास १५०० ई० पू० के कुछ आगे बढ सकता हो तो विद्वानो में एक तरह की खलबली मच जाती थी और वे इन ऐतिहासिक स्थापनाओ का खडन कर के यह दिखलाने का प्रयत्न करते थे कि भारतीय साहित्य मे यह अवतरण बाद के है। उदाहरण के लिए बावेरु जातक (जातक ३३९) में बावुल देश को भारत से मयूर पक्षी जाने का उल्लेख है, जिससे पता चलता है कि इस देश से बावुल का सबध काफी प्राचीन समय से था[1]। इस सदर्भ को लेकर विद्वानो में काफी बहस छिड पडी। पालि बावेरु प्राचीन ईरानी हखामनी बादशाहो के अभिलेखो में आये बबिरु का रूपान्तर माना गया और इस आधार पर इस मत की स्थापना हुई कि फारस की खाडी के देशो से और भारतवर्ष से ई० पू० पाचवी से सातवी सदी तक व्यापारिक सबध था। लेकिन इस स्थापना को विद्वानो ने एक स्वर से स्वीकार नही किया। श्री हलेवी का तो यह दृढ मत था कि यह उद्धरण ई० पू० दूसरी शताब्दी के पहिले का नही हो सकता लेकिन इस सबध में श्री हलेवी इस बात की मीमासा करना भूल गये कि जातककार ने अगर अपनी कथा ई० पू० पहली

१—सिल्वें लेवी, ओनूर दु बावेरु—जातक, पृ० २८४ आगे, मेमोरियल सिल्वें लेवी, पेरिस, १९३७

या दूसरी शताब्दी में लिखा तो उसने बाबुल का ग्रीक नाम जो सिकंदर के समय से चल चुका था क्यों न देकर उसके पहले चलने वाले ईरानी नाम का क्यों प्रयोग किया। इन सब तर्कों से यह पता चलता है कि पश्चिमी पुरातत्ववेत्ता और भाषाशास्त्री भारतीय सभ्यता को मिश्र और बाबुल की प्राचीन सभ्यताओं की कोटि मे नही आने देना चाहते थे। इस बात से उनका पक्षपात तो साबित होता है पर प्रमाणाभाव से हम उनकी विधिवत युक्तियों के खंडन में प्राय: असमर्थ थे । लेकिन उनका मत कुछ दिनों तक ही चल सका। १९२२ ई० मे मोहेन-जोदड़ो के एक बौद्धस्तूप की खुदाई करते हुए श्री राखालदास बेनर्जी को सिधु-घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता का पता चला। मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई जैसे जैसे आगे बढ़ती गयी वैसे वैसे भारतीय सभ्यता की प्राचीनता के ठोस सबूत मिलते गये और पुरातत्ववेत्ताओं ने एक स्वर से इस बात को स्वीकार कर लिया कि भारतीय सभ्यता प्राचीनता में सुमेर और मिश्र की सभ्यताओं से न केवल टक्कर ही लेती है वरन कुछ बातों मे जैसे नगर रचना में तो उनसे भी आगे बढ़ जाती है।

इस सिधुघाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता के जो कुछ भी अवशेष मिले है उनसे पता चलता है कि वह सभ्यता वैदिक सभ्यता से कहीं आगे बढ़ी हुई थी। सिधुसभ्यता ३००० ई० पू० या ४००० वर्ष पूर्व फूल फल रही थी और इसमे वैदिक आर्यो की सभ्यता का कोई लेश नही मिलता। इस सभ्यता का संबंध सुमेर, अक्काड और एलम से भी था और अफगानिस्तान, कश्मीर और सुदूर दक्षिण से भी। उस प्राचीन काल में भी सिधुघाटी की सभ्यता काफी आगे बढ़ी हुई थी। बड़े बड़े शहरों मे लोग रहते थे । गेहूं और जौ की खेती होती थी और लोग बैल, भैंसे, भेंड़े, सूअर, कुत्ते तथा हाथी पालते थे । सवारी के लिए वे पहियेदार गाड़ियों का व्यवहार करते थे। वे धातुओं के सामान और औजार बना सकते थे। लड़ाई और शिकार मे वे धनुष बाण, भाले, कुल्हाड़ियां, छुरे तथा गदा व्यवहार में लाते थे । उनके घरेलू मिट्टी के बरतन चाक पर चढ़े होते थे और अक्सर उन पर अलंकार बने होते थे। समृद्धजन प्रसाधन के लिए सोने, तांबे, कच्चे शीशे, हाथीदांत और अकीक इत्यादि की मणियों से बने गहने पहनते थे, गरीब मट्टी तथा शंख के बने गहनो ही पर संतोष करते थे । लेखन कला से भी वे अवगत थे । सभ्यता के इतने आगे बढ़ने पर भी सिधु सभ्यता मे वस्त्र काफी सादे होते थे । साधारणत: लोग लंगोटी या तहमत पहनते थे। बहुधा लोग नंगे भी रहते थे । कभी कभी चादर से छाती ढंकी होती थी। बाल बहुधा फीतो से बंधे रहते थे। स्त्रियो के शिरोवस्त्र कभी कभी पंखे के आकार के होते थे ।

मोहेनजोदड़ो में कताई के साधन

मोहेनजोदड़ो से बहुत सी तकुओं की फिरकियां मिली है जिनसे पता लगता है कि अमीर गरीब सब सूत कातते थे । गरम कपड़े ऊन से बनते थे और हलके कपड़े सूती होते

थे। मोहेनजोदडो से मिले हुए एक चादी के पात्र में चिपके वस्त्र के कुछ टुकडो के वैज्ञानिक अनुसधान से इस वात का पता चला कि इन टुकडों में सूत उस साधारण कपास का है जो आज दिन वहुतायत से भारतवर्ष में होती है। सर जान मार्शल का कहना है कि इस खोज से अव यह वात पुष्ट हो जाती है कि वावुली भाषा में सिंधु और ग्रीक भाषा में सिंडोन (Sindon) जिनका अर्थ कपडा होता है सेंमल रुई के सूत के न हो कर कपास के होते थे[२]।

सिंधु सभ्यता मे पहनने के कपडे

सूती वस्त्र खड के मिलने से यह विचार स्वाभाविक ही है कि मोहेनजोदडो में भाति भाति के वस्त्र पहने जाते रहे होंगे लेकिन वस्त्रो के इतिहास के सम्वन्ध में जो कुछ भी सामग्री हमें मोहेनजोदडो और हडप्पा से मिली है उससे हमारी यह धारणा गलत सिद्ध होती है। एक मनुष्य मूर्ति एक लवी चादर पहने हुए है (चि० १–२) यह चादर छाती ढकती हुई वाए कधे पर डाल दी गई है, वायाँ हाथ खाली है। यह चादर काफी लवी होती थी और वैठने पर पैरो तक पहुच जाती थी। पत्थर की एक दूसरी मूर्ति एक तहमत नुमा कपडा पहने हुए है[३]। वाए कधे के नीचे एक अनिर्धारित रेखा से शायद चादर का तात्पर्य हो। अगर हमारा अनुमान ठीक है तो चादर दाहिने कधे को ढकती थी। लेकिन चादर पहिनने का यह ढग अनियमित सा है क्योकि अव तक मिली हुई मूर्तियो मे चादर वायें कधे को ही ढाकती हुई दिखलायी गयी है, उनका दाहिना कधा हमेशा खुला हुआ होता है।

यह कहना तो कठिन है कि आदमी चादर के नीचे धोती, लगोटी या तहमत ऐसा कोई वस्त्र वरावर पहिना करते थे क्योकि मनुष्य मूर्तिया प्राय नगी वतलायी गयी हैं। लेकिन मुद्राओ पर चित्रित देवता और वीर पुरुष एक वहुत सकरा कोपीन पहने हुए दिखलाये गये हैं। हडप्पा से मिले हुए एक ठीकरे पर वनी हुई मनुष्य मूर्ति[४] एक तग मोहरी वाला पाजामा या धोती पहने हुए दिखलायी गयी है।

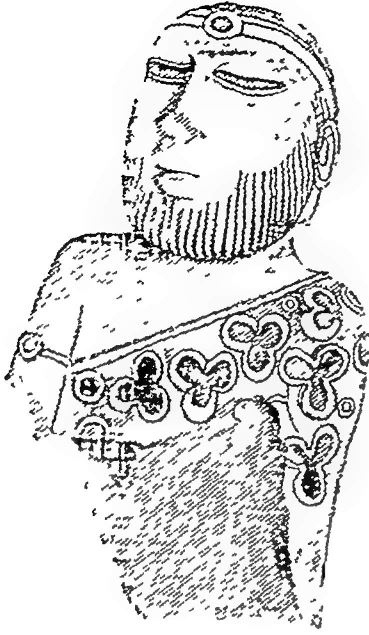
हडप्पा और मोहेनजोदडो से अभी तव जो सामग्री हमें मिली है उसके आधार पर यह कहना मुश्किल है कि सिंधु सभ्यता के लोग सिले हुए कपडो से अवगत थे अथवा नही। केवल एक मूर्ति कमीज जैसा वस्त्र पहिने हुए है जो कमर पर एक डोर से वधी हुई है[५]।

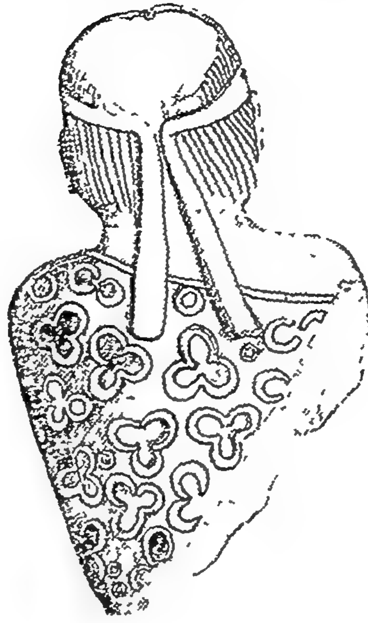
२—मार्शल, मोहेनजोदडो एड इडस वेली सिविलाइजेशन १, पृ० ३३, प्लेट ९८

३—मेके, फरदर एक्सकेवेशस एट मोहेनजोदडो, भा० १, पृ० २५७, भा० २, प्ले० १०५, स० ६०-६१

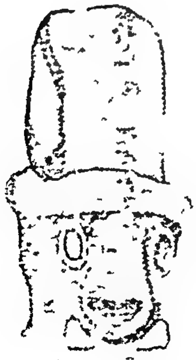
४—मेके, इडस वैली सिविलाइजेशन, पृ० १०३

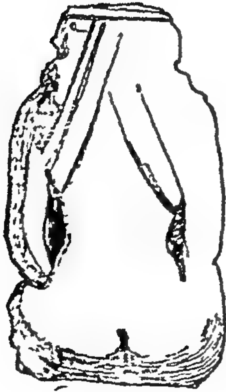
५—मेके, उपरोक्त

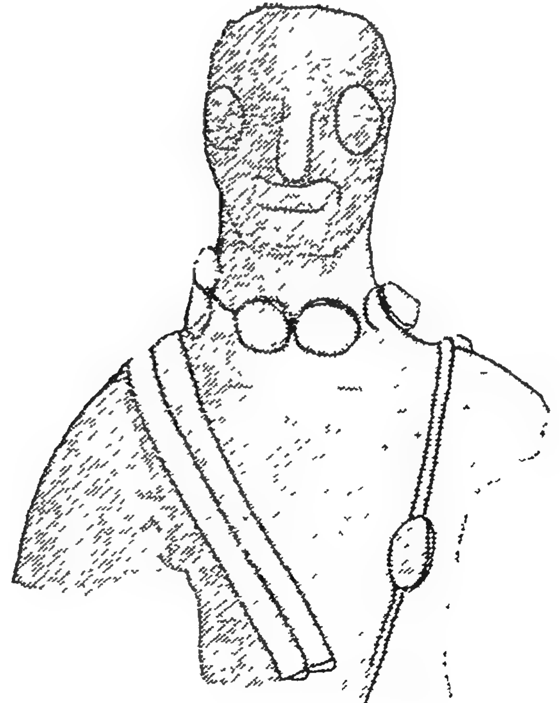

१


२


३


४


५


६

वाल वहुधा फीते से वधा होता था (आ० १)। लगता है मनुष्य कभी कभी नोकदार चपकी हुई टोपी भी पहनते थे। इस टोपी की नोक या तो फीते से वधी हुई एक तरफ झुकती हुई दिखलाई गई है (आ० ३) [६] या वह पेचदार है (आ० ४) [७]।

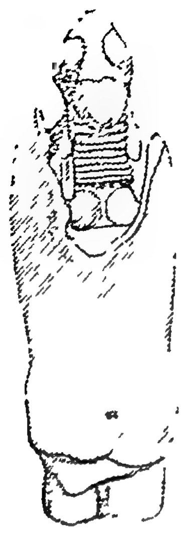
कभी कभी दुपट्टे की तरह का वस्त्र मनुष्य गले मे पहने दिखलाये गये हैं। यह एक तरफ झुकता हुआ होता है (आ० ५) [८]। वटन या ब्रूच से वधा हुआ यह दुपट्टा प्राय दोहरा होता था (आ० ६) [९]। डा० मेके [१०] का यह अनुमान है कि यह दुपट्टा शायद किसी पद के अधिकार का अथवा किसी धर्म विशेष का द्योतक है।

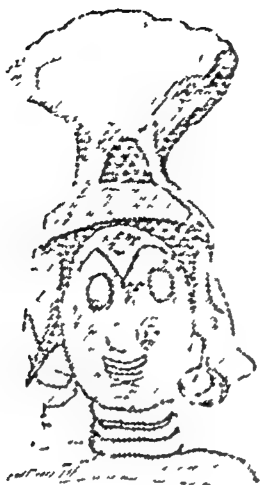
स्त्रियो की वेश-भूषा

मट्टी की मूर्तियो मे स्त्रियो के जो भी वस्त्र आते हैं वे काफी साधारण है। अगर गहने वाद कर दिये जावें तो स्त्रियो के धड नगे दीखते हैं। सकरी साडी घुटने के वहुत ऊपर पहुचती है, इसे साडी न कह कर लगोटी कहना वेहतर होगा। जतरो पर वनी स्त्री मूर्तिया भी ऐसी ही लगोटी पहने है। लेकिन इस लगोटी का आगा पीछा के वनिस्वत काफी छोटा होता है। लगोटी को कमर से वाधने के लिए मेखला पहनी जाती थी। यह मेखला कई लड मनको या सादे कपडे की, जिसके छोर मिलाने के लिए एक चपकन होती थी, वनी होती थी। एक जगह मेखला किसी वुने कपडे के फूदने से वधी दिखलायी देती है। कही कही लगोटी किसी गुल्फिका (boss) जैसे आभरण से भूषित दिखलायी गयी है [११]। एक मट्टी की मूर्ति में एक स्त्री घोघी (cloak) पहने दिखलायी गयी है। इस घोघी ने स्त्री के हाथ छिपा रक्खे हैं, और वह लगोटी के छोर के नीचे नही पहुचती (आ० ७)। डा० मेके का अनुमान है कि शरीर रक्षा के अतिरिक्त साधन के रूप मे इसका व्यवहार हुआ है [१२]।

स्त्रिया और पुरुष भी पखे के आकार का एक शिरोवस्त्र पहनते हैं (आ० ८)। अभी तक इस वात का पता नही चल सका है कि उसके वनाने में कौन सा कपडा लगता था। डा० मेके का अदाजा है कि शायद यह फ्रेम पर चढे माडीदार कडे कपडे से वना हो [१३]। यह भी हो सकता है सिर पर की चादर का एक कोना वाध कर इस शिरोवस्त्र का रूप खडा किया

६—मार्शल, वही, प्लेट ९४, ११
७—मार्शल, वही, प्लेट ९४, ४
८—मेके, फदर एक्सकेवेशन २, प्लेट ७६, २२
९—वही, प्लेट ७६, १५
१०—वही, भा० १, पृ० २६२
११—मेके, इडस वेली सिविलिजेशन, पृ० १००-१०१
१२—मेके, फदर एक्सकेवेशन आ० २, प्लेट ७५, ६, इडस वेली पृ० १०१
१३—मेके, इडस वेली पृ० १०१

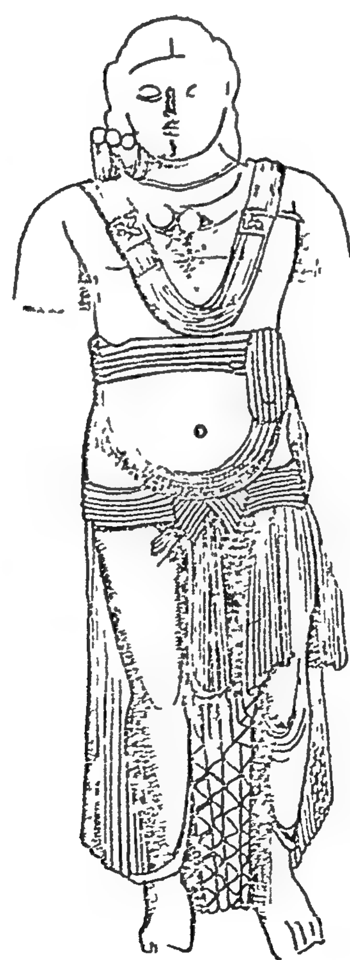

७


८

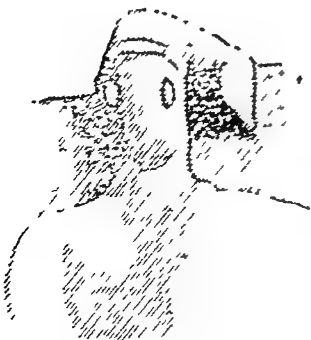

९


१०


११



१४


१२

१३


१५

गया हो क्योकि साची में इस शिरोवस्त्र का रूप ऐसा ही बनाया गया है। जब यह शिरोवस्त्र दोनो तरफ दिवलीदार न हो कर सादा होता था तो इस पर कुछ अलकार होते थे। कभी कभी इसके दोनो ओर वृत्ताकार अलकार होते थे और कभी मनके की लडो और एक चोगानुमा अलकार से इसकी सजावट होती थी (आ० ९-१०)[१४]। कही कही शिरोवस्त्र सीधा सिर पर रक्खा हुआ देख पडता है और कही कही वह पीठ पर गिरती चोटी से लगा हुआ और सिर से एक फीते से बधा मालूम पडता है[१५]। दिवलीदार शिरोवस्त्र तो शायद देवी माता ही पहिनती थी। पेशानी पर बधे एक फीते के सहारे ये शिरोवस्त्र टिके रहते थे। शिरोवस्त्र में लगी दिवलियो में काजल ऐसे कुछ धब्बे मिले है जिनसे पता चलता है कि शायद इनमें किसी समय दीपक जलाये जाते थे[१६]। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हाथ मे या सिर पर दीप धारण किये हुए मध्यकालीन और आधुनिक दीपलक्ष्मी की मूर्तियो का स्रोत प्रागैतिहासिक काल में है।

कही कही कुछ अजीब ढग के शिरोवस्त्र भी मिलते है[१७]। पखे के आकार वाले इन शिरोवस्त्रो पर एक तिपाई भी दीख पडती है, यह तिपाई शायद किसी अलकार की द्योतक हो। यह भी हो सकता है कि इस तिपाई का तात्पर्य किसी देवपीठ से हो। आज दिन भी देवयात्राओ में स्त्रिया अपने सिरो पर देवपीठ ले कर चलती है। पगडी पहने हुए स्त्री मूर्तिया (आ० ११) कम मिली है[१८]। लगता है स्त्रिया कभी कभी ढीली टोपी भी पहिनती थी (आ० १२)[१९]।

१४—मेके, फर्दर एक्सकेवेशन्स भा० २, प्ले० ७५, ३, ८, ७६, १७
१५—मार्शल, वही, भा० १, पृ० ३३८
१६—वही, भा० १, पृ० २६०, २, प्ले० ७३, ३, ४, ७५, २१—३७
१७—वही, भाग २, प्ले० ७५, १५, १६
१८—वही, भा० २, प्ले० ७६, १६
१९—मार्शल, वही, भा० १, पृ० ३४०, प्ले० १५३, २५

द्वितीय अध्याय

वैदिक युग में वेश-भूषा

सिंधु सभ्यता के समाप्त होने से लेकर ई० पू० तीसरी शताब्दी तक हमें भारतीय सभ्यता के इतिहास के लिए पुरातत्व की अधिक सामग्री नहीं मिलती। मोहेनजोदड़ो के नष्ट होने (२५०० ई० पू०) और आर्यो के भारत आने (१५०० ई० पू०) के बीच में जो एक हजार वर्ष का अंतर पड़ता है उसमे भारतीय सभ्यता किस तरह से फूली फली इसका भी हमे ठीक ज्ञान नही है।

जब सिंधु सभ्यता के बाद ऐतिहासिक अंधकार का परदा उठता है तो हमें वैदिकयुग का दर्शन मिलता है, और भारत की आरंभिक आर्य सभ्यता का दर्शन कराने के लिए हमारे सामने ऋग्वेद के मंत्र आते है। लेकिन वैदिक सभ्यता कोई एक काल विशेष तक सीमित नही थी वह तो १५०० ई० पू० से लेकर करीब ५०० ई० पू० तक बढ़ती और प्रसरित होती रही। पहले संहिताएं बनी, बाद मे ब्राह्मण ग्रंथ, और अंत मे उपनिषद् और सूत्र ग्रंथ। काल क्रम के पैमाने मे आगे या पीछे होने से वैदिक साहित्य मे भी एक ऐतिहासिक विकास क्रम पाया जाता है। वैदिक साहित्य के विभिन्न ग्रंथों के समय निर्धारित करने की विद्वानों ने चेष्टा की है लेकिन अभी तक वे दृढता के साथ वैदिक ग्रंथों का समय निश्चित नहीं कर सके है।

वैदिक साहित्य के काल क्रम की यह गड़बड़ी जब हम वैदिक सभ्यता का इतिहास लिखने बैठते हैं तो बड़ी खलती है, क्योंकि हम दृढतापूर्वक यह नही कह सकते कि सभ्यता के प्रतीक अमुक अग का आरंभ और विकास समय के पैमाने मे कब से कब तक हुआ। साधारणत. हम ऋग्वेद को वैदिक आर्यो का आदि ग्रंथ मान कर उसी के आधार पर आरभिक आर्य सभ्यता का रूप खडा करते है, लेकिन अथर्ववेद और कही कही ब्राम्हणों मे भी आर्य और अनार्य सभ्यताओं के कुछ ऐसे प्रारभिक रूप आये है जो ऋग्वेद के समकालीन हो सकते है। बात यह है कि ऋग्वेद कोई इतिहास का ग्रंथ तो है नही जिसमे तत्कालीन सभ्यता के सब रूप आने जरूरी थे। वह तो दान तथा देव स्तुतियों और दार्शनिक विचारो का एक संग्रह मात्र है। जिसमे वैदिकसभ्यता के भिन्न भिन्न पहलुओं के संकेत आनुषगिक रूप से हो गये है। वैदिक युग की भारतीयसभ्यता के अनेक प्रतीक श्रुत वा दृश्य अथर्ववेद और कही कही ब्राहणो मे बाद मे आये लेकिन केवल बाद मे आने ही से तो यह कहा नही जा सकता कि उनका विकास बाद में हुआ। बहुधा वैदिक साहित्य के अध्ययन में ऐसी अड़चनों का हमें सामना करना पड़ता है और तब हमे बुद्धि और वैज्ञानिक

तर्क की तराजू पर यह तौल कर देखना पडता है कि पलडा किस पक्ष का भारी है और उसी के अनुसार हमें अपनी राय कायम करनी पडती है। ऐसे समय हमें पुरातत्व का कोई सहारा न मिलना बडा खलता है क्योंकि साहित्य तो साहित्य ही है केवल उसी के सहारे हम उस वैज्ञानिक तथ्य तक नही पहुच सके जिस पर हम वैज्ञानिक पुरातत्व की खोजो से पहुच सकते है । पुरातत्व के सहारे हम सभ्यता सबधी साहित्यिक उद्धरणो की जाच पडताल करके उनके कालसम्बन्धी एक विशेष निष्कर्ष पर पहुच सकते हैं, पर कोरे साहित्य से और ऐसे साहित्य से जिसका काल अभी विवादग्रस्त है हमारा विशेष काम नही निकल सकता। लेकिन जब हमारे पास पुरातत्व के साधन नही है तो हमें लाचार होकर साहित्य का आश्रय लेना ही पडता है। फिर चाहे उससे निकाले गये नतीजे कितने ही विवादग्रस्त क्यो न हो।

वैदिक साहित्य भारतीय सभ्यता के १००० वर्षों से अधिक विकास के इतिहास का भण्डार है । लेकिन उसमें जो कुछ आया है उसे हम एक ही काल मे नही ढ्ढ सकते, उसमें ऐतिहासिक विकास की परपरा दिखलाने के लिए हमें काल विभाजन का सहारा तो लेना ही होगा । जहा तक वस्त्र-भूषा का सबध है हमारी कठिनाई कुछ इसलिए सरल हो जाती है कि सहिताओ, ब्राह्मणो और उपनिषदो में आनुषगिक रूप से वस्त्रो की जो भी चर्चा आई है उसमें एकता है जिससे यह पता चलता है कि जहा तक वस्त्रो का सबध है वैदिक काल में करीब ८०० वर्षों तक विशेष परिवर्तन नही हुआ। इसके दो कारण हो सकते है, (१) अपने प्रारभिक वेश-भूषा के प्रति आर्यों का मोह, गो कि वैदिक साहित्य के कुछ शब्दो से यह पता चलता है कि आर्यों ने भारत में अपने पूर्व के निवासी द्रविडो और निषाद जातियो से कुछ वस्त्र ग्रहण किये थे । (२) इतिहास में बहुधा यह देखा गया है कि किसी नवीन सभ्यता के सम्पर्क में आने से अथवा उससे विजित होने पर विजित सभ्यता विजेताओ के वस्त्र ग्रहण कर लेती थी। उदाहरण के लिए करीब २९०० ई० पू० में जब अक्काद के लोगो ने सम्पूर्ण सुमेर पर अपना अधिकार जमा लिया तो प्राचीन सुमेर के लोगो ने 'कौनकेस' या तहमत की जगह जो उनका जातीय वस्त्र था अक्कादियो के वस्त्र कमीज और चादर को अपना लिया। लेकिन वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि न तो वे बाहरी किसी शक्ति से विजित हुए न उनके विशेष सपर्क में आये। इसीलिए उनके अपने वस्त्र जिनमें उन्होने देश काल के अनुसार सुधार भी कर लिये होगे ज्यो के त्यो बने रहे । वस्त्रभूषा की इस एकता को देखते हुए हमने सपूर्ण वैदिक युग को एक ही माना है और इसके काल विभाजन नही किये है। हा सूत्र युग में जिसका आरभ करीब ५०० ई० पू० से होता है हमें नये वस्त्रो के नाम मिलने लगते है और इसीलिए हमने इस सूत्र युग की वेश-भूषा का वर्णन महाजनपद युग की वेश-भूषा के अतर्गत किया है ।

आर्यों का आदि स्थान कहा था इस प्रश्न पर तो काफी बहस रही है लेकिन इतना

तो निश्चित जान पड़ता है कि आर्य भारतवर्ष में और पश्चिमी एशिया में एक साथ प्रविष्ट हुए और ईरानी और भारतीय आर्य करीब २५०० ई० पू० मे अलग हुए। भारतीय आर्यों ने इस देश मे २००० ई० पू० और १४०० के वीच अफगानिस्तान और हिंदूकुश के रास्ते से होकर प्रवेश किया और सबके पहले सिंध नदी की उपरली घाटी मे वसे। वाद मे उन्होने धीरे धीरे आगे वढ़ते हुए गंगा की घाटी मे भू-स्थापना की और अंत में विंध्यक्षेत्र और सुदूर दक्षिण में फैल गये। पशु पालन और कृषि इनके प्रधान व्यवसाय थे और आरंभिक काल में वे गांवों में रहते थे। गृह निर्माण, वढ़ईगिरी और रथ वनाने की कला मे वे पटु थे। अयस के वरतन वना सकते थे और सोने और गहनों के उपयोग वे करते थे। वे कपड़े भी वुन सकते थे। सीने पिरोने, चमड़े कमाने और मिट्टी के वरतन वनाने की कलाओं से भी वे परिचित थे।

ऊनी वस्त्र

आर्य कातने और वुनने के लिए भेड़ों का ऊन व्यवहार मे लाते थे और इसीलिए भेंड को वे ऊर्णावती[१] कहते थे और ऊन को आविक[२]। सिंध की घाटी को सुवासा ऊर्णावती इसलिए कहा गया है कि वहां ऊन और ऊनी कपड़े वहुतायत से मिलते थे[३]। गधार की भेंड़ें प्रसिद्ध थीं[४] और जिस प्रदेश से रावी (परुष्णी) वहती थी वहां का रंगीन अथवा धुला हुआ (सुन्ध्यव.) ऊनी कपड़ा प्रसिद्ध था[५]। पूषण द्वारा ऊनी कपड़े विनने का भी उल्लेख है[६]।

कंवल और शामुल्य

कंवल[७] और शामुल्य[८] स्त्रियों और पुरुषो के नित्य के पहिनने के वस्त्र थे। कंवल से शायद खुरदरे ऊनी कपड़े का तात्पर्य रहा हो। प्रो० प्रिजलुस्की के मतानुसार[९] कंवल मुंडा—ख्मेर भाषा का शब्द है और वैदिक संस्कृत ने इस शब्द को उस भाषा से उधार लिया है। अथर्ववेद में सवसे पहले यह शब्द आने से यह धारणा होती है कि इस शब्द को आर्यो ने आदिवासियों से अधिक घनिष्टता वढ़ने पर अपना लिया। शामुल्य समूर का वना कपड़ा होता था। पर

१—ऋ० वे०, ८।६७।३
२—वृहदारण्यक उ०, २।३।६
३—ऋ० वे०, १०।७५।८
४—ऋ० वे०, १।१२६।७
५—ऋ० वे०, ४।२२।२; ५।५२।६
६—ऋ० वे०, १०।२६।६
७—अथर्ववेद, १४।२।६६, ६७
८—ऋ० वे० १०।८५।२९; अ० वे० १४।१।२५
९—प्री आर्यन एण्ड प्री ड्रवीडियन, पृ० ६-८, श्री वागची द्वारा संपादित

शामुल्य के सबध में डा० सुविमलचद्र सरकार[१०] का और ही मत है। उनका विचार है कि शामुल्य रूई भरा कोई हल्का कपडा था। वे हमारा ध्यान इस ओर भी दिलाते हैं कि आधुनिक शमला जो एक सकरा शाल है, और जिसका व्यवहार पगडी पर के बद के लिए होता है और जिसकी व्युत्पत्ति अरबी शामिलात से जिसके अर्थ होते हैं जोडना, वास्तव में शामुल्य से निकला है। इस धारणा को सत्य मानने में कई कठिनाइया है। शामुल्य को रूई से भरा वस्त्र मानने में सदेह होता है क्योकि रूई का ज्ञान, जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, आर्यो को सूत्र काल में हुआ। शामुल्य तो समूर शब्द का प्राचीन रूप मात्र है जिसका अर्थ आज दिन भी रोएदार चमडा होता है। इसी अर्थ में इस शब्द का व्यवहार कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी हुआ है।

खालो के वस्त्र

जानवरो की खालो का भी वस्त्ररूप में व्यवहार होता था। देवता, मुनि, व्रात्य और देश के आदि निवासी खालो से बने कपडे पहनते थे। इस सबध में शतपथ ब्राह्मण[११] में एक कहानी दी हुई है जिससे पता चलता है कि वैदिक सभ्यता के आरभिक युग में आर्य गोचर्म पहना करते थे। कहानी यह है कि मनुष्य एक समय गोचर्म से आच्छादित होता था। गाय की उपादेयता का देवताओ को ज्ञान था और इसीलिए मनुष्य के शरीर से गोचर्म उन्होने खलिया कर पुन गायो को वापस कर दिया। खाल के बिना मनुष्य को बराबर चोटें लगा करती थी। इसलिए उनका खोया हुआ आवरण पुन वापस देने केलिए देवताओ ने वस्त्रो की सृष्टि की। इस कहानी से यह निष्कर्ष निकलता है कि सभ्यता के आरभिक युग में आर्य गोचम पहना करते थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नही है। जिस समय सभ्यता शिकारी अथवा पशुपालक अवस्था में थी उस समय मनुष्य पशुओ के चमडो से अपने बदन ढाका करते थे। प्राचीर सुमेर में भी लोग सारगान के काल तक बकरे की खाल की बनी तहमत पहना करते थे। ऐसा लगता है कि जब आर्यो की सभ्यता उन्नति के मार्ग पर आगे बढी तो उन्हें गाय की आर्थिक उपयोगिता का ज्ञान हुआ और चमडे के लिए व्यर्थ गो-हत्या का निषेध करके वे और तरह तरह के वस्त्र पहनने लगे।

कृष्णाजिन

शतपथ ब्राह्मण की[१२] एक दूसरी कहानी से पता लगता है कि कृष्णाजिन बहुत ही पवित्र माना जाता था। कहानी यह है कि यज्ञ की आहुति एक समय मृग का रूप धारण

१०—सरकार, सम आसपेक्टस ऑफ दी अन्शियस्ट सोशियल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ५६, पृ० नो० ६

११—शतपथ ब्रा०, ३।१।२३-२६

१२—शतपथ ब्रा०, १।१।४।१

कर के देवताओं से वचने के लिए भाग गयी। देवताओं को जव इसका पता लगा तो उन्होंने उसे पकड़ कर उसकी खाल उतार लिया। उसी दिन से कृष्णाजिन पर दीक्षा दी जाने लगी और यज्ञ की आहुति के लिए धान्य भी उस पर घोटा जाने लगा। यज्ञादिक कार्यो में मृगचर्म का व्यवहार विहित है। इसी वात को सावित करने के लिए ऊपर की कहानी गढ़ी गयी है। कहानी हमारी उस पूर्वकालीन संस्कृति की ओर भी इशारा करती है जव धार्मिक कार्यो में मृगचर्मो का प्रयोग वेधड़क होता था। आज दिन भी धार्मिक कार्यो में मृगचर्म पवित्र माना जाता है।

मरुत् हिरन की खालें पहनते थे[१३]। हिरन की खालें पहन कर और उन्हीं के चमड़े की वनी ढाले लेकर देवगण शत्रुओं मे भय उत्पन्न करते थे[१४]। मुनिगण भूरे और कमाए हुए चमड़े (पिशङ्गमला) पहनते थे[१५]। व्रात्यों के अधिनायक और उनके साथी दोहरे (द्विसंहितानि) चमड़े पहनते थे जिसमे एक काला (कृष्ण) और दूसरा सफेद (वलक्ष) होता था[१६]। जंगली जातियां नाच के समय कृत्ति और दूर्श पहनती थी[१७], और अजिन भी व्यवहार में लाती थी[१८]। यज्ञ के समय कृष्ण मृगचर्म पहना जाता था[१९]। वकरे की खाल (अजर्षभ्यस्य अजिन) पहनी जाती थी[२०]। समूर के व्यापार का भी उल्लेख है[२१]।

कुछ और तरह के भी कपड़े व्यवहार मे लाये जाते थे पर उनका कोई विवरण न प्राप्त होने से उनकी पहचान मे काफी कठिनाई पैदा होती है और न ठीक ठीक से यह कहा जा सकता है कि वे वनस्पतियों के किन किन रेशों से वनते थे।

वरासी

वरासी का उल्लेख सवसे पहले काठक संहिता[२२] में आया है। आश्वलायन श्रौत सूत्र[२३] और लाट्यायन श्रौत सूत्र[२४] के अनुसार वरासी वस्त्र सोमयाग मे भाग लेने वाले नेष्ट्रि को

१३—ऋ० वे०, १।१६६।१०
१४—अ० वे०, ५।२१।७
१५—अ० वे०, १०।१३६।२
१६—पञ्चविंश ब्रा०, १७।१-१५
१७—अ० वे०, ८।६।११
१८—अ० वे०, ४।७।६
१९—अ० वे०, ५।२१।७; ६।१।१८५
२०—शत० ब्रा०, ३।९।१।१२; ५।२।२।१२४
२१—वाजसनेयी सं०, ३०।१५; तैत्तिरीय ब्रा०, ३।२।१३।१
२२—काठक सं०, १५।४; पंचविंश ब्रा०, १८।९।६
२३—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७
२४—ला० श्रौ० सू०, ९।२।१५

दक्षिणा के रूप में दिया जाता था। लाट्यायन श्रौत सूत्र के टीकाकार को इस शब्द का ठीक ठीक अर्थ का पता नही था और इसीलिए उसने वरासी को क्षौम्य अर्थात् अतसी की छाल के रेशे का बना वस्त्र कहा है। आश्वलायन श्रौत सूत्र के टीकाकार ने वरासी का अर्थ मोटे सूत का कपडा किया है। डा० सरकार के मत से उत्तर पश्चिमी सीमा प्रात और हिमालय के वर्हिगिरि पर उगने वाले वरस (एक प्रकार के लाल फूल वाला रोडोडेंड्रन) नाम के वृक्ष की छाल के रेशे से शायद यह वस्त्र बुना जाता था[२५]।

दूर्श

इस कपडे का उल्लेख अथर्ववेद में आया है[२६]। पालि साहित्य में भी दुस्स नाम के कपडे का उल्लेख आया है। आज दिन धुस्सा जो दूर्श से निकला है एक तरह की खरदरी ऊनी चादर का नाम है जो पजाब और कश्मीर में बनती है, पर यह ठीक तौर से नही कहा जा सकता कि वैदिक युग में दूर्श का क्या रूप था।

क्षौम

क्षुमा अथवा अतसी की छाल के रेशे से बने हुए वस्त्र का सर्वप्रथम उल्लेख मैत्रायणी सहिता और तैत्तिरीय सहिता में आया है[२७]। कुसमी रग के क्षौम परिधान का उल्लेख शाङ्खायन आरण्यक[२८] में आया है। आश्वलायन श्रौत सूत्र[२९] के अनुसार क्षौम वस्त्र सोमयाग में नेष्ट्रि को दक्षिणा रूप में दिया जाता था।

पाड्व

शतपथ ब्राह्मण और मैत्रायणी[३०] सहिता के अनुमार पाड्व वस्त्र यज्ञ के समय राजाओं द्वारा पहना जाता था। बृहदारण्यक उपनिषद्[३१] में पाड्वाविक वस्त्र का उल्लेख है। यह भेड के ऊन का बना हुआ सफेद वस्त्र होता था। डा० सरकार का कहना है कि शायद पाड्व कोरा अथवा रगीन रेशमी अथवा सूती वस्त्र था[३२]। उनके ऐसा कहने का आधार क्या है यह नही कहा जा सकता।

२५—सरकार, वही, पृ० ६१, फु० नो० ३
२६—अ० वे०, ४।७।६, ८।६।११
२७—मै० स०, ३।६।७, तै० स०, ६।१।१।३
२८—शा० आ०, ११।४
२९—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७
३०—श० ब्रा०, ५।३।५।२१, मै० स०, ४।४।३
३१—बृ० उ०, २।३।६
३२—सरकार, वही, पृ० ५९

तार्प्य

तार्प्य का उल्लेख अथर्ववेद तथा और कई जगह आया है[३३]। कृष्ण यजुर्वेद[३४] के अनुसार यज्ञ के अवसर पर यजमान को स्वयं तार्प्य पहनना पड़ता था। राजसूय यज्ञ[३५] के अवसर पर राजा तार्प्य वस्त्र जिस पर यज्ञ के उपादानो के रूप कढ़े या टंके होते थे पहनता था। सायण और कात्यायन ने तार्प्य के वहुत से अर्थ दिये हैं। यथा क्षौम, घी में डूवा वस्त्र, तृप नाम की घास से वना हुआ, अथवा तीन वार घृत में डुवोया हुआ वस्त्र इत्यादि। तार्प्य की इन सव व्याख्याओं से यह पता चलता है कि टीकाकारों को इस शव्द के अर्थ के वारे मे दुविधा थी। कुछ ऐसा भी मालूम पड़ता है कि शतपथकार को भी इस शव्द के ठीक अर्थ के वारे में शक था। गोल्डस्टुकर के मत से सहमत होते हुए एगलिंग का कहना है कि तार्प्य किसी तरह का अधोवस्त्र था[३६]। डा० सरकार तार्प्य को विहार के टसर से, जो एक तरह का मोटा रेशमी कपड़ा होता है, तुलना करते हैं[३७]। डा० सरकार इस पहचान पर कैसे पहुंचे यह कहना कठिन है। सत्य तो यह है कि तार्प्य का ठीक ठीक अर्थ अभी हमें विदित नही है।

कार्पास

जैसा हम पहले अध्याय में कह आये है सिंधु सभ्यता के युग मे कपास से वने कपड़े पहने जाते थे। आश्चर्य की वात है कि वैदिक सहिताओं और व्राह्मणों में कार्पास का कही भी उल्लेख नही है। सव से पहले कपास का उल्लेख आश्वलायन और लाट्यायन श्रौत सूत्रो[३८] में आया है। इन उल्लेखों के अनुसार सोमयज्ञ के पोतृ को कपास का कपड़ा (कार्पास संवासः) दक्षिणा के रूप मे दिया जाता था। अव प्रश्न यह उठता है कि क्या कारण था कि वैदिक आर्य कपास से इतने काल तक अनभिज्ञ थे? उत्तर कई हो सकते हैं यथा (१) वैदिक आर्यो से और सिंधु सभ्यता से कोई सरोकार नही था और वे भारत में उस काल मे आये जव सिंधु सभ्यता पूर्णतः नष्ट हो गयी थी और इसलिए उस सभ्यता के एक प्रतीक कपास की कताई वुनाई का उन्हें ज्ञान नहीं हुआ। यह ज्ञान उन्हें तव हुआ जव वे पूर्व भारत में पहुंचे जहां कपास के व्यवहार से, जैसा हमें पालि साहित्य वतलाता है, लोग भली भांति परिचित थे। (२) यह भी संभव है कि आर्यो को कपास का ज्ञान रहा हो लेकिन एक अनार्य वस्तु होने से उसके व्यवहार से वे हिचकिचाते रहे हों, गोकि इसकी संभावना कम है।

३३—अ० वे०, १८।४।३१; तै० सं०, २।४।११।६; मै० सं०, ४।४।३

३४—तै० ब्रा०, १।३।७।१

३५—श० ब्रा०, ५।३।५।२०, सर्वाणि यज्ञरूपाणि निस्यूतानि।

३६—एगलिंग, शतपथ ब्रा०, भा० ३, पृ० ८८, फु० नो० १

३७—डा० सरकार, वही, पृ० ६, फु० नो० ५

३८—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७; ला० श्रौ० सू०, २।६।१; ६।२।१४

कताई बुनाई

कातने और बुनने का काम प्राय स्त्रियो के जिम्मे था[३९]।

अथर्ववेद[४०] के एक रूपक में रात्रि और दिवा को भगिनी मान कर उन्हें वर्परूपी कपडे को बुनते बतलाया है । इसमें रात को ताना और दिन को बाना माना है। कपडे बुनने वालियो के लिए वायित्[४१] और सिरी[४२] शब्दो का उपयोग हुआ है। डा० सरकार के अनुसार वैदिक सिरी तामिल सिलै से लिया गया है और पूर्वी जानपदी भाषाओ में अब भी इसका रूप सिरी, सिली, मिलाई होता है जिसका अर्थ बुना हुआ कपडा होता है ।

वैदिक साहित्य में बुनने की कारीगरी के बहुत से पारिभाषिक शब्द आये हैं। ओतु (बाना)[४३], ततु (सूत)[४४], तत्र (ताना)[४५], वेमन् (करघा)[४६], प्राचीनतान (आगे खिंचा हुआ ताना)[४७], वाय (बुनकर)[४८], मयूख (ढरकी या शीशे का वजन)[४९] बुनाई सबधी शब्द हैं।

पहनने के कपडे

ऋग्वेद[५०] और बाद के साहित्य में पहनने के कपडो के लिए साधारणत वासस् शब्द का व्यवहार हुआ है। वसन[५१] और वस्त्र[५२] के भी वही माने होते है। वैदिक आर्य अपने कपडे बडे शौक से पहनते थे। सुवसन[५३] का व्यवहार खूबसूरत कपडो तथा अच्छी तरह से पहने

३९—अ० वे०, १०।७।४२, १४।२।५१
४०—अ० वे०, १०।७।४२
४१—पञ्च० ब्रा०, १।८।६, श० ब्रा०, ३।१।२।१३ इत्यादि
४२—अ० वे०, १४।२।५१
४३—ऋ० वे०, ६।६।२-३, तै० स०, ६।१।१४
४४—अ० वे०, १४।२।५१, श० ब्रा०, ३।१।२।१८
४५—ऋ० वे०, १०।७१।६
४६—वाजसनेयी स०, १६।८३
४७—त० स०, ६।१।१।४
४८—ऋ० वे०, १०।२६।६
४९—या० स०, १६।८०–८३
५०—ऋ० वे०, १।३४।१, १।११५।४, ८।३।२४
५१—ऋ० वे०, १।६५।७
५२—ऋ० वे०, १।२६।१
५३—ऋ० वे०, ६।५१।४

गये वस्त्र दोनों ही के लिए हुआ है[५४]। सुवासस्[५५] विशेषण का प्रयोग अच्छे कपड़े पहनने वालों के लिए हुआ है। सुरभि[५६] शब्द से पता चलता है कि पहनने के कपड़े बदन पर ठीक बैठते थे। समाज में बढ़िया कपड़े पहनने वालों के मान होने का उल्लेख शतपथ[५७] में आया है। इस उल्लेख के अनुसार मनुष्य कपड़ा इसलिए पहनता है कि वह उसके बदन पर चमड़े की तरह शरीर की रक्षा का काम देता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि मन से मनुष्य अच्छे कपड़े पहने (सुवासा एव बुभूषेत्)। अनेक रंग विरंगे कपड़े पहनने की भी प्रथा थी। शतपथ मे अग्नि का एक पर्याय विभावसु[५८] भी है जिसका अर्थ है रंग विरंगे कपड़े पहनने वाला। कौषीतकी ब्राह्मण[५९] मे अच्छे कपड़े पहनने वाले युवकों का उल्लेख है।

वैदिक वस्त्रों पर अलंकार

वैदिक युग में कपड़ों पर बहुधा कसीदे का काम बना होता था। मरुत् कारचोबी के काम वाले कपड़े पहनते थे[६०] (हिरण्यान् प्रति अत्कान्)। कपडों मे किनारे और झालरें भी होती थी। सिच्[६१] शब्द से कसीदा किये हुए किनारे या झालर का बोध होता है। दो ऊपर नीचे के और दो बगल के किनारों का उल्लेख आया है[६२]। वैदिक आरोका:[६३] से शायद कपड़े पर बने अलंकारो से मतलब है। डा० सरकार का विचार है[६४] कि आरोका. की व्युत्पत्ति तामिल अरुकणि से है जिसके अर्थ होते है कपड़ों के अलंकृत किनारे। यज्ञ के अवसर पर कोरे कपड़े[६५] पहने जाते थे पर अन्य अवसरों पर धुले कपड़े (स्वित्यञ्च:)[६६]। सुनहले काम वाले रंगीन कपड़े ऊषा की श्रेणी वाली रंगीली स्त्रियां पहनती थी[६७]। व्रात्य गृहस्थ किनारेदार नीले कपड़े पहनने के शौकीन थे[६८]।

५४—ऋ० वे०, ६।६७।५०
५५—ऋ० वे०, १।१२४।७, ३।८।४
५६—ऋ० वे०, ६।२६।३
५७—श० ब्रा०, ३।१।२।१६
५८—श० ब्रा०, ६।४।३।८
५९—कौ० ब्रा०, १०।२
६०—ऋ० वे०, ५।५५।६
६१—ऐत० ब्रा०, ७।३२; श० ब्रा०, ४।२।२।११
६२—सरकार, वही, पृ० ६३
६३—श० ब्रा०, ३।१।२।१३
६४—सरकार, वही, पृ० ६३, फु० नो० १२
६५—श० ब्रा०, ३।१।२।१३
६६—ऋ० वे०, ७।३३।१
६७—ऋ० वे०, १।६२।४, अधिपेशांसि वपते नृतूः ऽइव ; १०।१।६
६८—पञ्चविंश ब्रा०, १७।१।१६

कसीदे का काम

पेशस्[६९] शब्द का व्यवहार कारचोवी के काम वाले वस्त्रो के लिए हुआ है। इसमें कढे हुए अलकार काफी फेरदार और कलात्मक होते थे[७०]। नृतु को पेशासि पहने वतलाने से[७१] शायद कारचोवी पेशवाज से तात्पर्य हो। कसीदा काढना या उससे पेशासि अथवा पेशवाज वनाना स्त्रियो का काम था। यजुर्वेद मे पुरुषमेध में वलि देने जाने वालो में पेशकारी का नाम आया है[७२]। ऐतरेय ब्राह्मण[७३] में निविदो को ऋचाओ का कसीदा अथवा पेशस् कहा गया है। यहाँ जो उपमा दी गई है उससे कसीदे के वारे में कुछ प्रकाश पडता है। इस तरह का काम (पेशस्) ताने के ऊपरी भाग (प्रवयण) तथा मध्य और निचले भागो (अवप्रज्जन) में किया जाता था। पेशस् के इस विवरण से पता चलता है कि अलकार कुछ वुने भी जाते थे और कुछ काढे भी। अगर हमारा यह अनुमान ठीक है तो कौटिल्य मे वर्णित खचित नामक दुशाले जो सूचीवान कर्म से वनाये जाते थे और जिन्हे कश्मीर वाले अव भी तीलीकार और अम्लीकार का सयोग वताते हैं, और पेशस् एक थे। वृहदारण्यक उपनिषद्[७४] के एक उल्लेख से पता चलता है कि पेशकारी एक अलकार को काढ कर जव दूसरा काढती थी तो वह पहले अलकार से भी अधिक सुन्दर उतरता था।

वैदिक आर्यों का पहरावा

ऐसा मालूम पडता है कि वैदिक आर्य तीन कपडे पहिनते थे यथा नीवि[७५] (लगोटी), वासस् और अधिवास[७६] जो शायद आधुनिक दुपट्टे या चादर का प्रारभिक रूप रहा हो। शतपथ[७७] में दिये हुए यज्ञ काल के पहरावे से उपरोक्त पहरावो का मेल खाता है।

नीवि

नीवि या परिधान[७८] शायद तहमत या लुगी के ऐसा कोई वस्त्र था जिसे स्त्री और पुरुष दोनो समान रूप से व्यवहार में लाते थे। नीवि की व्युत्पत्ति नि अर्थात् नीचे और व्ये

६९—ऋ० वे०, ४।३६।७
७०—ऋ० वे०, २।३।६
७१—ऋ० वे०, १।६२।४-५
७२—वाजसनेयी स०, ३०।६
७३—ऐतरेय ब्रा०, ३।१०
७४—वृ० उ० ८।४।४ तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादायान्यन्नवतर कल्याणतर रूप तनुत।
७५—अ० वे०, ८।२।१६, १२।२।५०
७६—ऋ० वे०, १।१४०।६, १०।५।४
७७—शतपथ ब्रा०, ५।३।५।२०
७८—वृहदारण्यक उप०, ६।१।१०

ढकना या आच्छादित करना से की गयी है। लेकिन डा० सरकार इसे चौड़ा बुना हुआ किनारा मानते हैं और इस शब्द की व्युत्पत्ति तामिल नइ से जिसके अर्थ बुनने के होते हैं करते हैं[७९]। जब तक वैदिक काल की कोई मूर्ति हमे नही मिलती तब तक हम यह ठीक तौर से नही कह सकते कि वैदिक नीवि का क्या रूप था। लेकिन सिंधु सभ्यता की मुद्राओं और मृण्मूर्तियों में जो पोशाक दिखलायी गयी है वह तो केवल एक कपड़े का सकरा सा टुकड़ा है जिसे स्त्री और पुरुष दोनों लपेट लिया करते थे। इस तरह के वस्त्र पहनने का रिवाज सिंधु सभ्यता की समकालीन सभ्यताओं में भी था। हो सकता है कि वैदिक युग मे देश का यह पुराना पहरावा बच गया हो और कालांतर मे आर्यो द्वारा अपना लिया गया हो।

प्रघात और वातपान

नीवि से प्रघात लटका करता था। इसका एक बेबुना छोर फूंदनों से सजा होता था और दूसरा सादा छोर एक छोटी झालर से जिसे तूप कहते थे[८०]। नीवि मे वातपान[८१] भी होता था। यह शायद कपड़े में लंबाई वाला किनारा था जो हवा के झटके से सूत को बाहर निकलने से रोकता था[८२]।

कपड़े पहनने के ढंग

वेदों से जो कुछ भी हमें वस्त्रों के उल्लेख मिलते है उनसे यह ठीक ठीक पता नहीं चलता कि वैदिक युग मे कपड़े किस ढंग से पहने जाते थे। इस बात का उल्लेख है कि वासस्[८३] बांधा जाता था। नीविंक्र[८४] से पता चलता है कि शायद लोग नीवि इस ढंग से बांधते थे जिससे उसमें गांठे और सिलवटें पड़े जो देखने में सुन्दर मालूम पड़ती है।

शरीर के ऊपर पहनने के वस्त्र

पुरुष और स्त्रियां अपने शरीर के ऊपरी हिस्से को ढांकने के लिए उपवसन पर्याणहन, प्रतिधि, द्रापि और अत्क पहनती थीं। उपवसन[८५] जैसा कि वधू के वस्त्रों के सम्बन्ध में इसके उल्लेख से पता लगता है, दुपट्टे की तरह कोई वस्त्र था। मुद्गलानी के उपवसन[८६] के हवा

७९—सरकार वही, पृ० ६३, फु० नो० ६
८०—तै० सं०, १।८।१।१
८१—तै० सं०, ६।१।१
८२—सरकार, वही, पृ० ६३
८३—अ० वे०, १४।२।७०
८४—अ० वे०, ८।२।१६
८५—अ० वे०, १४।२।४९
८६—ऋ० वे०, १०।१०२।२

मे फडकने के उल्लेख से यह बोध होता है कि यह उत्तरीय जैसा कोई वस्त्र था। डा० सरकार का अनुमान है पर्याणहन शायद लवी-चौडी हल्की चादर की तरह कोई वस्त्र था[८७]। अधिवास राजाओ का ऊपरी वस्त्र था[८८]। प्रतिधि[८९] एक या दो कपडे की छीरो से बना स्तनपट्ट था जिसे विवाह के समय कन्या पहनती थी। शायद यह सीधे अथवा तिरछे ढग से स्तनो को ढाकने के लिए पहना जाता था।

वैदिक साहित्य मे सिले कपडे

इन वेसिले कपडो के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में सिले कपडो के भी उल्लेख है। अत्क[९०] शब्द का व्यवहार पहनने के कपडे के अर्थ मे ऋग्वेद मे आया है, और इसका यही अर्थ रोथ, लुडविग्, ग्रासमान और त्सिमर ने ग्रहण किया है। अत्क केवल पुरुष पहनते थे और यह लवा[९१], पूरा शरीर ढकने वाला[९२], चपक कर बैठने वाला[९३], चमकीला[९४], सुन्दर[९५] कारचोबी किया हुआ अथवा सोने के तार से बुना हुआ[९६] एक वस्त्र था। उपरोक्त विवरण से अनुमान किया जा सकता है कि अचकन या कुरते के आकार का यह कोई वस्त्र था। वैदिक युग के बाद साहित्य में फिर इसका उल्लेख नही आता। द्रापि चपक कर बैठने वाला[९७], कारचोबी किया हुआ[९८] कोटनुमा[९९] कपडा था, जिसे पुरुष[१००] और स्त्री[१०१] दोनो पहनते थे।

उष्णीष या पगडी

उष्णीष शब्द का पगडी के अर्थ में प्रयोग सब से पहले अथर्ववेद[१०२] और पञ्चविंश

८७—सरकार, वही, पृ० ६६
८८—शतपथ ब्रा०, ५।४।४।३
८९—अ० वे०, १४।१।७
९०—ऋ० वे०, १।९५।७, ४।१८।५
९१—ऋ० वे०, २।३५।१४
९२—ऋ० वे०, ५।७४।५
९३—ऋ० वे०, ६।२९।३
९४—ऋ० वे०, ६।२९।३
९५—ऋ० वे०, ८।१०७।१३
९६—ऋ० वे०, १।१२२।२, ५।५५।६
९७—ऋ० वे०, १।११६।१०
९८—ऋ० वे०, १।२५।१३
९९—अ० वे०, १३।३।१
१००—ऋ० वे०, ८।१००।९
१०१—अ० वे०, ५।७।१०
१०२—अ० वे०, १५।२।१

ब्राह्मण के[१०३] व्रात्य प्रकरण मे आया है। ऐतरेय[१०४] और शतपथ मे[१०५] इस शब्द का प्रयोग राजाओं और व्रात्यों के पहरावो के संबंध मे आया है। राजे वाजपेय[१०६] और राजसूय[१०७] के अवसरों पर उष्णीष धारण करते थे। इन्द्राणी सम्राज्ञी की हैसियत से उष्णीष पहनती थी[१०८]। व्रात्यों का उष्णीष सफेद होता था। सूत्रों के अनुसार उष्णीष मे कई फेटे होते थे, और वह जरा एक तरफ झुका कर बाधा जाता था[१०९]। यज्ञ के अवसर पर उष्णीष के दोनों छोर आगे लाकर उसकी तहों मे खोंस दिये जाते थे[११०]। लगता है राजाओ के उष्णीष के छोर बाहर लटके रहते थे।

जूते

प्राचीन सहिताओं में जूतो का कही उल्लेख नही आता। ऋग्वेद मे आये वट्रिणापाद[१११] से शायद लड़ाई मे पैरों की रक्षा के लिए किसी आवरण से मतलब हो। पत्-सगिनी[११२] का मतलब डा० सरकार के अनुसार[११३] पैर मे वांधी जाने वाली चट्टी से है जिसका व्यवहार पैदल सिपाही करते थे। उपानह का सर्वप्रथम उल्लेख यजुर्वेद[११४] अथर्ववेद[११५] और ब्राह्मणों मे[११६] आया है। व्रात्य इसका व्यवहार करते थे[११७]। यज्ञ के अवसर पर पहनने के जूते सूअर के चमड़े से वनते थे[११८]।

यज्ञ के अवसर पर नये कपड़े पहनने की प्रथा

यज्ञ के अवसर पर नये वस्त्र धारण करने की प्रथा थी। शतपथ के अनुसार[११९] यह

१०३—पं० ब्रा०, १७।१।१४
१०४—ऐतरेय ब्रा०, ६।१
१०५—श० ब्रा०, ३।३।२।३
१०६—श० ब्रा०, ५।३।५।२३
१०७—मैत्रायणी स०, ४।४।३
१०८—श० ब्रा०, ५।३।५।२३
१०९—कात्यायन श्रौ० सू०, २२।४
११०—श० ब्रा०, ३।५।२० इत्यादि
१११—ऋ० वे०, १।१३३।२
११२—अ० वे०, ५।२१।१०
११३—सरकार, वही, पृ० ६९
११४—तै० सं०, ५।८।४।४
११५—अ० वे०, २०।१३३।४
११६—श० ब्रा०, ५।४।३।१९
११७—पञ्च० ब्रा०, १७।१४-१६
११८—श० ब्रा०, ५।४।३।१९
११९—श० ब्रा०, ३।१।२।१९

वस्त्र शुद्ध गिना जाता था । यज्ञ का वस्त्र विना कुदी किया हुआ (आहत) होता था । प्रति प्रस्थातृ इसलिए इसे अच्छी तरह पीटता था कि स्त्रियो द्वारा कातने (आकृणति) और बुनने (वयति) मे जो दोष वस्त्र में आ गये हो वे इस क्रिया से निकल जाय और वस्त्र यज्ञ के लिए शुद्ध हो जाय ।

यज्ञवस्त्रो में देवताओ का निवास

शतपथ के एक मत्र से पता चलता है[१२०] कि यज्ञ के कपडो के भिन्न भिन्न भागो पर अलग अलग देवताओ के अधिकार होने का लोगो को विश्वास था । इस उल्लेख में कपडे की बुनाई के बहुत से शब्द प्रसगवश आ गये हैं । मत्र के अनुसार वाने के देवता अग्नि हैं (अग्ने पर्यासो), ताने का वायु (वायो अनुछादो) । नीवि के पितृ, प्रघात के नाग, सत (तन्तव) के विश्वेदेवा, तथा आरोक (अलकार) के अधिकारी नक्षत्र हैं । सब देवताओ के अधिकार होने से ही वस्त्र यजमान के योग्य होता है । तैत्तिरीय सहिता[१२१] के एक मत्र के अनुसार कपडे के झालरदार किनारे (तूपाधान) पर अग्नि का अधिकार होता था, वायु का वातपान पर तथा ताने (प्राचीनतान) और वाने (ओतु) पर क्रमश आदित्यो और विश्वेदेवा के अधिकार होते थे । ऊपर के उद्धरणो से पता चलता है कि यज्ञ कार्य में आये हुए वस्त्रो की पवित्रता का विशेष ध्यान रखना पडता था । वस्त्र के भिन्न भिन्न भागो में देवताओ के वास से शायद यह तात्पर्य हो कि इनसे पूत होने पर वस्त्रो पर न तो जादू होने चल सकते थे और न उनमें भूतप्रेतो का ही प्रवेश हो सकता था ।

भारतीय राजाओ की वेश-भूषा

यज्ञ विधि मे जो सोम के कपडो का वर्णन शतपथ[१२२] में आया है । वही पहरावा तत्कालीन भारतीय राजाओ का था । पूरी पोशाक में उपनहन (शायद धोती की तरह कोई कपडा अथवा जूता), पर्याणहन (चादर) और पगडी (उष्णीष) होते थे । पगडी न होने पर दो तीन अगुल चौडी पट्टी से भी काम चल जा सकता था । राजसूय यज्ञ के समय तार्प्य पहनने के बाद राजा एक सफेद ऊनी कपडा (पाण्ड्व) पहनता था । इसके बाद वह एक चादर (अधिवास) से अपने को ढकता था और इसके बाद उष्णीष के छोर सामने की तह में खोंस लेता था[१२३] । उष्णीष ठीक ठीक कैसे बाधा जाता था इसके सबध में टीकाकारो का एक मत नही है । एगलिंग[१२४] का अनुमान है कि सिर पर पगडी की एक लपेट बाधी जाती थी और उसके दोनो

१२०—श० ब्रा०, ३।१।२।१८
१२१—त० स०, ४।१।१
१२२—शतपथ ब्रा०, ३।३।२।३
१२३—शतपथ ब्रा०, ३।५।२०-२८
१२४—शतपथ ब्रा०, ३ भा०, पृ० ८६, फु० नो० २

छोर कंधों पर यज्ञोपवीत की तरह लटकते रहते थे और बाद में वे नाभि के पास शायद धोती मे खोंस लिये जाते थे । इस यज्ञ में वस्त्र पहिनने की क्रिया लाक्षणिक रीति से गर्भ के आवरणों और प्रजनन की क्रियाओं के अभिव्यंजना के रूप में थी [१२५]। कुछ यज्ञों मे नीवि की चुन्नट खोल दी जाती थी[१२६] (नीविमुद्वृध्य)। ऐसा क्यों किया जाता था यह तो ठीक ठीक नही कहा जा सकता पर इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नीवि में चूनन डालने की प्रथा थी।

राजवस्त्रों के उपरोक्त वर्णन से यह पता चलता है कि शतपथ के युग में राजे धोती, चादर और उष्णीप पहनते थे लेकिन इन वस्त्रों के पहनने का क्या ढंग था यह कहना सरल नही है ।

यज्ञ के अवसर पर स्त्रियों की वेश-भूषा

यज्ञ के समय स्त्रियों की वेश-भूषा का तो पूरा वर्णन नही मिला पर उनकी पोशाक में रसना का एक विशेप महत्व होता था । यज्ञ के अवसर पर अध्वर्यु यजमान की पत्नी की कमर में एक रस्सी बांधता था (योक्त्रेण सन्नह्यति) [१२७]। शतपथ के अनुसार इस क्रिया का लाक्षणिक अर्थ यह था कि स्त्री के नाभि से नीचे शरीर का भाग अपवित्र माना जाता था। यह रसना अधिवास के ऊपर बांधी जाती थी । ऐसा करने से स्त्री में पवित्रता कैसे आ जाती थी इसे शतपथ[१२८] में बहुत घुमा फिरा कर समझाया गया है। शतपथ के अनुसार वस्त्र वनस्पति के प्रतीक हैं और रस्सी वरुणपाश की प्रतीक है और इसीलिए स्त्री की रक्षा के लिए उसके शरीर और वरुणपाश के बीच में औषधि यानी वस्त्र रक्खे गये है। सम्भवतः इस मत्र मे रसना के जादू भरे गुण और वस्त्रों के रक्षक शक्ति की ओर इशारा किया गया है ।

करधनी

करधनी को रसना कहा गया है [१२९]। यज्ञ के समय वरुण के अस्त्र होने की वजह से इसमे गांठ नही लगायी जाती थी । इसका कारण वरुण के अस्त्र के साथ छेडखानी करने के नतीजे का डर हो सकता है । इससे यह भी पता चलता है कि साधारणतः रसना मे गांठें लगती थी।

१२५—शत० ब्रा०, ३ भा० , पृ० ८३, फु० नो० ३
१२६—शत० ब्रा०, २।४।२।२४
१२७—शत० ब्रा०, १।३।१।१३
१२८—शत० ब्रा०, १।३।१।१३-१४
१२९—श० ब्रा०, १।३।१।१५

रेशमी चडातक

वाजपेय यज्ञ के अवसर पर[130] यजमान की पत्नी को कमर में लपेटे हुए दीक्षित वस्त्र के ऊपर कुश का बना हुआ चडातक पहनना लाजमी था। यहा चडातक और कुश के अर्थ जानने जरूरी है। सायण के अनुसार कुश शब्द कुश अथवा रेशम का द्योतक है और चडातक रेशमी होता था (क्रिमिकोशविकारभूतवास)। अगर कुश का अर्थ रेशमी वस्त्र ठीक है तो ई० पू० ७ वीं या ८ वी शताब्दी में भी इस देश में रेशम का व्यवहार प्रचलित हो चुका था। ऐसा होना कुछ असभव भी नही है क्योंकि पाणिनि के समय (ई० पू० ५ वी शताब्दी) में तो रेशम चल चुका था। चडातक और चलन एक ही होते थे। चडातक को अर्धोरुक भी कहा गया है जो आधी जाघो तक आने वाला घाघरा जैसा कोई वस्त्र था और जिसे नर्तकिया पहना करती थी। लगता है कि अर्धोरुक आधिया या घघरी की तरह कोई वस्त्र था। इसका उल्लेख भी इस बात का प्रमाण है कि वैदिक युग में सिले हुए वस्त्रो का व्यवहार होता था।

व्रात्यो की वेश-भूषा

अभी यह तो ठीक ठीक से कहा नही जा सकता कि व्रात्य आर्यो के समाज से बहिष्कृत जन थे या इस देश के आदिवासी जिनके धार्मिक और सामाजिक विचार आर्यों से भिन्न थे। पचविंश ब्राह्मण में प्रायश्चित के बाद इनके पुन आर्य सस्कृति में लाये जाने का उल्लेख है। इसी प्रकरण में व्रात्यो के वस्त्रो पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। व्रात्यो के गृहपति उष्णीष, काली गोट वाला कपडा (कृष्णसवास) बकरे की एक सफेद और दूसरी काली खाल (कृष्णावलक्षे अजिने) पहनते थे। इनके पास चाबुक (प्रतोद) बिना बाण वाले धनुष (शायद गावक के तीर या ढेलो पाड्प से मतलब हो) और तख्तो के बने रथ (विपथश्च फलकास्तीर्ण) होते थे। इनके गले में निष्क नाम की मालाए होती थी[131]। इन गृहपतियों के अनुयायी व्रात्यो के वस्त्रो के किनारे (वल्कानि) लाल होते थे और उनके निकली छोरें कटी हुई होती थी (दामतूषाणि)। वे जूते पहनते थे और बकरे की दो जुटी हुई खालें ओढते थे[132]। लाट्यायन श्रौत सूत्र[133] में व्रात्यो को लाल उष्णीष, लाल वस्त्र (लोहित वाससो) और कुरते (उष्पीन) पहने बतलाया गया है। व्रात्य अपनी पगडी टेढी बाधते थे (तिर्यक्‌नद्ध)[134]

१३०—श० ब्रा०, ५।२।१।८
१३१—पचविंश ब्रा०, १७।१।१४
१३२—वही, १७।१।१५
१३३—ला० श्रौ० सू०, ८।६।८
१३४—वही ८।६।७

सूत्रों के समय व्रात्यों के वस्त्रों के संबंध मे सब आचार्य एक राय नहीं थे। शांडिल्य के[१३५] अनुसार उनके वस्त्र काले न होकर चितकबरे होते थे। गौतम[१३६] के अनुसार उनके वस्त्र सफेद (शुक्ल) होते थे और उनके किनारे काले (कृष्णदशं) होते थे।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि व्रात्य शायद धोती पगड़ी और दो बकरे की खाले वस्त्र रूप मे व्यवहार करते थे। साधारण श्रेणी का व्रात्य शायद लाल किनारे की धोती जिसमे बटी छोरे होती थी, पगड़ी, दो बकरे की खाले और जूते पहनता था।

१३५—वही, ८।६।१२
१३६—वही, ८।६।१३

तीसरा अध्याय

महाजानपद और शैशुनाग युगो की वेश-भूषा

६४२ ई० पू० में ३२० ई० पू० तक का भारतीय इतिहास षोडश जनपदो शैशुनागो (६४२-४१३ ई० पू०) और नदो (४१३-३२२ ई० पू०) का इतिहास है । शैशुनाग वश मे नवीन राजगृह की नीव डालने वाले बिंबिसार, श्रेणिक और कुणिक अजातशत्रु बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। इस युग के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास की प्रचुर सामग्री हमे बौद्ध और जैन साहित्यो तथा धर्मसूत्रो, गृह्यसूत्रो और अष्टाध्यायी से प्राप्त है। इन सब ग्रथो के कालनिर्णय में भी हमे उसी कठिनाई का सामना करना पडता है जिसे हमे वैदिक ग्रथो के कालनिर्णय में । फिर भी उनके अध्ययन से हमें पता चलता है कि उनमें वर्णित राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाए मौर्य युग से पूर्व की है । इस युग के ब्राह्मण, जैन, बौद्ध और व्याकरण शास्त्रो में उल्लिखित भारतीय सस्कृति का रूप करीब करीब एक सा है । इसलिए अगर हम इस युग की सस्कृति को षोडश महाजनपद युग की सस्कृति कहें तो इसमें कोई हरज नही है। श्रुत होने से इस युग के ग्रथ बाद में इकट्ठे करके लिखे गये और सभव है कि बहुत सी बाद की बातो का भी उनमें समावेश हो गया हो, पर आधुनिक ग्रथानुशीलन की परिपाटी को ध्यान में रखकर अगर हम इन ग्रथो का अध्ययन करें तो पुराने को नये से अलग करने में हम समर्थ हो सकते है। इस बात को ध्यान में रख कर हमने बौद्ध और जैन ग्रथो के उन्ही अशो को लिया है जो आलोचना की कसौटी पर खरे और प्राचीन उतरते है ।

महाजानपद युग में सभ्यता का विकास

इस युग की सभ्यता का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि इस युग में वैदिक युग से भारतीय सभ्यता आगे बढ चुकी थी। ग्राम्य सभ्यता से निकलकर भारतीय सभ्यता अब नगरो में केंद्रित होने लगी थी और इसके फलस्वरूप राजगृह, साकेत, वाराणसी, वैशाली और पुष्कलावती ऐसे बडे बडे नगर सभ्यता के केन्द्र बन गये थे । परिखा और प्राकारो से परिवेष्टित नगर शत्रुओ के लिए दुर्गम थे। उनकी करीनेदार सडकें, सजी दुकानें तथा कला कौशल के कारखानें भारतीय सभ्यता के प्रतीक थे। विचार स्वतत्रता इस युग की खास देन थी जिसके फलस्वरूप प्राचीन वैदिक धर्म की नीव हिल गयी। इस युग में बहुत सी धातुए जैसे रागा, सीसा, चादी, लोहे और ताबे का खूब व्यवहार होने लगा था । राज प्रासाद और रईसो के एक या कई मजिलो वाले प्रशस्त गृह ईंट और लकडी के बनने लगे

प्रा० ४

थे। कपास, क्षौम, रेशम, और ऊनी कपड़ों का खूब चलन था। कपड़ों पर कसीदे का काम भी होता था। तरह तरह के बरतन और सज्जा के सामान जैसे कुरसियां, सिंहासन, सेज, शीशे इत्यादि लोग व्यवहार मे लाते थे। लोग सोने चांदी के गहने पहनते थे और बहुत से रत्नों का उन्हें पता था।

बौद्ध और जैन साहित्यों में कारीगरों का सामाजिक स्थान

जातक कथाओं के अनुसार कारीगर अट्ठारह श्रेणियों में विभक्त थे जिनमे बढ़इयों, लुहारों और चितेरों की श्रेणियां भी सम्मिलित थी। कसीदा काढ़ने वालों (पेसकारसिप्प) और बेंत बीनने वालों (नलकार)[१] को शायद इसलिये नीच काम करने वाला कहा गया है कि ये व्यवसाय देश के आदिम निवासियो के हाथों मे थे जिन्हें आर्य हेय दृष्टि से देखते थे। भीमसेन जातक[२] में एक धनुर्धारी ब्राह्मण बुनकर (तंतुवाय) के व्यवसाय को नीच काम कहता है। सुत्तविभंग[३] मे भी नलकारशिल्प, कुंभकारशिल्प, पेशकार शिल्प और स्नापित शिल्प को नीच काम कहा गया है। ऊपर के उल्लेखों से यह न समझ लेना चाहिए कि यह विचार बौद्धों के है क्योंकि बुद्ध ने तो जात पांत तोड़ने की पूरी व्यवस्था दी है। ये भाव तो केवल तत्कालीन ब्राह्मण आर्य सभ्यता के प्रतीक मात्र हैं जो कहानियों के प्रसंग मे बौद्ध साहित्य में भी आ गये हैं। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति[४] मे जो जैनग्रंथ है दरजियो (तुण्णाग), बुनकरों (ततुवाय) और रेशमी कपड़े बिनने वालों (पट्टगार) को शिल्पार्यो के श्रेणी मे रक्खा गया है जिसका मतलब यह है कि अपने शिल्प बल से ये कारीगर आर्यत्व को प्राप्त थे। इसी तरह दौष्यिक, सौत्रिक और कार्पासिक भी कर्म आर्य[५] माने गये हैं।

इस युग में निम्नलिखित तरह के कपड़ों का व्यवहार होता था :—

कपास—हम दूसरे अध्याय में दिखला चुके हैं कि वैदिक साहित्य में कपास का सर्वप्रथम उल्लेख आश्वलायन गृह्य सूत्र मे आया है। पाणिनि के सूत्रों मे कर्पास का उल्लेख नहीं है लेकिन पाणिनि तूल से, जैसा कि ईषीका तूल[६] से मालूम पड़ता है परिचित थे। तूल का अर्थ बाद मे तो कपास होता है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि पाणिनि के युग में भी इस शब्द के यही अर्थ होते थे। आचारांग सूत्र[७] में भी तूल (तूलकड) का उल्लेख है लेकिन

१—जातक, भा० ४, पृ० २५१
२—जा०, भा० १, पृ० ३५६
३—पाचित्तिय, २।२।१
४—जं० प्र०, सूत्र ७०
५—वही, सूत्र ६९
६—अष्टाध्यायी, ६।३।६५; डा० वासुदेव शरण, यू० पी० हि० सो० ज०, जुलाई १९४०, पृ० १०६
७—आचारांग सूत्र, २।५।१।१

टीकाकार ने इसका अर्थ कपास का बना कपड़ा न करके सेमल की रुई (अर्कतूल) किया है। यह अर्थ संदेहात्मक है क्योंकि सेमल की रुई का सूत इतना कोमल होता है कि उसका बना कपड़ा एक धोब के बाद फट जाता है। लगता है यहा तूल से कपास का ही मतलब है। जातक कथाओ[८] मे तो कपास का बहुत उल्लेख हुआ है। तुंडिल जातक[९] मे बनारस के आसपास कपास के खेतो का वर्णन है। स्त्रिया कपास के खेतो की रखवारी करती थी। महाजनक जातक[१०] मे इन्हे कप्पासरक्खिका नाम से सबोधन किया गया है। कताई और बुनाई सबधी उपकरणो के भी कभी कभी उल्लेख आते है। रुई धुनने की धनुही (कप्पास-पोथन-धनुक) का उल्लेख आता है[११]। स्त्रियो द्वारा महीन सूत कात कर (सुखुम सुत्तानि कन्तित्वा) गडी (गुल)[१२] बनाने का भी उल्लेख है।

कौशेय

हम दूसरे अध्याय में कह चुके है शायद कौशेय का उल्लेख सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण मे आता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में[१३] तो कौशेय के लिए एक अलग सूत्र ही है। रामायण[१४] में सीता को पीला रेशमी वस्त्र पहिने बतलाया गया है (पीले कौशेय वाससी) बौद्ध साहित्य[१५] मे कौशेय का उल्लेख है और रेशमी चादर (कौशेय प्रावार) पहनने की अनुमति बुद्ध ने भिक्षुओ को दी है[१६]। प्राचीन जैन ग्रथ आचाराग सूत्र में कौशेय का उल्लेख नही है पर पट्ट[१७] शब्द से शायद रेशम का बोध होता हो। इसी सूत्र के वस्त्रो की तालिका मे चीनासुय या चीन के बने रेशमी वस्त्र का भी उल्लेख है। चीन शब्द के आने से इस तालिका की प्राचीनता पर संदेह किया जा सकता है पर अभी तक यह प्रश्न विवादास्पद है कि चीन शब्द भारतीय साहित्य मे कब से आया। जैसा हम चौथे अध्याय मे देखेंगे चीन के बने रेशमी वस्त्रो का उल्लेख कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी आया है, और महाभारत के सभापर्व में बाह्लीक और चीन के बने कीटज और पट्टज[१८] वस्त्रो का उल्लेख है। बाह्लीक और

८—जातक, भाग ६, पृ० ४७
९—जातक, भाग ३, पृ० २८६
१०—जातक, भाग ६, पृ० ३३६
११—जातक, भाग ६, पृ० ४१
१२—जातक, भाग ६, पृ० ३३६
१३—अष्टाध्यायी, ४।३।४२
१४—रामायण, २।४०।६
१५—जातक, भा० ६, पृ० ४७
१६—महावग्ग, ८।१।३६
१७—आ० सू०, २।५।१।४
१८—महाभारत, २।४७।२२

चीन के उल्लेख से शायद मध्य एशिया के उस वड़े रास्ते की ओर इशारा है जिससे होकर चीन से रेशम भारत और रोम आता था।

क्षौम

दूसरे अध्याय मे हम देख चुके है कि पिछले वैदिक काल मे अतसी की छाल के रेशे से वने हुये कपड़े का व्यवहार होता था । पाणिनि ने रेशेदार पौदो मे उमा[१९] यानी अतसी के पौदे का भी वर्णन किया है । उमा धान्य विशेप है या नही इस प्रश्न को लेकर वार्तिककार कात्यायन और महाभाष्यकार पतञ्जलि के मतों में भेद है। कात्यायन उमा और भंगा को धान्य नही मानते और पतञ्जलि उन्हें धान्य मानते है। वौद्ध और जैन ग्रंथों के आधार पर तो कात्यायन की राय ठीक मालूम पड़ती है क्योंकि इनमें भंगा और उमा का व्यवहार अन्न विशेप के लिए नही वरन् रेशो के लिये किया गया है जिनसे कपड़े वनते थे। रामायण में क्षौम के वहुत से उल्लेख आये है राम की माता क्षौम (क्षौमवासिनी)[२०] पहनती थी, एक विमल क्षौम पहने ब्राह्मण का वर्णन है[२१] और राम के नगर दर्शन के अवसर पर क्षौम और पट्ट के पांवड़े सड़को पर विछाए जाने का उल्लेख है[२२]। जातकों में क्षौम का उल्लेख आया है[२३] और महावग्ग मे[२४] वुद्ध ने भिक्षुओं को क्षौम के चीवर वनाने की आज्ञा दी है। जैनों के आचारांग सूत्र मे[२५] जैन साधुओं को क्षौम पहनने की आज्ञा दी गयी है। आचारांग सूत्र मे[२६] कीमती वस्त्रों की तालिका मे भी क्षौम आया है जिसे टीकाकार शीलांक ने सामान्य सूत का वना कपड़ा कहा है। यह अर्थ ठीक नही है क्योंकि क्षौम का व्यवहार कही भी कपास से वने कपड़े के लिए नही हुआ है । संभव यह है कि मोटे सूत के क्षौम साधारण रूप से जैन साधु व्यवहार कर सकते थे लेकिन वहुत वारीक सूत के कीमती क्षौम का व्यवहार उनके लिए वर्जित था ।

कंवल

हम दूसरे अध्याय में देख चुके है कि अथर्ववेद में कंवल शब्द का प्रयोग ऊनी

१९—अष्टाध्यायी, ५।२।४, डा० वासुदेवशरण, यू० पी०, हि० सो० ज० (जुलाई १९४०) पृ० १०५

२०—रामायण, २।६।२८

२१—रामायण, २।८।७

२२—रामायण, २।१८।५

२३—जातक, भा० ६, पृ० ४७

२४—महावग्ग, ८।१।३६

२५—आचारांग सू० १।७।४।१; २।५।१।१

२६—आचारांग सू० २।५।१।४, निशीथ चूर्णि, भा० ७, पृ० ४६७ में क्षौम का अर्थ रुई क कपड़ा (पोण्डमया) अथवा वृक्ष विशेष की छाल से वना वस्त्र दिया है ।

वस्त्रो के लिए हुआ है । महावग्ग[२७] में भी कवल शब्द का व्यवहार ऊनी वस्त्रो के लिए ही हुआ है। जातको में[२८] गधार के रक्त पडु कवल (इदगोपक वण्णाभा गधारा पडुकवला) की तारीफ की गयी है। महावणिज जातक[२९] में बहुमूल्य वस्तुओ की तालिका में उड्डीयान के कवल भी शामिल है । शिवि लोगो का देश ऊनी शालो के लिए, जिन्हें बौद्ध साहित्य में सीवेय्यक दुस्स[३०] कहा है, प्रसिद्ध था। सिवि जातक[३१] में इसका उल्लेख है कि कोशल राज ने दशवल नाम के एक व्यक्ति को सिवि देश का वस्त्र (सीवेय्यक वत्थ) जिसका दाम एव लाख कार्पापण था, उपहार में दिया। दुस्स शब्द अब भी पजाबी और हिन्दी में घुस्सा के रूप में चला आता है लेकिन घुस्से की चादर मामूली कीमत की होती है । लगता है कि प्राचीन दुस्स दुशाले की तरह कोई कीमती ऊनी चादर थी। दुस्स प्राचीन वैदिक तूप जिसके अर्थ कपडे में बटी या अनबटी छोर है, निकला है । दुशाले में बराबर छोर छोडी जाती है इसलिए उसका नाम महाजनपद युग में दुस्स पडा।

रामायण और महाभारत के अध्ययन से भी ऐसा पता चलता है कि गधार और पजाब ऊनी वस्त्रो के लिये प्रसिद्ध थे । रामायण में कहा गया है कि कैकय देश (आधुनिक शाहपुर-झेलम) के राजा ने अपने भाजे भरत को विदाई में उपहार स्वरूप अलकृत कालीन (चित्राकुथान्) शुभ्र कवल और बकरो की खाले दी[३२]। महाभारत के सभापर्व के उन अध्यायो से जिनमें राजसूय यज्ञ के अवसर पर देश के विभिन्न भागो से आये उपायनो का वर्णन है यह पता चलता है कि पजाब, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त और पूर्वी अफगानिस्तान से ऊनी कपडे और अधिकतर खालें आयी। कबोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) से कदली मृग की खालें, कीमती कबल,[३३] भेडो की खालें (ऐडान्श्चैलान्) और वृषदश पशु के समूर और बकरो की खालें आयी[३४]। परिसिंधु[३५] प्रदेश से भी तरह तरह के कवल आये। चीनियो हूणो, शको, ओड्रो और पर्वतातर में रहने वाले कबीलो ने भी तरह तरह के ऊनी वस्त्र उपहार में

२७—महावग्ग, ८।३।१
२८—जातक, भा० ६, पृ० ५००
२९—जातक, भा० ४, पृ० ३५२
३०—महावग्ग, ८।१।२९
३१—जातक, भा० ४, पृ० ४०१
३२—रामायण, २।७६।२०
३३—महाभारत, २।४५।१९
३४—महाभारत, २।४७।३
३५—महाभारत, २।४७।११

भेजे। वे वस्त्र प्रमाण और रंग में पक्के तथा वाह्लीक और चीन के बने हुए थे। उनमें ऊनी (और्ग), पश्मीने (रांकवम्) नमदे तथा भेड़ों और बकरों की खालें भी थी[३६]।

काशी के वस्त्र

पालि साहित्य में काशी के बने वस्त्रों के अनेक उल्लेख आये हैं। इन्हें काशीकुत्तम[३७] और कहीं कहीं कासीय[३८] कहते थे। बनारस का बना कपड़ा इतना प्रसिद्ध था कि महापरिनिर्वाण सूत्र[३९] का टीकाकार विहितकप्पास पर टीका करते हुए कहता है कि बुद्ध का मृत शरीर बनारस के बने कपड़े से लपेटा गया था और वह इतना महीन और गंठ कर बुना गया था कि तेल तक नहीं सोख सकता था। बनारसी वस्त्र का उसी सूत्र में एक दूसरी जगह वर्णन करते हुए कहा गया है[४०] कि वह कपड़ा हर तरफ से नीली झलक मारता था। इसके सिवाय वह पीला, लाल और सफेद भी हो गया था[४१]। बनारसी कपड़े (वाराणसेय्यक)[४२] के बारीक पोत का उल्लेख मज्झिमनिकाय में भी आया है। टीकाकार इसलिए बनारसी कपड़े की प्रशंसा करता है कि उसके अनुसार बनारस में अच्छी कपास होती थी, वहां की कत्तिनें और बुनकर होशियार होते थे, और वहां का नरम पानी धुलाई के लिये बहुत अच्छा पड़ता था। बनारसी कपड़े ऊपर नीचे दोनों ओर से मुलायम और चिकने होते थे। बनारस में सूती कपड़े के सिवाय रेशमी कपड़े क्षौम और शायद ऊनी कपड़े भी बनते थे। बनारस के रेशमी वस्त्र का एक जगह उल्लेख है[४३]। बनारस में क्षौम मिश्रित कंबल भी बनते थे। जीवक कुमारभृत्य को एक ऐसा ही कंबल काशिराज से उपहार में मिला था[४४]। महावग्ग में एक दूसरी जगह कहा गया है[४५] कि एक समय काशी के राजा ने जीवक की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे अड्ढकासिक कवल उपहार में भेजा। श्री र्‍हाइस डेविड ने इसका अनुवाद आधे बनारसी कपड़े से बना हुआ ऊनी वस्त्र किया है लेकिन उनके कथनानुसार भी यह माने अटकल से लगाया गया है। बुद्धघोस ने अड्ढकासीयं में कासी का अर्थ एक हजार कार्षापण किया है, और अड्ढकासीय का पांच सौ और इस तरह अड्ढकासीय का अर्थ पांच

३६—महाभारत, २।४७।४२-४३
३७—जातक (अंग्रेजी अनुवाद), ६, पृ० ४७; ६, १५१; १, ३३५
३८—जातक, ६, ५००
३९—महापरिनिब्बाण सुत्त, ५।२६
४०—वही, ३।२९
४१—वही, ३।३०-३२
४२—म० नि०, २।३।७
४३—जा० (अनुवाद), ६, पृ० ७७
४४—महावग्ग, ८।१।४
४५—वही, ८।२

सौ कार्षापण मूल्यवाला कपडा किया है। हमारा अनुमान है कि अड्ढकासीय कोई बहुत बारीक कपडा रहा होगा क्योंकि आज दिन भी बारीक सूती कपडे को अद्धी कहते हैं। लगता है बनारस में कसीदे का काम भी बनता था। इसे कासिक सूचीवस्त्र कहते थे[४६]।

कोटुंबर—बौद्ध युग मे इसकी गणना अच्छे कपडो में होती थी[४७]। अगर कोटुंबर देश की ओदुंबर देश से पहचान ठीक है[४८] तो यह कपडा अमृतसर के पास पठानकोट के इलाके में बुना जाता था, और शायद यह ऊनी कपडा होता था।

शाण—सन की काफी खेती होती थी[४९]। सन से सूत (शाणसुत्त) काता जाता था और उसकी ठीक तरह से गड्डिया (सुसनद्धो) बनायी जाती थी। इस सूत से सनी कपडा (साणिय) बुना जाता था। इसी तरह से क्षौम और कपास के कपडे भी बनते थे।

भागिक—भाग वृक्ष की छाल से भी कपडे बनते थे[५०]। आज दिन भी युक्तप्रान्त के कुमायू जिले में ऐसा कपडा बनता है जिसे भगेला कहते हैं।

फलक चीर[५१]—लगता है यह वस्त्र किसी विशेष लकडी की पतली फराटियो से बनाया जाता था। इसका उपयोग बौद्ध भिक्षुओ के लिए निषिद्ध था। इसका अर्थ फल के रेशो से बना वस्त्र भी हो सकता है।

कुश चीर[५२]—कुश के बने कपडो का बौद्ध भिक्षुओं के लिए निषेध था।

वल्कल[५३]—छाल के बने वस्त्र। ऐसे वस्त्र भी बौद्ध भिक्षुओ के लिए अविहित थे।

तृण के बने हुए वस्त्र विशेष—मध्य देश मे एरगु, मोरगु और मज्जारु[५४] नाम के तृणो से बने कपडे व्यवहार में लाये जाते थे। वहा जाकर बौद्ध भिक्षु भी ऐसे वस्त्र पहन सकते थे। तृण के बने वस्त्रो का व्यवहार किसी सुदूर प्राचीन काल की ओर हमारा ध्यान खीचता है।

हिरण्य वस्त्र—जिसका भी कभी कभी उल्लेख हुआ है[५५]।

४६—जा० ६, १४४, १४५, १५४
४७—जा० ६, ४७
४८—बागची, प्री आयन एड प्रीड्रवीडियन, पृ० १६०
४९—पायासि-सुत्त, २६, दीघनिकाय, भा० २, पृ० ३४९-५०
५०—महावग्ग, ८।३।१
५१—वही, ८।२८।२, चुल्लवग्ग, ५।२६।३
५२—महावग्ग, ८।२८।२-३
५३—वही, ८।२८।२ ३
५४—वही, ५।१।३।६
५५—महापरिनिब्बाण सुत्त, ४।४४

वस्त्रों के लिए चमड़े का व्यवहार

जातकों मे अजिन की वस्त्र की तरह उपयोग में लाने का उल्लेख है[५६]। ऐसा लगता है कि बहुत प्राचीन काल मे सिह, व्याघ्र, चीते, तेंदुए, गाय और हिरन के चमड़ों का उपयोग बिछावन और वस्त्रों के लिए होता था[५७]। दक्षिणापथ में भी बकरों, भेड़ों और हिरन की खालों का उपयोग आस्तरण और वस्त्र के लिए होता था[५८]। बौद्ध भिक्षुओं को चमड़े के वस्त्र पहनने की अनुमति नहीं थी, पर दक्षिणापथ मे वे इनका उपयोग कर सकते थे।

ऊनी और सूती वस्त्रों का व्यवहार पहनने के सिवाय चांदनी, कालीन, पर्दो और मेजपोश इत्यादि के लिए भी होता था। सज्जा के लिए ऐसे कपड़ों के उल्लेख बौद्ध साहित्य में काफी आये हैं और इनकी तालिकाएं भी महावग्ग और ब्रह्मजाल सुत्त में दी हुई है जिनमें बिछाने ओढ़ने के निम्नलिखित वस्त्र हैं।

गोणक—टीका मे इसका अर्थ लंबेबाल वाले बकरे के बाल से बना हुआ आस्तरण है[५९]। यह शब्द भारतीय साहित्य में बहुत ही कम आया है और संभव है कि यह ईरानी भाषा से लिया गया हो। इस सम्बन्ध मे मै पाठकों का ध्यान सुमेर और अक्काद के प्राचीन निवासियों के पहरावे की ओर दिलाना चाहता हूं। यह एक तहबंदनुमा वस्त्र होता था जो घुटनों तक पहुंचता था और जिसे लोग कमर मे लपेट लिया करते थे। यह तहबंद एक टुकड़े में होता था, इस पर उभरी हुई धारियां होती थी और हर धारी के अंत मे झालर। यूनानी लोग इस वस्त्र को कौनकेस (Kaunkes) कहते थे और अरिस्तोफानेज के समय मे यह एकबातना में बुना जाता था[६०]। इस कौनकेस का व्यवहार दुंगी के समय में तिपाइयो के ढकने के लिये भी होता था[६१]। गोणक और कौनकेस एक ही शब्द मालूम पड़ते है। भारत में गोणक का व्यवहार आस्तरण रूप में ही होता था, कपड़े के रूप मे नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि भारतवर्ष में यह शब्द कहा से और कैसे आया। इसका सर्वप्रथम उल्लेख जहां तक मुझे मालूम है ब्रह्मजाल सूत्र मे हुआ है। लगता यह है कि लगभग ५०० ई० पू० मे ईरानी भाषा से यह शब्द पालि में आया।

५६—जा० ६, ५००
५७—महावग्ग, ५।१०।५-७
५८—वही, ५।१३।६
५९—ब्र० सु०, १५, डायलाग्स ऑफ बुद्ध, पृ० ११ इत्यादि
६०—एल० देलापोर्त, मेसोपोटामिया, पृ० १९४, लंडन, १९२५
६१—वही, पृ० १९६

चित्तक[62]—विस्तर ढाकने के लिए अनेक वस्त्र खडो से बनी रग बिरगी कालीन।

पलिका[63]—सफेद ऊनी कालीन

पटलिका[64]—खूब पास बने हुए फूलो वाले कालीन।

तूलिका[65]—रुई भरी रजाई।

विकटिका[66]—ऐसे आस्तरण जिन पर सिह, व्याघ्र इत्यादि के चित्र कढे हो।

उद्दलोमी[67]—दोनो ओर रोए वाले कबल। यह ऊदबिलाव की खाल भी हो सकती है।

एकतलोमी[68]—एक रुखा रोएदार कबल।

कट्टिस[69]—जवाहरातो से सजे आस्तरण।

कोसेय्य[70]—रेशमी कालीन।

कुत्तक[71]—इतना बडा ऊनी कालीन जिस पर सोलह नर्तकिया एक साथ नाच सकती थी।

हत्थत्थर और अस्सत्थर[72]—हाथी, घोडे और रथ पर बिछाये जाने वाले आस्तरण।

अजिनपवेणी[73]—मृगचर्मो को जोड कर बनाया गया कबल।

कदलीमिगपवरपच्चत्थरण[74]—कदलीमृग के चमडो से बना हुआ कबल। कदलीमृग कौन सा पशु था यह ठीक ठीक नही कहा जा सकता। सुमगलविलासिनी के अनुसार यह केले के पेडो के झुरमुट मे रहने वाला एक पशु था। लेकिन महाभारत[75] और अर्थशास्त्र[76] तो इसे पहाडो पर रहने वाला एक मृग मानते है, इसलिए कदलीमृग केले के पेडो के झुरमुट में रहने वाला पशु नही हो सकता।

चिलिमिया[77]—साफ सुथरे फर्श की शोभा की रक्षा के लिए एक विशेष प्रकार का कालीन।

६२—ब्र० सू० १५, महावग्ग, ५।१०।२

६३—वही, उन्नामयो सेतन्थरको, ब्र० जा० सूत्र पर टीका।

६४—वही, शायद यह बाद में फूलों का गई प्रथम उल्लेख है।

६५—७४, वही

७५—महाभारत, २।८५।१६

७६—अर्थशास्त्र (गणपति शास्त्री), भा० १, पृ० १६१ १६२

७७—महावग्ग, ६।२।६, परिस्सरनाय भूमिया छविसमरक्खनत्थाय अत्थरण सुन्चनि।

वाहीतिक[७८]—यह एक सोलह हाथ लंबी और आठ हाथ चौड़ी एक ऊनी चादर होती थी। एक ऐसी ही चादर राजा अजातशत्रु ने प्रसेनजित् के पास उपहार में भेजी थी। प्रसेनजित् ने इसे आनद को भेंट कर दी।

नमतक[७९]—भेड़ो या पहाड़ी वकरों के रोएं से कूट कर जमाया हुआ नमदा। कश्मीर मे आज दिन भी सादे या कामदार नमदे बहुतायत से बनते है।

कोजव[८०]—लंबे रोएं वाला कंबल। शायद यह आधुनिक थुलमे की तरह कोई कंवल था।

वस्त्रों की धुलाई और रंगाई

कपड़े धोने की रीति का वर्णन बौद्ध साहित्य मे तो नही मिलता लेकिन जैन ग्रंथ ज्ञाताधर्म कथा[८१] में उसका पूरा वर्णन है। पहले वस्त्र में सज्जीखार लगा कर फिर उसे उबालते थे और वाद में साफ पानी से धो लेते थे। अभी तक धोबी इसी रीति से कपड़े धोते हैं। रंगने के पहले भी कपड़ा अच्छी तरह से धो लिया जाता था[८२]। कपड़े नीले, पीले, लाल, मजीठ, काले और हल्दी के रंग में रंग लिये जाते थे[८३]। भिक्षुओं को रंगीन कपड़े पहनने की आज्ञा नहीं थी।

भिक्षु, श्रमणों और जैन साधुओं के पहनने के वस्त्र

वौद्ध और जैन साहित्यों में भिक्षुओं और साधुओं के विहित वस्त्रों का वड़ा सविस्तर वर्णन हुआ है। प्रसंगवश श्रमण ब्राह्मणों के वस्त्रों का इसलिए उल्लेख हुआ है कि उनका व्यवहार वौद्ध और जैन साधु न करें। अपने अपने संघों की ब्राह्मण धर्मानुयायी संघों से विभिन्नता दिखलाने के लिए ऐसा आवश्यक भी था

ब्राह्मण और श्रमणों के वस्त्र

सीहनाद सुत्त[८४] में इनके वस्त्रों का पूरा पूरा वर्णन हुआ है। ये सन के वने वस्त्र (शाणानि), सन और दूसरी तरह के सतों के मेल से बुने कपड़े, मृत शरीर से अलग किये

७८—मज्झिम निकाय, २।४।८
७९—चुल्लवग्ग, १०।१०।४
८०—महावग्ग, ८।१।३६
८१—ज्ञाता धर्मकथा, ३। ६०
८२—महावग्ग, ५।१। १०
८३—महावग्ग, ८।२९। १
८४—कस्सप सीहनाद सुत्त, १४, डायलॉग्स् ऑफ बुद्ध, पृ० २३०-२३१, पाठ दीघनिकाय, भा० १, पृ० १६६-१६७

हुए कपड़े (छवदुस्स), भूर पर फेंके हुये चीथड़ो से बने कपड़े (पासुदुकूलानि), तिरीट की छाल से बने कपडे (तिरीटानि), मृगचर्म (अजिनामि), कृष्णमृग के चर्म की पट्टिया से बने कपडे (अजिनक्खिप), कुश के बने कपडे (कुशचीर), वल्कल के बने कपडे (वाकार्चीर), लकडी की फराटियो या टुकडो से बने कपडे (फलकचीर), मनुष्य के बालो से बने कबल (केसकबल), घोडे की दुम के बालो से बने कबल (बाल्कबल) और उल्लू के पखो से बने कबल (उलूकपक्ख) पहनते थे। ब्राह्मणो और श्रमणो के वस्त्रो का वर्णन देखकर यह पता चलता है कि उनके भिन्न भिन्न वर्गों मे भिन्न भिन्न तरह के कपडे प्रचलित थे। सन, तिरीट, मृगचर्म और वल्कल के बने कपडे तो ब्राह्मण पहनते थे। छवदुस्स एरक नाम की घास की चटाई शव के लपेटने के लिए होती थी[८५] और पासुदुकूल लगता है कापालिक क्रिया साधने वाले पहनते थे। केसकबल भी एक तरह के श्रमणो का वस्त्र था। बुद्ध के समकालीन एक आचार्य का नाम केसकबली था। लगता है फलकचीर, बाल्कबल और उलूकपक्ख पहनने वाले श्रमणो के वर्ग भी रहे होगे।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियो के वस्त्र

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियो के वस्त्र प्राय एक से होते थे। पीले रग में रगे इनके वस्त्रों की सख्या तीन होती थी यथा सघाटी अर्थात् कमर में लपेटने की दोहरी तहमत, अतरवासक अर्थात् शरीर के ऊपरी भाग ढकने का वस्त्र और उत्तरासग अर्थात् चादर[८६]। इनके सिवाय बैठने के लिए आसन (प्रत्यस्तरण), खुजली होने पर पहनने के लिए चार बित्ता लबा और दो बित्ता चौडा कोपीन (कडूक प्रतिच्छादन)[८७] वर्षा काल में पहनने के लिए एक वस्त्र (वार्षिक साटिक)[८८] जो छ बित्ता लबा और ढाई बित्ता चौडा होता था, उनके लिए विहित थे। भिक्षु आयोगपट्ट[८९] (बैठने पर दोनो घुटनो और पीठ के जोडने के लिए एक पट्टी) भी व्यवहार में लाते थे। इनके कमरबद (कायबध)[९०] सादी और फेरदार बुनावट की पट्टियो से बनते थे। इन कायबधो के किनारे फटने के डर से उलट कर सी दिये जाते थे। इनके किनारो पर लगी पट्टियो को शोभक कहते थे, और इन पर की हुई बरफीदार तगनी को गुणक[९१]। कायबधो में हुक (बीठ) भी लगते थे पर ये बीठ सदा हड्डी, शख और डोरे के बने होते थे, भिक्षुओ के लिए सोने चादी के बीठ वर्जित थे[९२]। भिक्षु अपने वस्त्रो में तुक (पासक) और मेख (घुडी) लगा सकते थे। मेख हड्डी, सूत और दास के बने होते थे सोने चादी के नहीं[९३]।

८५—कस्सप सीहनाद सुत्त, १५, टीका
८६—महावग्ग, ८।१३।४-५
८७—भिक्खु पातिमोक्ख, ५।९।१०, महावग्ग, ८।१८।१
८८—भि० पा०, ५।३।६।९, म० व०, ८।५।६
८९—चुल्लवग्ग, ५।२०।२
९०—वही, ५।२९।२
९१—९२—चुल्लवग्ग, ५।२९।२

भिक्षु कंचुक नहीं पहन सकते थे[९४]। वे लहरियादार लंबे, कसीदेदार सर्प फणाकार, तथा पंजक युक्त किनारों का वस्त्र नहीं पहन सकते थे क्योंकि ऐसे वस्त्र केवल सर्वसाधारण ही पहन सकते थे

करघे और उनके भाग

ऐसा मालूम पड़ता है कि बौद्ध युग के आरभिक युग मे बौद्ध भिक्षुओं को कपडे विनने की स्वतंत्रता थी। इसी प्रकरण में करघा (तंतक), ढरकी (वेमक), टट्टी (शलाका) और डोर (वट्ट) के नाम आये है[९५]। जहां तक मुझे पता है कम से कम किसी भारतीय धर्म ने साधुओं और भिक्षुओं को कपड़े बुनने की स्वतंत्रता नहीं दी है। बुनाई की आज्ञा देकर बौद्ध धर्म अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देता है।

बौद्ध भिक्षुणियों के वस्त्र

बौद्ध भिक्षुणियाँ संघाटी, अंतरवासक और उत्तरासंग के अतिरिक्त कंचुक भी पहन सकती थीं। एक जगह इस बात का उल्लेख है कि बिना कंचुक पहने गांव मे जाने वाली भिक्षुणियों के लिए प्रायश्चित्त का विधान था[९६]। यह कहना कठिन है कि इस युग मे कंचुक का आकार चोली जैसा होता था या कुरते जैसा, पर शुग काल की मट्टी की मूर्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शायद कंचुक कुरते जैसा था। भिक्षुणियाँ एकांत मे कटिसूत्र से बंधा लंगोट जैसा एक वस्त्र पहनतीं थी[९७]। यह लंगोट डेढ़ फुट लंबे और छः इंच चौड़े एक तिकोने कपड़े से बना होता था और कमर से बाँधने के लिए एक डोरी लगती थी।

जैन साधुओं के वस्त्र

आचारांग सूत्र[९८] के अनुसार जैन साधु केवल तीन वस्त्र ग्रहण कर सकते थे, इनमें दो तो क्षौम की धोतियाँ (क्षौम कल्प) होती थी और एक ऊनी चादर (औणिक कल्प)। शीलांक अपनी टीका[९९] में कहते है कि जाड़ों में जैन साधु ढाई हाथ वर्ग गज की दो कोपीने और एक ऊनी वस्त्र ग्रहण कर सकते थे। जिस अवस्था में कपड़े साधुओं को मिलते थे उसी

९४—महावग्ग, ८।२९।१
९५—चुल्लवग्ग, ५।२०।२
९६—भिक्खुनी पातिमोक्ख, ४।४०।९६
९७—चुल्लवग्ग, १०।६।२
९८—आ० सू०, १।७।४।१
९९—टीका, पृ० २५१ अ

अवस्था में वे उन्हें पहन सकते थे। जैन साधु अपने कपडे धो, रग नही सकते थे। जाडा बीत जाने पर साधु क्षौमसाटी भी पहन सकते थे[१००]। जिनकल्पधारी साधु हमेशा नगे रहते थे।

साधारण लोगो की वेश-भूषा

गृहस्थो के पहरावे में तीन कपडे होते थे यथा धोती (अतरवासक), दुपट्टा (उत्तरासग) और पगडी (उण्णीष)। स्त्रियाँ[१०१] और पुरुष[१०२] कचुक पहनते थे। शायद यह कुरता जैसा कोई वस्त्र रहा हो, लेकिन यह कहना मुश्किल है कि यह वस्त्र आगे से खुला रहता था अथवा बद।

स्त्रिया साडी भी पहनती थी जो काफी मजबूत होती थी (वलित्थग साटको)[१०३]। रानियाँ अमूमन साडियाँ पहना करती थी और इसे सट्ट-साट्टक कहते थे[१०४]। बौद्ध साहित्य से यह पता नही चलता कि उस समय साडी पहनने का क्या तरीका था।

आकर्षक ढग से कपडे पहनने की प्रथा

बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि लोग अपने कपडे बडे शौक से सँवार बना कर पहनते थे। वैशाली के नागरिक कपडो के बडे शौकीन थे। महापरिनिब्बाण सुत्त[१०५] में कहा गया है कि यह समाचार पाकर बुद्ध अबपालिका के यहा पधारने वाले है वैशाली के नागरिक आतुरतापूर्वक उनसे मिलने चले। उन्होने अपने शरीर के रगो से मेल खाते हुए वस्त्र और आभूषण धारण कर रक्खे थे। साँवले रग के आदमी गहरे रग का वस्त्राभूषण पहिने थे, साफ रग के लोग हल्के कपडे और गहने पहने थे। स्त्रियाँ भी अपने बनाव श्रृङ्गार में रगो के मिलान पर बडा ध्यान देती थी। जातको में एक जगह कहा गया है[१०६] कि विरूपाक्ष की पुत्री कालकण्णी ने सुचिपरिवार नाम सेट्ठी से मिलते समय नीले रग का वस्त्र, नील विलेपन और नील मणियो से अपना श्रृङ्गार कर रक्खा था। लेकिन श्रेष्ठी को यह रगविन्यास पसद नही आया और उसने अपनी राय कालकण्णी से साफ साफ कह दी।

१००—आचारांग सूत्र, १।७।५।१

१०१—भिक्खुनी पातिमोक्ख, ४।४०।९६

१०२—चुल्लवग्ग, ५।२९।२

१०३—जातक (३२४), ३, पृ० ५५

१०४—जातक, (४३१), ३, २९६

१०५—महापरिनिब्बान सुत्त, २, १८

१०६—जातक (३८२), ३, पृ० ५५

धोती पहनने के तरीके

इस युग में भारतीयों का पहिरावा सादा तो अवश्य होता था लेकिन उसे वे बड़े आकर्षक ढंग से पहनते थे। धोती वे निम्नलिखित तरीकों से पहिनते थे[१०७] ...

हस्तिशौंडिक—अट्ठकथा के अनुसार धोती की चुन्नट वैसी ही होती थी जैसी कि चोल देश की स्त्रियों की साड़ी में। लगता ऐसा है कि धोती का एक सिरा चुन कर कमर में खोंस लिया जाता था और लटकती हुई चूनन का आकार कुछ हाथी के सूंड़ की तरह भासित होता था।

मत्स्यवालक—धोती में लंबान और चौड़ान के किनारे मछली की पूंछ के आकार में सज्जित किये जाते थे।

चतुष्कर्णक—इस प्रकार के वस्त्र विशेष में चार कोने होते थे। शायद यह दुपट्टे ऐसा कोई वस्त्र रहा हो। भरहुत में चौकोने दुपट्टे पहने (आ० २१) मनुष्य दिखलाये गये हैं। अथवा यह चाकदार जामा ऐसा कोई सिला हुआ वस्त्र था या धोती के चार छोर इसमें दिखलाई देते थे।

तालवृन्तक—इसमें वस्त्र या धोती का चुन्नटदार छोर ताल के पंखे के आकार का होता था। पंखे के आकार के शिरोवस्त्र बहुधा अर्धचित्रों में आते हैं।

शतवल्लिक—इस प्रकार की धोती में बहुत सी चूंननें और सिलवटें पड़ती थीं।

धोती या साड़ी पहनने में लांग पीछे बांध ली जाती थी, लेकिन भिक्षुओं के लिए लांग बाँधना अविहित था।

कमरबंद

कायबंध[१०८] कमरबंद बांधने के भी अनेक तरीके थे तथा आकार के अनुसार इसके अनेक नाम भी थे। कलाबुक नाम का कमरबंद बटी रस्सियों से बना होता था। डेड्डुभक की शकल जल में रहने वाले डेढ़े साँप की तरह होती थी, मुरज ढोल के आकार का होता था और मद्दवीन नामक कमरबंद से एक अलंकार लटका करता था।

कलात्मक ढंग से कमरबंद और पटके बांधने की रीति स्त्रियों में काफी प्रचलित थी, लेकिन बुद्ध की आज्ञानुसार भिक्षुणियाँ अपने कमरबंद सादे तौर से ही बांध सकती थीं।

१०७—चुल्लवग्ग, ५।२९।४
१०८—वही, ५।२९।२

उनके कमरबदो में एक ही फँटा लगता था। पटके बास के रेशे (विलीव) चर्मपट्ट, ऊनी पट्टी (दुस्सपट्ट) गुथे हुए ऊन (दुस्सवेणी), वटे हुए ऊन (दुस्सवट्टी), वटे हुए चोलवस्त्र (चोलवट्टी) गुथे-हुए चोल वस्त्र (चोलवेणी) और गुथे हुए सूती कपडे (चोलवट्टी) के बनते थे[१०९]।

जूते

मनुष्य के पहिरावे में जूतो और पादुकाओ का एक विशेष स्थान होता था। एक जातक में कहा गया है कि शरीर की रक्षा और आराम के लिए जूतो का खरीदना आवश्यक था[११०]। जूते आकार और रग में भिन्न भिन्न प्रकार के होते थे। जूते एकतल्ले (एक पलासिक), दोतल्ले (द्विपटल), तिनतल्ले (तिपटल) और चौतल्ले होते थे[१११]। जूते नील, लोहित, मजीठ, कृष्ण, नारगी (महारग) और पीले (कुरुदिय) चमडो से बनाये जाते थे। जूतो में रग विरगे किनारे भी लगाये जाते थे[११२]। ऐसे रग विरगे तथा अनेक तल्ले वाले जूते केवल गृहस्थ पहन सकते थे। भिक्षु केवल एक तल्ले जूते पहन सकते थे[११३] लेकिन अनेक तल्ले वाले पुराने जूते पहने जा सकते थे[११४]।

जूते निम्नलिखित आकारो के होते थे[११५] —

(१) पुटबद्ध—घुटने तक चढे हुए जूते। बुद्धघोस के अनुसार ये जूते यवनो के होते थे और ये जघो से लेकर सब पैर को ढक लेते थे। साची के एक अर्धचित्र में इसी तरह का जूता चित्रित किया गया है। बाद में बृहद् कल्पसूत्र भाष्य में इस जूते को जघा अथवा खपुसा कहा गया है।

(२) पालिगुठिम—ये जूते केवल पैर ढकते थे और जघे खुले रहते थे। साची के अर्धचित्रो में एक जगह इस जूते की आकृति बतलायी गयी है।

(३) खल्लकबद्ध—बुद्धघोस के अनुसार इस जूते के तले में एँडा ढापने के लिए खल्लक लगा होता था। लगता है इस जूते का आकार आधुनिक पेशावरी चप्पल जैसा रहा होगा (आ० ११०)। बृहद कल्पसूत्र भाष्य[११६] में पूरे पैर ढकने वाले जूते को खल्लक कहते थे।

१०९—चुल्लवग्ग, १०।१०।१
११०—जातक (२२७), २,पृ० १५५
१११—महावग्ग, ५।१।२८
११२—महावग्ग, ५।२।२
११३—महावग्ग ५।२।१
११४—महावग्ग, ५।१।२
११५—महावग्ग, ५।२।२३
११६—बृहत्कल्प सूत्रभाष्य, ४,३८४७

(४) मेण्डविपाण वद्धिक—वुद्धघोस के अनुसार इस जूते की नोक पर अलंकार स्वरूप मेढ़े के सीग लगाये जाते थे।

(५) अजविपाण वद्धिक—इस जूते की नोक (कर्णिका) पर वकरे के सींग लगाये जाते थे।

(६) वृश्चिकालिक—इस जूते की नोक पर विच्छू की पूंछ का अलंकरण होता था।

(७) मोरपिंछ परिसिव्वित—वुद्धघोस के अनुसार इस जूते के तले या वंदों में मोरपंख सिला हुआ होता था।

(८) तूलपुण्णिक—लगता है यह जूता रूई से भरा हुआ होता था।

(९) तित्तिरपट्टिक—इस जूते की वनावट तीतर के पंखों जैसी होती थी।

उपरोक्त किस्म के जूते केवल गृहस्थ पहन सकते थे। भिक्षुओं को इनके पहनने की मनाही थी। लेकिन उन प्रत्यन्त देशों में जहां वौद्ध धर्म घुस नहीं सका था उन्हें वहां के वने हर एक प्रकार के जूते पहनने की आज्ञा थी[११७]

भिक्षु धार्मिक शिक्षा ग्रहण करते समय चप्पल नहीं पहन सकते थे[११८]। आराम में प्रवेश करते हुए भिक्षुओं को आदेश था कि वे अपनी चप्पले अथवा पादुकाएं उतार दें और उनसे गरदा पीट कर निकाल दे। वाद मे वस्त्र मांग कर चप्पलें पोंछे। पहले सूखे कपड़े से और वाद में गीले कपड़े से जूते पोंछने का आदेश मिलता है[११९]।

जिन जूतों का वर्णन हम ऊपर कर आये है उनके अलावा भी सिंह, व्याघ्र, मृग, चीते, ऊदविलाव, विल्ली, गिलहरी और उल्लू के चमड़ों से भी जूते वनाये जाते थे[१२०]। उन दिनों इस देश मे जूतो का इतना अधिक चलन था कि चर्मकार के व्यवसाय से ली गयी उपमाओं का प्रयोग कही कहीं पालि साहित्य मे हुआ है। काम जातक[१२१] की एक गाथा में कहा गया है कि जिस तरह चर्मकार जूता वनाने में चमड़े के कोने काट कर उसमे रूप पैदा करता है (रथकारो व चम्मस्स परिकन्तं उपाहन) उसी तरह इच्छाओ के नाग होने पर सुख की प्राप्ति होती है।

११७—महावग्ग, ५।१३।६

११८—पातिमोक्ख, ६१

११९—चुल्लवग्ग, ८।२

१२०—महावग्ग, ५।२।४

१२१—जातक, ४,१७२

चप्पल और पादुकाए

जूतो के सिवाय गृहस्थ काठ की पादुकाए तथा ताल्पत्र और बास की बनी चप्पलें भी पहनते थे[१२२]। पर इनका व्यवहार भिक्षुओ के लिए वर्जित था। चप्पलें तृण, मूज, हिताल की लकडी, कमल, वल्वज नाम की घास और कबल की बनती थी। आज दिन भी भारत के ऐसे इलाको में जहा आधुनिक सभ्यता पूरी तरह से नही घुस सकी है, घास और मूज की बनी चप्पलें काम में लायी जाती है।

कुछ शौकीन और पैसे वाले अपनी पादुकाए सोने, चादी, स्फटिक, वैडूर्य, कासा, काच, रागा और ताबे के अलकारो मे सजाते थे[१२३] पर साधारण गृहस्थ ऐसा नही करते थे। भिक्षुओ को भी ऐसी अलकृत पादुकाए पहनने की आज्ञा नही थी।

एक धनुर्धारी की वेश-भूषा

पालि साहित्य में कही कही जन समाज की वेश-भूषा के प्रकरण भी आ गये है। एक जगह एक धनुर्धारी के पहिरावे का सजीव वर्णन है। कथा यह है कि एक समय बोधिसत्व धनुर्धारी के रूप में उत्पन्न हुए और एक शस्त्र प्रतियोगिता में अपने कौशल का परिचय दिया। एक परदे की आड में पहले उन्होने अपने सफेद कपडे उतार कर बदन से सटा हुआ एक लाल कपडा पहन लिया, काछ कस लिया, और लाल फेंटे में तलवार खोस ली। सब के ऊपर एक सुनहला कचुक पहन लिया। उसके ऊपर चापनाली धारण कर के, मेढे के सीग से बनी धनुष कसा और अत में धनुष टकार करते हुए परदे के बाहर निकल आये[१२४]।

दुकूल चुवट—एक जातक में एक राजा के दुकूल चुवट पहनने का उल्लेख है[१२५]। यह कहना कठिन है कि दुकूल चुवट का क्या रूप था।

सिलाई और उसके उपकरण

कचुक इत्यादि के उल्लेखो से यह तो निश्चय हो गया है कि बौद्धकालीन भारत में या उसके पहले भी लोग सीना-पिरोना बहुत अच्छी तरह जानते थे। इससे कुछ अग्रेज विद्वानो का यह विचार भ्रमात्मक सिद्ध होता है कि भारतीयो मे सिले वस्त्रो की परपरा का आरभ मुसल्मानो के भारत विजय के बाद से आरभ होता है। महावग्ग में तो सिलाई

१२२—महावग्ग, ५।७।१
१२३—वही, ५।८।३
१२४—जातक, (१८१), २,६१
१२५—जातक, ३,१६

का विशद वर्णन आया है जिससे पता चलता है कि कम से कम २५०० बरस पहले लोग सीने की कला में पूरी तौर से प्रवीण हो चुके थे । सिलाई संबंधी जो कुछ भी ज्ञान हमें बौद्ध साहित्य से प्राप्त होता है उसका वर्णन नीचे दिया जाता है ।

सूची—सूई लोग व्यवहार में लाते थे और सुइयां सूचीनालिका में रक्खी जाती थीं। सूइयों में मोरचा लगने के भय से सूचीनालिका मे मोम का एक अस्तर दे दिया जाता था[१२६] ।

पहले भिक्षुगण अपने कपड़े परगजे और बांस के बने सूजे से सीते थे लेकिन बाद में उन्हें लोहे की सूई से अपने कपड़े सीने की आज्ञा मिल गई।

सूचिक और सूचिक नाली के उल्लेख चुल्लवग्ग में[१२७] भी आते है। सूई की धार भोथरी न होने देने के लिए खाने में चूना, जौका आटा, बालू तथा सिपिटक गोंद मिली हुई मोम का प्रयोग होता था।

जातकों में एक स्थान पर एक सूई बनाने वाले की कथा दी हुई है जिससे पता चलता है कि सूचिकार अपने व्यवसाय मे काफी निपुण होते थे। कथा यह है[१२८] कि बोधिसत्व एक सूचिकार के चोले मे उत्पन्न हुए और उनकी इच्छा गांव के एक लुहार की कन्या से विवाह करने की हुई। उन्होंने बहुत ही अच्छे किस्म के लोहे से एक सूई बनाई जो इतनी हल्की थी कि पानी पर तैर सकती थी । इस सूई को उन्होंने एक कोश में (सत्थकोश) रक्खा और उस कोश को एक नाली में, और फिर इस नाली को एक पेटी मे रख कर (ओवट्टिथायकत्वा) वे लोहार के गांव में जाकर फेरी लगा कर आवाज देने लगे । "मेरी सूई सीधी और चिकनी है इसमें डोरा जल्दी पिरोया जा सकता है । कोरण्ड से इस पर पालिश की गयी है, इसकी नोक तेज है, सूई कौन लेगा।" "जल्दी पिरोई जाने वाली सीधी और मजबूत ठीक तरह से गोल की हुई मेरी सूई लोहे तक को छेद सकती है, बताओ मेरी सुई कौन लेगा।" लोहार की लड़की ने जब एक बाहरी को अपनी सूई को इस तरह प्रशंसा करते सुना तो उसे एक आदमी की मूर्खता पर इसलिए आश्चर्य हुआ कि उस लोहारों के गांव की सुइयां इतनी अच्छी बनती थी कि चारों ओर से आदमी उन्हे खरीदने आते थे। लड़की ने बोधिसत्व को उत्तर दिया—

"हमारी हुकें (बलिसानि) चारों ओर बिकती हैं, और आदमी हमारे गांव में बनी सुइयों से भली भांति अवगत हैं, फिर यहां सुइयां कौन बेंच सकता है।" "लोहे के काम में

१२६—चुल्लवग्ग ५।११।२
१२७—चुल्लवग्ग, ५।११।२
१२८—जातक (३८७), भा० २, पृ० १७८-१७९

हमारी ख्याति है, हमारे हथियार सब से अच्छे बनते है, हम इस गाव के लोहार है, फिर यहा सुइया कौन बेच सकता है।"

ऊपर की गाथाओ से, जो तत्कालीन लोकगीत के सुन्दर नमूने है, यह पता चलता है कि सुइयो की यथेष्ट माग थी और इस व्यवसाय में काफी प्रतिस्पर्धा भी थी।

कैंची—इसे सत्थक कहते थे और इसके रखने का खाना (आवेसनवित्थक) से बनाया जाता था१२९। कैंची की मूठें कभी कभी सोने चादी की होती थी लेकिन भिक्षु केवल हड्डी, हाथी दात, सीग, बेत, बास, बडी लकडी, कासा और शख के बनी मूठ ही व्यवहार में ला सकते थे।

प्रतिग्रह[१३०] (अगुश्ताना)—सूई से अगुलियो की रक्षा के लिए प्रतिग्रह या अगुश्ताने का व्यवहार होता था। रईस सोने चादी के अगुश्ताने बनवाते थे पर भिक्षु केवल हड्डी या शख इत्यादि के।

कठिन—यह एक प्रकार का फ्रेम या पट्टा होता था जिस पर दरजी सीने के कपडे फैला देता था। कपडा पट्टे पर फैला कर इधर उधर रस्सियो से बाध दिया जाता था और इसके बाद कठिन को घास की चटाई पर रख देते थे। कठिन की दोनो बगले मजबूती के लिए या तो दुहरी कर दी जाती थी या उन्हे कस कर बाध दिया जाता था (अनुवात परिभण्ड) कठिन के पायो या डडो को दड कठिन कहते थे, खूटो को पिदलक, बास की खपचियो को शलाका और बाधने की रस्सियो को विनन्धन रज्जु या विनन्धन सुत्तक कहते थे।१३१

सीयन की पक्तियो के बीच की चौडाई मे कमी-बेशी न आने देने के लिए कपडे पर ताडपत्र अकित कर दिये जाते थे। कपडे की सिलाई या कटाई के लिए ठीक जगह पर पहले लगर (मोघसुत्तकम्) डाल दिये जाते थे। बुद्धघोस के अनुसार ये लगर हरे डोरे से उसी प्रकार डाले जाते थे जैसे बढई काले डोरे से तख्ता काटने के लिए निशान बनाते थे।१३२

दरजी की दूकान मे खानेदार पेटियाँ (आवेसनवित्थक) होती थी। कठिन एक मडप या छप्पर के नीचे रक्खा जाता था। यह मडप चबूतरे (चय) पर इसलिए होता था जिससे पानी दूकान के अदर न घुस सके। चबूतरे में ईंट, पत्थर या लकडी का मुखौटा (facing) तथा ईट, पत्थर या लकडी की सीढियाँ जिनमे रेलिंग (आलबनबाह) लगी

१२९—चुल्लवग्ग, ५।११।१
१३०—चुल्लवग्ग, ५।११।५
१३१—चुल्लवग्ग, ५।११।३
१३२—वही, ५।११।२

होती थी, दीवारें और छत पहले चमड़े से ढाँक दी जाती थी और बाद में उन पर भीतर बाहर से पलस्तर कर दिया जाता था। इसके बाद दुकान की छुहाई होती थी और उसमे काले लाल रंग (गेरुपरिकम्मं) रंग लगाये जाते थे। इसके बाद माला और बेलों से वह अलंकृत की जाती थी और उसमें खूटियाँ, टांडें (पचपटिकं) तथा कपड़े टाँगने के लिए बांस और रस्सियाँ लगायी जाती थी[१३३]।

कठिन मे घुन लगने के भय से उसे गोचर्म (गोवसिका) से मढ़ देते थे। और काम न होने पर उसे एक खूटी (नागदन्त) से लटका देते थे[१३४]।

महावग्ग मे काटने, सीने और रफू करने के संबंध मे बहुत से शब्द दिये गये है जिनसे पता चलता है कि प्राचीन भारत के लोग कटाई और सिलाई के प्रत्येक अंगों से भली भांति परिचित थे। इन पारिभाषिक शब्दों के अर्थ समझने मे काफी कठिनाई पड़ती है क्योंकि शब्द इतने प्राचीन है कि उनके अर्थ प्राय. लुप्त हो गये हैं। शब्द और परिभाषाएं नीचे दी जाती हैं—

(१) उल्लिखित—कपड़े की लंबाई चौड़ाई पर नाप के लिए नख या खड़ी से निशान बना देते थे[१३५]।

(२) वन्धन—सिलने के पहले कपड़े के टुकड़ो को आपस में लगर से जोड़ना[१३६]। पक्की सिलाई होने पर लंगर तोड़ दिये जाते हैं।

(३) ओवट्टियकरण—लंबान में मोड़ कर लगर के सहारे सिलाई[१३७]।

(४) कंडुसकरण—बुद्धघोस इसका अर्थ करते है मुद्दियपट्टबन्धनमत्तेन जिसका अर्थ ठीक ठीक नही लगता। हो सकता है इसका अर्थ कपडे के छोटे टुकड़े से बड़े कपड़े का जोड़ हो[१३८]।

(५) दढिकरण—बुद्धघोस इस शब्द के निम्नलिखित अर्थ करते है (अ) दो चिमिलिकाओ (परतों) को दोहरा कर के सीना, (आ) एक परत के फट जाने पर दूसरी परत लगा कर उसे मजबूत करना, (इ) पट्टचीवर, कुक्षि इत्यादि के फट जाने पर उनमे

१३३—चुल्लवग्ग, ५।११।६
१३४—चुल्लवग्ग, ५।११।७
१३५—महावग्ग, ७।१।५
१३६—वही
१३७—वही, ८।१४।२; चुल्लवग्ग ५।१।२
१३८—महावग्ग, ७।१।५

प्योंदे लगा कर उसे मजबूत करना[१३९]। यहा हमने बुद्धघोस की परिभाषाओं का केवल आशय दिया है।

(६) अनुवातकरण[१४०] —मजबूती के लिए बटाइदार सिलाइ, पिट्ठि अनुवात-आरोपण-मत्तेन, बुद्धघोस।

(७) परिभण्डकरण[१४१] —आगे और पीछे की मिलाइ, कुच्छिअनुवातआरोपण मत्तेन, बुद्धघोस।

(८) ओवट्ठेय्यकरण[१४२] —कुछ जगहो मे दोहरी सिलाई—कठिन या दूसरे पट्ट को लेकर अकठिन चीवर मे सीना।

(९) कुसि[१४३] —निरन्तर दो मिले हुए कपडे—आयामतो दीघ च वित्थरतो च अनुवातादीना दीघपट्टान एतो अधिवचन—बुद्धघोस।

(१०) अड्ढकुसी[१४४] —निरन्तर बल आधी दूर तक मिले हुए दो कपडे। अन्तरन्तरारम्स पट्टान नामम्, बुद्धघोस।

(११) मण्डल[१४५] —पाँच टुकडे वाले वस्त्र में एक खड मे गोल सिलाई।

(१२) विवट्ट[१४६] —भीतरी मोड। मण्डलो को एक वर के सीने में इस मोड की जरूरत पडती है।

(१३) अनुवट्ट[१४७] —मोडो मे लगा हुआ अस्तर। उभेसु पस्सेसु द्वे खण्डानि अथवा विवट्टस्स एक पस्सतो द्विन्नपि चतुन्नपि मण्डान एत नामम्, बुद्धघोस।

(१४) जाघेय्यक[१४८] —घुटने पर मिला हुआ विशेष वस्त्र।

(१५) गिवेय्यक[१४९] —कालर। ग्रीवास्थान पर दृढता लाने के सूत से सिला हुआ टुकडा।

(१६) बहन्त[१५०] —केहुनी पर लगे हुए कपडो के टुकडे। अनुवट्टान बहि एव खण्डम्, अथवा सुप्पमाण बहाय उपरि ठपिता उभो अन्तो बहिमुखा तिट्ठन्ति तेस एत नामम्।

१३९—वही

१४०—महावग्ग, ७।१।५, ८।२१।१

१४१—महावग्ग, ७।१।५

१४२—वही

१४३ १५०—महावग्ग, ७।१२।२

रफूकारी

(१) सुत्तलूख[१५१] —सत से ऊंचा नीचा रफू।

(२) एक तरफ का रफू [१५२]—विकण्णो अंचित्वा सिवितानं एको संघाटि-कोणो दीघो होति।

(३) रफू मे ऊँचा नीचा हटाने की क्रिया (विकण्णं उद्धरितुम्)[१५३] इसके लिए बड़े कोने को काट देना पड़ता था।

छीर बांधना और किनारे

(१) छीर निकालना[१५४] (ओकिरति)। छिन्न कोणतो गलति, बुद्धघोस

(२) किनारो पर छीर बांधना [१५५]—अनुवातं परिभण्डं अनुवातञ्चेऽत्र परिभण्डम्। बुद्धघोस।

(३) पत्ता[१५६] —भीतरी वस्त्र में लगी हुई किनारियाँ।

(४) अटठ्पाद[१५७] —एक किस्म की किनारी या झालर।

(५) अंसबद्ध[१५८] —कन्धों पर लगी गोट।

१५१-१५८—महावग्ग, ८।२१।१

चौथा अध्याय

मौर्य, शुंग और शक-सातवाहन काल के वस्त्र

(ई० पू० तीसरी सदी से पहली सदी तक)

चन्द्रगुप्त मौर्य ने ३२० ई० पू० नंदवंश का उन्मीलन कर के मगध साम्राज्य की शासनडोर संभाली। इस युग की राज्यव्यवस्था और सामाजिक दशा का सुन्दर चित्रण चन्द्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है। चंद्रगुप्त के पौत्र अशोक (ई० पु० २७२-२३२) भारतवर्ष के महान् शासकों में अपना ऊँचा स्थान रखते हैं। अशोक बौद्ध थे और बौद्धधर्म के प्रचारार्थ उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं को इस देश के बाहर भेजा। उनके शिलालेख प्रजा को धर्मपालन की शिक्षा देते हैं। अशोक ने अपने साम्राज्य में बहुत से बौद्ध स्तूप भी बनवाये। अशोककालीन मौर्य साम्राज्य का विस्तार तमाम उत्तर भारत, पूर्वी अफगानिस्तान, कश्मीर तथा दक्षिण तक फैला हुआ था। मौर्यों का शासन काल ई० पू० १८४ तक रहा। इसके बाद शुंगों ने और बाद में कण्वों ने राज्य किया। इस युग में सातवाहनों ने जिनके पास कृष्णा गोदावरी के घाटियों में बहुत से मिले थे अपना विस्तार पूना से उज्जैन तक बढाया और उनके वंशवाले करीब ४५० वर्ष तक राज्य करते रहे। ई० पू० ७०-२० के बीच में पंजाब और मथुरा में शक राज्य करते थे।

इस काल की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए जो सामग्री उपलब्ध है उसमें अधिकतर शुंगकाल और बाद के अर्धचित्र हैं। इसीलिए मौर्यकाल की वेश-भूषा के इतिहास के लिए हमें साहित्य का ही सहारा लेना पडता है। इस युग के वस्त्रों के इतिहास के लिए हमें अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इंडिका और महाभारत के सभापर्व के कुछ अंशों से काफी सहायता मिलती है। उपरोक्त ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि जातक कथाओं और विनयपिटक में वर्णित भारतीय वेश-भूषा इस युग में भी चालू रही। लेकिन इस युग की वेश-भूषा में हम कुछ बाहरी पहरावों को भी देखते हैं जिनसे पता चलता है कि भारतीयों का इस युग में विदेशियों से काफी संपर्क रहा। इस युग में ऐसे वस्त्रों के भी उल्लेख आये हैं जो बल्ख, ताजिकिस्तान और चीन से आते थे। इन सब से यह पता चलता है कि भारतीयों का विदेशियों से राजनैतिक और व्यापारिक दोनों संबंध था और इस युग में भारतीय अपने देश की चहारदीवारी से बाहर निकल कर अपनी सभ्यता और व्यापार का प्रसार कर रहे थे।

समूर और चमड़े

कौटिल्य अर्थशास्त्र मे तरह तरह के चमड़ों और समूरों का विशद वर्णन दिया हुआ है। ये समूर और चमड़े हिमालय से आते थे और इतने कीमती समझे जाते थे कि राजभंडार में रत्नों तथा और सुगंधित द्रव्यों के साथ रक्खे जाते थे। निम्नलिखित समूरों और चमड़ों की परिभाषाएँ श्री गणपति शास्त्री द्वारा संपादित अर्थशास्त्र से ली गयी हैं। श्री शामा शास्त्री के अंग्रेजी अनुवाद का भी संकते इसलिए कर दिया गया है कि उनके अनुवाद और श्री गणपति शास्त्री की टीका में काफी अंतर ह ।

(१) कान्तानावक[१] —इस समूर का रंग मोर की गरदन की तरह हरा होता था और यह कान्तानावक प्रदेश से आता था । इस देश की स्थिति का पता नही है ।

(२) प्रैयक[२] —यह समूर सफेद और नीले रंग का होता था और इस पर बुंदकियाँ और धारियां (लेखा विंदुचित्र) पड़ी होती थीं। न० १-२ के चमड़ों की लंबाई आठ अंगुल होती थी।

इन समूरों के नाप से पता चलता है कि शायद वे छोटे जानवरों के समूर रहे हो अथवा एक बड़े चमड़े के आठ अंगुल के बराबर टुकड़े रहे हों।

द्वादशग्राम में तैयार किये हुए चमड़े

(३) बिसी[३] —इसका कोई खास रंग नही होता था और यह बालदार और चित्तीदार होता था। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इस समूर मे बहुत से रंगों के मेल होते थे और इसलिए यह कहना कठिन है कि उसका खास रंग क्या होता था । इस पर रोएं (दुहिलिका या दुहिलितिका) और चित्तियां होती थी।

(४) महाविसी[४] —यह समूर खुरखुरा और प्रायः सफेद होता था ३-४ नं० के चमड़े १२ अंगुल लंबे होते थे और हिमालय पर्वत पर बसे म्लेच्छों के द्वादशग्राम से आते थे।

निम्नलिखि समूर आरोह से आते थे जो टीका के अनुसार हिमालय प्रदेश में स्थित था[५] ।

१—गणपति शास्त्री, अर्थशास्त्र, १, पृ० १६१; शामा शास्त्री, अ० शा० पृ० ९८

आगे हम गणपति शास्त्री द्वारा संपादित अर्थशास्त्र के लए ग० शा० और शामा शास्त्री के अर्थशास्त्र के अनुवाद के लिए शा० शा० का लघुप्रयोग करेंगे ।

२—वही

३—वही

४—वही; शा० शा०; पृ० ८८, फु० नो० ५

५—शा० शा०, पृ० ८८, फु० नो० ६

(५) श्यामिका[६] —यह भूरे रंग का बुंदीदार बिंदुचित्रा समूर था।

(६) कालिका[७] —यह भूरे और फाख़्तई रंग का समूर था।

नं० ५-६ के चमड़े ८ अंगुल लंबे होते थे।

(७) कदली[८] —यह खुराखुरा समूर दो हाथ चौड़ा और २४ अंगुल लंबा होता था। महाभारत के अनुसार[९] कदली मृग के समूर, काले, भूरे और लाल रंग के होते थे। कम्बोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) के निवासी राजसूय यज्ञ के अवसर पर कदली मृगचर्म युधिष्ठिर को भेंट देने लाये थे।

(८) चन्द्रोत्तरा[१०]—इस समूर पर गोल चित्तियां पड़ती थी और इसका नाप कदली जैसा ही होता था।

(९) शाकुला[११]—इस पर गोल चित्तियां (कोठमंडल-चित्रा) पड़ती थीं और इसमें कर्णिकाएं (कृतकर्णिकाजिनचित्रा) भी रहती थी। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसकी चौड़ाई तीन हाथ अथवा आठ अंगुल होती थी।

वाल्हीक देश (आधुनिक बल्ख) के समूर

(१०) सामूर[१२]—इसका रंग काला (अञ्जनवर्ण) होता था और यह ३६ अंगुल चौड़ा होता था। लगता है यह कोई रोएदार समूर रहा होगा, क्योंकि आजदिन भी ऐसे चमड़े को हिंदी में समूर कहते हैं।

(११) चीनासि[१३]—चीन देश से आया हुआ समूर, यह लाली लिये हुए काले अथवा सफेदी मायल काले रंग का होता था।

६—ग० शा० १, पृ० १९१, शा० शा०, पृ० ८८

७—वही

८—ग० शा०, १, पृ० १९१-९२

९—महाभारत, २, ४५, १६

१०—ग० शा०, १, पृ० १९२

११—वही

१२—वही

१३—वही, प्रोफेसर नीलकंठ शास्त्री ने चीन और भारत के प्राचीनतम संबंध में उद्धरणों को इसलिए भली भांति जांचा है क्योंकि इस जांच पड़ताल से अर्थशास्त्र के, जिसमें चीन का उल्लेख है, समय

(१२) सामूली[१४]—इसका समूर गेंहू के रंग का होता था और इसकी लंबाई ३६ अंगुल होती थी।

ऊदबिलाव के चमड़े

(१३) सातीना[१५]—यह काले रंग का होता था।

(१४) नलतूला[१६]—इसका रंग नल नाम की घास के रेशों की तरह होता था।

(१५) वृत्रपुच्छ[१७]—चमड़ा भूरे रंग का होता था और उसमें ऊदबिलाव की गोल पूंछ भी रहती थी।

समूरों के चुनाव मे कौटिल्य की राय है कि मुलायम चिकने और गज्भिन समूर ही सब से अच्छे होते हैं[१८]।

वनों के प्रकरण में[१९] और तरह के साधारण चमड़ों का उल्लेख अर्थशास्त्र में आया है। इनमें गोह, सेरक (एक विशेष प्रकार की गोह), चीता, सूंस, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा, सुरा गाय और गयाल के चमड़े मुख्य थे। इन चमड़ों का वहुत से कामो मे उपयोग होता था।

कंबल और शाल

इस प्रकरण के आरंभ मे भेंड़ के ऊन से बने कंबल और शालों का वर्णन दिया गया है। भेंड़ के ऊन से बने शाल (आविकं) सफेद, गहरे लाल (शुद्धरक्त) या मिश्रित लाल (पक्षरक्त) रंग के होते थे[२०]।

अलंकार और कारीगरी के हिसाब से अर्थशास्त्र मे शालों का अच्छा वर्णन आया है। शालों पर सुईकारी और अमलकारी रीति से अलंकार बनाने के निम्न लिखित तरीके दियें गये हैं—

(१) खचित[२१]—टीका में इस कारीगरी का अर्थ दिया हुआ है—

पर काफी प्रकाश पड़ता है, नीलकंठ शास्त्री, आई० एच० क्यू (१४), १९३८ (पृ० ३८० इत्यादि)। प्रो पलियो प्राचीन चीनी सवूतो के आधार पर (वी० ई० एफ० ई० ओ०, ४, पृ० १४६) इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि चीन नाम प्रथम त्सिन राजवंश से (ई० पू० २४९-२०७) निकला। अर्थशास्त्र के छपने पर विद्वानों में काफी वहस चली और जो विद्वान अर्थशास्त्र को मौर्य काल के बाद रखने के प्रक्ष में थे उन्होने अपने मत के पक्ष में चीनपट्ट का उल्लेख किया है। याकोबी और लाउफर इस सिद्धान्त को नही मानते। प्रो० शास्त्री ने कुछ चीनी प्रमाण दे कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कम से कम ई० पू० दूसरी शताब्दी में चीन और भारत में संवंध था।

१४—१८—ग० शा० १, पृ० १९२

१९—ग० शा० १, पृ० २४८; शा० शा० पृ० १११

२०—ग० शा० १, पृ० १९३, शा० शा० पृ० ८९

२१—वही

सूचिवान कर्म निष्पादितम्—सुइकारी और बुनाई से बना हुआ। इस संबंध में मैं पाठको का ध्यान, कश्मीर की पुरानी शाल बीनने की पद्धति की ओर आकर्षित करना चाहता हू क्योकि अर्थशास्त्र में शाल बिनने की पद्धति और आधुनिक कश्मीर मे शाल बिनने की पद्धति प्राय एक सी है। कश्मीर में शाल बुनने के दो तरीके है तीली या कनीकार और अम्लीकार। तीलीकार में नक्काशिया करघे पर बुन ली जाती है। सुईकारी में बेल बूटिया सूई से काढी जाती है। तात्पर्य यह है कि एक में बेल बूटिया बुनी जाती है और दूसरी में काढी जाती है। लेकिन वास्तव में करघे पर फूल पत्तिया केवल बहुत ही महगे जामेवारो पर बनती है, और उनमें भी थोडी बहुत कढाई सूई की करनी ही पडती है। सत्य तो यह है कि कश्मीरी शाल कनीकार और अम्लीकार के सयोग से बनते है, केवल एक ही पद्धति से बने शाल बहुत कम मिलते है[22]। अर्थशास्त्र में वर्णित खचित शाल में फूल पत्तिया या और अलकार बुने अथवा काढ़े भी जाते थे। इसलिए प्राचीन खचित पद्धति आधुनिक कनीकार और अम्लीकार के मेल की द्योतक थी।

(२) वानचित्र[23]—टीका में इसका अर्थ दिया हुआ है, 'वान कर्मणाकृत वैचित्र्यम्' 'करघे पर ही अलकार बुनना'। इसमें कोई सदेह नही कि वानचित्र आधुनिक तिली या कनीकार पद्धति का ही प्राचीन सस्कृत नाम है।

(३) खडसघात्य[24]—जुडे हुए टुकडो पर बना शाल। टीका में दूसरी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—खचिताना उताना वा वहूना खडाना सघातेन निष्पादितम्—'बिने हुए अथवा काढे हुए टुकडो को जोड कर बना हुआ शाल, खडसघात्य का यह वर्णन कश्मीरी पट्टीदार रुमालो के वर्णन से बहुत मिलता है। इस पद्धति में जब अलकार करघे पर बिनने होते है तब कई १२ से १८ इच चौडे टुकडे ले लिए जाते है और उन पर फूल पत्तियो की नक्काशिया बुन दी जाती है। इन पट्टियो को मनचाहे नाप में काट लेते है और फिर जोड कर एक पूरी नक्काशी का रूप दे देते है और रुमाल के बीच में इसे साट देते है। किनारे की पट्टिया रेशमी होती है जिनमें बहुधा एक ताना पश्मीने का होता है। ये पट्टिया भारी और मजबूत होती है। शाल की रफल बहुत बढिया पश्मीने की होती है। ये शाल अम्लीकार भी होते है। इसके लिए बढिया पश्मीने के टुकडे नक्शे के मुताबिक काट लिये जाते है और फिर इन पर बेल बूटे काढ दिये जाते है। अम्लीकार और तीलीकार शालो में इतनी समानता होती है कि इनमें से एक दूसरे को अलग करना कठिन होता है[25]।

(४) ततुविच्छिन्न[26]—टीकाकार ने इसकी परिभाषा दी है—अनुतविसृष्टै ततुभि

२२—जाज वाट, इडियन आर्ट एट देहली, १९०३, पृ० ३४४, कलकत्ता, १९०२
२३ २४—गणपति शास्त्री, वही, १, पृ० १९३, शा० ना० पृ० ८९
२५—जाज वाट, वही, पृ० ३४४-४५

मध्ये कृतदिच्छेद्यं जालकोपयोगि च—'बिना बुने किनारे को बांध कर जाली बनाना।' लगता है वहां शाल के जालीदार झालर की ओर संकेत है। जाली अनबुने किनारे को बांध कर बनायी जाती है।

दस तरह के ऊनी कपड़े

इनमें विशेषकर पशुओं के बिछाने के आस्तरणों का उल्लेख है। कंबल, कैचलक, वारबाण भी ऊनी होते थे।

१—कंबल[२७]—कंबल अथवा और तरह के ऊनी कपड़ों के लिए एक साधारण शब्द।

२—कैचलक[२८]—अर्थशास्त्र की टीका में इसे कुचेलक भी पढ़ा गया है। श्री शामा शास्त्री ने कौचपक पाठ ठीक माना है। उनके अनुसार यह वस्त्र ग्वाले का कंबल था। शायद इसकी घोघी बना कर वे पहनते थे। गणपति शास्त्री की टीका में इसका अर्थ वन्य शिरस्त्राण अर्थात् जंगलियों के सिर ढाकने का वस्त्र किया है।

३—कलमितिका[२९]—इस शब्द के पाठभेद कुलमितिका और कथमितिका भी हैं। गणपति शास्त्री इसका अर्थ गजास्तरण करते हैं। पर इस अर्थ तक वे कैसे पहुंचे यह कहना कठिन है। शायद कुथं और कुलं या कलं में समानता मान लेने से यह भ्रम हुआ हो। अगर यह अर्थ ठीक है तो क(कु)लमितिका का शुद्ध पाठ कुथं होना चाहिए। इस दृष्टि से शामा शास्त्री का दिया हुआ कथमितिका शुद्ध पाठ के बहुत पास है। शायद ठीक पाठ कुथमितिका था जिसके अर्थ होते हैं ठीक नाप वाला गजास्तरण। लेकिन अगर कलं-कुलं पाठ ही ठीक मान लिया जाय तो इस शब्द की समानता फारसी कुलाह से की जा सकती है जिसके अर्थ टोपी होते हैं और इसी अर्थ में शामा शास्त्री द्वारा उल्लिखित टीकाकार ने इस शब्द के अर्थ किये हैं।

४—सौमितिका[३०]—शामा शास्त्री वाली टीका ने इसे बैल की पीठ पर बिछाने वाला एक आस्तरण माना है, लेकिन गणपति शास्त्री की टीका मे इसका अर्थ दिया है 'कृष्णवर्णा गजपर्याणोपर्यास्तरणम्' अर्थात हाथी के हौदे पर बिछाने वाला आस्तरण।

५—तुरगास्तरण[३१]—घोड़े की जीन पर बिछाने वाला आस्तरण।

६—वर्णक[३२]—शामा शास्त्री की टीका में इस शब्द का अर्थ रंगीन कंबल दिया हुआ है।

२६-२८—गणपति शास्त्री, वही, १, पृ० १९३

२९—ग० शा०, १, पृ० १९३; शा० शा० पृ० ८५, फु० नो० ५

३०—शा० शा०, पृ० ८६, फु० नो० ६; ग० शा०, १, पृ० १९३

३१—वही, फु० नो० ७

३२—वही, फु० नो० ८

७—नलिच्छक[३३]—शामा शास्त्री की टीका में इसका अर्थ कंबल या पलगपोश दिया हुआ है।

८—वारवाण[३४]—शामा शास्त्री की टीका में इसका अर्थ कोट दिया हुआ है।

९—परिस्तोम[३५]—शामा शास्त्री की टीका में इसका अर्थ एक बडा कंबल है। गणपति शास्त्री की टीका में इस शब्द का विस्तारपूर्वक अर्थ दिया हुआ है। 'कंबलभेदो विस्तारचित्र यो विस्तृतवदवभासते निर्माणवैचित्र्याद् स इति व्याचक्षते, कुथ इति त्वेके' 'नक्काशीदार बडा कंबल, निर्माण वैचित्र्य से बडा लगने वाला कंबल, कोई इसे कुथ भी कहता है।' लगता है कि परिस्तोम का व्यवहार झूल के लिए होता था।

(१०) समतभद्रक[३६]—शामा शास्त्री की टीका के अनुसार यह हाथी के पीठ पर डाले जाने वाला कोई आस्तरण विशेष था। गणपति शास्त्री अपनी टीका में इस शब्द का अर्थ करते है समतभद्रक सन्नाहपट्ट, गजादिघनत्राण इत्यपरे—'समतभद्र रुईदार बख्तर है, दूसरों के अनुसार हाथी की जांघों की रक्षा के लिए एक विशेष वस्त्र'।

उपरोक्त दस तरह के आस्तरणो को आविक कहा गया है जिससे पता चलता है कि वे भेड के ऊन से बनते थे। कौटिल्य के अनुसार अच्छे कंबल चिकने सूक्ष्म और मुलायम होते थे[३७]।

नैपाल देश में बने ऊनी कपडे[३८] (नैपालकम्)

(१) भिङ्गिसी—यह कंबल आठ टुकडों को मिलाकर बनता था (अष्टप्लोति सघात्या)। इसका रंग काला होता था और यह बरसाती (वर्षवारण) की तरह काम देता था।

(२) अपसारक—गणपति शास्त्री की टीका में इसे काण्डपट कहा गया है जिससे पता चलता है कि आधुनिक पट्टी की तरह यह कोई ऊनी कपडा रहा हो।

जंगली जानवरों के बालो से बने हुए कपडे[३९]—यहां पर मृग शब्द से ठीक ठीक क्या तात्पर्य है यह नहीं कहा जा सकता। क्या इसका तात्पर्य हरिन के बालो अथवा ऐसे ही

३३—वही, पृ० नो० ९
३४—वही, पृ० नो० १०
३५—वही, पृ० नो० ११
३६—वही, पृ० नो० १२
३७—ग० शा०, १, पृ० १६२
३८—शा० शा० पृ० ९०; ग० शा० १, पृ० १६३
३९—शा० शा० पृ० ९०, ग० शा० १, पृ० १६४

और किसी जंगली जानवरों के बालों से है? जो भी हो इतना तो निश्चित सा है कि जंगली पशुओं के बाल से अब ऊनी कपड़े नही बनते ।

पाजामा, चादर, गद्दे इत्यादि

(१) संपुटिका[४०]—गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसके अर्थ होते हैं:—संपुटिका जंघात्राणां सुक्थणाभिधानमिति क्वचिट्टीकादर्शे लिखितं, सन्थनमित्यन्यत्र लिखितं दृष्यते—'संपुटक जंघों की रक्षा के लिए एक वस्त्र विशेष होता था, कोई कोई टीकाकार इसे सुथना या संथन मानते हैं।' यह ध्यान देने योग्य बात है कि पाजामे के लिए आज दिन भी सुथना (संस्कृत, सूत्रनद्ध) शब्द का प्रयोग होता है ।

(२) चतुरश्रिका[४१]—गणपति शास्त्री की टीका इसका अर्थ देती है—चतुरश्रिका दशारहिता नवांगुलचिन्हित कोणा—बिना किनारे वाली चादर जिसमें नौ अंगुल नाप के कोनों पर काम किया होता था ।

(३) लंबरा[४२]—एक विशेष प्रकार की चादर (प्रच्छदपट विशेषः) ।

(४) कटवानक[४३]—गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसकी व्याख्या है—कटवानकं स एवं स्थूलसूत्रो भाष्यकं तद्देशीयानां प्रसिद्ध इति स्वामी—'कटवानक मोटे सूत से बनी एक चादर है जिसे देशी भाषा में भाष्यक कहते हैं, ऐसा स्वामी नाम के टीकाकार का कथन है' ।

(५) प्रावरक[४४]—गणपति शास्त्री की टीका में इस शब्द की व्याख्या है—पूर्वोक्त एवान्यतरतो दशो रोमावर्तकइति तद्देश प्रसिद्ध इति स्वामी, 'पूर्वोक्त तरह की शायद किनारे वाली चादर, 'स्वामी का कथन है कि देशी मे इसे रोमावर्तक कहते थे।'

(६) सत्तलिका[४५]—शामा शास्त्री इसका अर्थ कालीन करते है। गणपति शास्त्री के अनुसार इसका अर्थ—तूलिकाख्य आस्तरण विशेषश्च—अर्थात् रुईदार गद्दा है।

दुकूल, क्षौम, पत्रोर्ण, कौशेय तथा सूती कपड़े

दुकूल वस्त्र—दुकूल एकजगह वंग देश में पैदा हुई रुई के लिए व्यवहार में आया है[४६] गो कि और जगह इसका अर्थ दुकूल वृक्ष की छालों के रेशे से बना वस्त्र है । अर्थशास्त्र से हमें दुकूल के बारे मे निम्नलिखित बातों का पता चलता है[४७] ।

४०—ग० शा०, १, पृ० १९४

४१-४५—ग० शा०, १, पृ० १९४

४६—आचारांग सूत्र, १, ७, ५, १—टीकाकार कहता है गौडविषय विशिष्टकार्पासिक

४७—ग० शा०, १, पृ० १९४

दुकूल से कपडा बगाल मे बनता था (वाङ्गक)। यह वस्त्र सफेद और मुलायम होता था। पौंड्रदेश[४८] में बने दुकूल वस्त्र नीले और चिकने होते थे और सुवर्णकुड्या[४९] में बने दुकूल ललाई लिए होते थे। निम्नलिखित तरीको से दुकूल बिना जाता था—

१ मणिस्निग्धोदकवान—पहले सूत में (साधनद्रव्य) नमी देकर फिर उसपर घोटे (?) से पालिश करते थे और इसके बाद बुनते थे।

२ चतुरस्रकवान—इसकी बुनावट बराबर होती और कपड़ा बिना किसी रग के होता था।

३ व्यामिश्रवान—सूत और रेशम मिलाकर बुना दुकूल। इस शब्द की दूसरी व्याख्या के अनुसार यह कपडा रग बिरगे सूत से बुना जाता था (वर्णान्तरासंसृष्ट)।

बुनावट के अनुसार कपडों के निम्नलिखित भेद होते थे—

(१) एकांशुक—गणपति शास्त्री के अनुसार इसके ताने बाने मे एक तार लगता था।

(२) अध्यर्धांशुक—इसमें ताना एक तार का होता था और बाना दो तारो का। बिनावट उलटी भी जा सकती थी।

(३) द्व्यंशुक—इसमें ताना बाना दो तार के होते थे (द्विगुणतन्यते द्विगुणमूयते)।

(४) त्र्यंशुक—ताने बाने में तीन तार लगते थे।

क्षौम[५०]—काशी और पुड्र क्षौम के लिए प्रसिद्ध थे। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार दुकूल की तरह क्षौम की किस्में होती थी पर टीकाकार की यह बात ठीक नही है कि क्षौम दुकूल का ही एक बहुत घटिया रूप था।

पत्रोर्ण[५१]—पत्रोर्ण से बने वस्त्रो के नाम भिन्न भिन्न देशों के नाम पर जहा वे बनते थे अवलंबित है। मगध में बना कपडा मागधिका पुड्र में बना पौंडरीक और सुवर्णकुड्या में बना सौवर्णकुड्यका कहलाता था। पत्रोर्ण नाग, लिकुच, वकुल और वट वृक्षो की छालो से निकले रेशे से बनता था। नाग वृक्ष से बने पत्रोर्ण का कपडा पीला होता था, लकुच का गेहुए रंग का, बकुल का सफेद रग का तथा दूसरे वृक्षो के रेशो से बना कपडा मक्खन के रग का होता था। इन सब में सुवर्णकुड्या में बना पत्रोर्ण सब से अधिक अच्छा होता था।

रेशमी कपडे[५२]—अर्थशास्त्र में दो तरह के रेशमी कपडो का वर्णन है यथा—

४८—आधुनिक महास्थान से प्राचीन पौंड्रवर्धन की समानता मानी जाती है एपि० इंडि० २१, पृ० ८८

४९—सुवर्णकुड्या की पहचान सिल्वा लेवी चीनी किन-लिन से करते है जो क्वुज में दो हजार ली दूरी पर एक खाडी पर स्थित था। इस तरह यह देश मलयद्वीप पुंज में पडता है, एतुद आशियातीक, भा० २, पृ० ३६।

५०-५२—अर्थ० शा०, १, पृ० १९५

१—कौशेय—टीका के अनुसार कोशकार देश में पैदा हुए रेशम से बना वस्त्र।

२—चीनपट्ट—चीन देश में बना रेशमी कपड़ा। टीका के अनुसार रेशमी कपड़ों के रंग पत्रोर्ण से बने कपड़ों के रंग जैसे होते थे।

सूती वस्त्र५६—अर्थशास्त्र में निम्नलिखित प्रकार के सूती वस्त्रों का उल्लेख है। इन सूती कपड़ों के नाम भिन्न भिन्न देशों के नाम पर जहां वे बुने जाते थे पड़े।

(१) माधुर—टीका का कहना है कि यह कपड़ा पांड्यों की राजधानी मधुरा (आधुनिक मदुरा) में बनता था।

(२) आपरांतक—आधुनिक कोंकण का बना कपड़ा।

(३) कलिंगक—कलिंग देश में बना कपड़ा। तामिल साहित्य से भी पता चलता है कि कलिंग के नाग बुनकर बहुत अच्छा कपड़ा बनाते थे।

(४) काशिक—काशि जनपद में बना सूती कपड़ा। जातकों और बौद्ध साहित्य में काशिकवस्त्र के बहुत से उल्लेख आये हैं लेकिन प्रायः सब अनुवादकों ने इसे रेशमी वस्त्र माना है। अर्थशास्त्र से यह बात निश्चित हो जाती है कि काशी अपने क्षौम और सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थी न कि रेशमी वस्त्रों के लिए।

(५) वांगक—पूर्वी बंगाल में बना सूती कपड़ा। अर्थशास्त्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पूर्वी बंगाल में दुकूल और कपास दोनों से कपड़े बनते थे।

(६) वात्सक—वत्सदेश (इलाहाबाद के आसपास) का बना सूती कपड़ा।

(७) माहिषक५४—महिषदेश का बना सूती कपड़ा। टीकाकार के अनुसार माहिषक कुंतल देश की राजधानी थी।

वस्त्रों के संबंध में कोषाध्यक्ष के कर्तव्य तथा राजकीय कारखाने

सब तरह के चमड़ों, समूरों, ऊनी, सूती, रेशमी और रेशों से बने कपड़ों के वर्णन के बाद कौटिल्य कोषाध्यक्ष के, जिसके अधिकार में कपड़े रहते थे, कर्तव्यों पर प्रकाश डालता है। कौटिल्य के अनुसार कोषाध्यक्ष को भिन्न भिन्न ऋतुओं और अवसरों पर पहने जाने वाले (देशकालपरिभोग) कपड़ों का तथा कीड़े मकोड़ों और चूहों से उनकी रक्षा का ज्ञान होना आवश्यक था।५५

५३—वही
५४—वही, नर्मदा के किनारे महेसर से माहिषक की पहचान की जाती है।
५५—अ० शा०, १, पृ० १६६

हम ऊपर देख आये हैं कि इस देश के भिन्न भिन्न भागो मे कौन कौन से कपडे मौर्य काल मे बनते थे । इन कपडो के सिवाय राज्य का निज का बुनने का कारखाना सूत्राध्यक्ष के जिम्मे होता था । वह कारखाने मे अच्छे सूत कातने वाले, वर्म बनाने वाले, कपडे और रस्सियां बनाने वाले कारीगर रखता था । विधवाएँ, अपाहिज, लडकियां, भिखमगिने, वृद्धा वेश्याए, जुर्माना अदा करने के लिए काम करती हुई स्त्रियां, वृद्धा राजपरिचारिकाएँ, तथा देवदासियां ऊन, वल्क, कपास, तूल, सन और क्षौम कातने के लिए रक्खी जाती थी[५६]।

कातने वालो का पारिश्रमिक उनके सूत की अच्छाई पर निर्भर होता था। जो कारीगर महीन सूत अच्छी तायदाद में कात सकते थे उन्हें तेल, हर्रे की टिकिया और अजन आख और दिमाग को तर रखने के लिए तथा दूसरो में काम करने के उत्साह को बढाने के लिए दी जाती थी । छुट्टी के दिनो मे काम करने वाले कतको को विशेष पारिश्रमिक मिलता था साथ ही साथ अच्छे साधन होते हुए भी उपयुक्त परिमाण में सूत न कातने वाले को पारिश्रमिक काट कर दड भी दिया जाता था[५७]।

राज्य के कारखाने बुनकरो के अलावा कपडा बुनने का काम और दूसरे बुनकरों को भी ठीके पर (कृतकर्मप्रमाण) नियत पारिश्रमिक (कालवेतन) और कारीगरी के अनुसार (फलनिष्पत्तिभि) दिया जाता था । कारीगरो के हस्तलाघव से अवगत होने के लिए अर्थशास्त्र मे उनसे मित्रता बढाने का भी आदेश है[५८] ।

सुगंधित द्रव्य, मालाए तथा और बहुत से उपहार उत्साह बढाने के लिए क्षौम, दुकूल, रेशम (कृमितान) पशमीना (राकव) और सूती कपडे बिनने वालो को दे दिये जाते थे[५९] ।

बुनाई के कारखाने में कपडे, आस्तरण तथा परदे (प्रावरण) भी बनते थे[६०] ।

सूती जिरह बख्तर (कंकट) बनाने का काम चतुर कारीगरो के सुपुर्द किया जाता था[६१]। जो जन घर से बाहर निकलने मे असमर्थ होते थे यथा प्रोषित विधवा (जिस स्त्री का

५६—म० शा०, १, पृ० २७६, शा० शा० पृ० १३६

५७—म० शा०, १, पृ० २७९, शा० गा० पृ० १३६

५८—वही

५९—म० शा०, १, पृ० २८०, शा० शा०, पृ० १३७

६०—वही

६१—वही

पति विदेश गया हो), अपाहिज तथा वे लड़कियां जिन्हें स्वयं अपनी जीविका उपार्जित करनी पड़ती थी उन्हें कताई का काम उनके घर पर ही देने का प्रबंध था[६२]।

जो स्त्रियां प्रातःकाल सूत्रशाला में सूत लेकर हाजिर होतीं थीं उन्हें कताई की मजदूरी मिल जाती थी। इस आदान-प्रदान को भांडवेतनविनिमय कहते थे। सूत्रशाला मे, उस समय केवल इतनी ही रोशनी होती थी जिससे सूत्राध्यक्ष सूत देख सके। स्त्रियों के देखने या बात करने पर सूत्राध्यक्ष दंड का अधिकारी होता था। काम की मजदूरी न देने पर अथवा अधवने काम की मजदूरी देने पर भी सूत्राध्यक्ष दंड का भागी होता था।[६३] कारखाने म काम न करने वालों को गहरा दंड दिया जाता था। जो स्त्रियाँ मजदूरी लेकर भी काम नही करती थी उनके अँगूठे काट दिये जाते थे। माल-मसाला लेकर भाग जाने वालों को भी यही दंड मिलता था[६४]। अपराध के छुटाई वड़ाई के अनुपात में वुनकरों की मजदूरी जुरमाने के रूप में काट ली जाती थी[६५]।

शुल्काध्यक्ष के कर्त्तव्यों के वर्णन के प्रसंग में हमे उन वस्त्रो का उल्लेख मिलता है जिन पर मौर्ययुग में चुंगी लगती थी। ये वस्त्र क्षौम, दुकूल और रेशम के वने होते थे। इनके सिवाय दुकूल, क्षौम, आस्तरण, प्रावरण, रेशम (कृमिजात), ऊनी कवल और पश्मीना वनाने के साधनों पर भी उनके मूल्य की १/१० से लेकर १/१५ तक चुंगी लगती थी[६६]।

वस्त्र, सूत, वल्कल, चमड़ा और कपास पर चुंगी उनके मूल्य की १/२० से १/२५ तक होती थी[६७]।

कपड़े रंगने के लिए रंग किंशुक, कुसुंभ और कुंकुम से वनते थे। गणपति शास्त्री की टीका में इन पुष्पों को वस्त्रादिरंजनसाधन कहा है।[६८]

विदेशों से आने वाले कपड़े

हम ऊपर कह आए है कि मौर्य काल में भारतवर्ष में वस्त्रों के नाम उनके प्राप्ति स्थान पर भी पड़ जाते थे। पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे इस वात का कम उल्लेख है कि भारतवर्ष की आधुनिक सीमा के वाहर से यहाँ कौन से कपड़े आते थे। महाभारत के सभा पर्व से इस प्रश्न पर काफी प्रकाश पड़ता है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर

६२—वही

६३—शा० शा० १, पृ० २८०-८१

६४-६५—ग० शा० १, पृ० २८१; शा० शा०, पृ० १३६

६६-६७—ग० शा० १, पृ० २७६-२७७, शा० शा० पृ० १३५

६८—ग० शा० १, पृ० २४७

भारतवर्ष के अनेक गणतत्र और राजे तथा उसके सीमा पर वसने वाली जातिया उपहार लेकर आयी। इन उपायनो में उन प्रदेशो के वने वस्त्र भी थे जिनसे पता चलता है कि ई० पू० भारत मे विदेशो से अच्छे से अच्छे कपडे आते थे और भारत, चीन और अफगानिस्तान का व्यापारिक सवध वहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। अब हमें देखना चाहिए कि किन किन देशो से यहा वस्त्र आते थे।

कबोज देश के कपडे

प्राचीन कबोज की पहचान सोवियट रूस में स्थित ताजिकिस्तान से की जाती है। यहा से भेड के ऊन और लोमडी के रोए मे वने और सुनहले काम किये हुए वस्त्र (ऐंडाश्चैलान् वार्षदशान्जातारूपपरिष्कृतान्)[६९], ऊनी चादरें और चमडे (प्रावाराजिनमुख्याश्च)[७०] वेशकीमती दुशाले (पराध्यानिपिकवलान्)[७१] और कदलीमृग की खालें[७२] (कदली मृगमोकानि), राजसूय यज्ञ में आयी। कदलीमृग का उल्लेख कौटिल्य ने किया है।

परिसिंधु देश के कपडे—वलूचिस्तान के वाशिंदे राजसूय में अपने देश से कवल और बकरे और भेडो की खालें लाये[७३]।

वाह्लीक और चीन के बने वस्त्र[७४]

ये वस्त्र ठीक नाप के, खुशनुमा रग वाले और स्पर्श करने में मुलायम होते थे (प्रमाण रागस्पर्शाढ्य)। उपरोक्त देशो से भेड के ऊन, पशम (राकव), रेशम (कीटज) और पट्ट (पट्टज) के वने कपडे भी आये। यहा राकव शब्द की व्याख्या आवश्यक है। कोशो में[७५] रकु का अर्थ एक पशु विशेष मिलता है। लेकिन यह पशु कहा होता था इस सवध की जानकारी कोशकारो को नही थी। खोज करने से पता चलता है 'रकु' पामीर पर रहने वाले रग नामके बकरे का सस्कृत रूप है। इसके पशम से बहुत ही अच्छी चादरे वनती है[७६]। महाभारत[७७] के एक और उल्लेख से पता चलता है रकु के पशम से नमदे भी (गवबट) बनते थे।

चीन के बने रेशमी कपडे

इस काल में भारतीय चीनी रेशम के वस्त्र से भी अवगत हो चुके थे। इतने प्राचीन

६९-७०—सभापर्व, ४७, ३
७१-७२—सभापर्व, ४५, १९
७३—सभापर्व, ४७, ११
७४—सभापर्व, ४७, २२
७५—अमरकोश, २, ६, १११
७६—वुड, ए जर्नी टु दी सोर्स ऑफ आक्सस, इट्रोडक्शन, पृ० ५७, न्यू एडिशन १८७२
७७—महाभारत, ३, २२५, ६

काल में चीन के रेशमी कपड़े भारत में आने से हमें आश्चर्य न होना चाहिए। मध्य एशिया के प्राचीन पथ पर बने हुए एक चीनी रक्षागृह से मिला हुआ एक रेशमी थान जिस पर ई० पू० पहली शताब्दी की ब्राह्मी में एक पुरजा लगा हुआ था इस बात का द्योतक है कि चीनी रेशमी कपड़े की खोज में भारतीय व्यापारी चीन की सीमा तक इतने प्राचीन काल मे पहुंच चुके थे[७८]।

मध्य एशिया और अफगानिस्तान के दूसरे कपड़े

उपरोक्त देशों से उपायनरूप मे नमदे (कुट्टीकृतं)[७९],कमल के रंग के हजारो ऊनी कपड़े, मुलायम रेशमी कपड़े तथा मेमनों की खाले भी आयीं। आज दिन भी पूर्वी अफगानिस्तान की मेमनों की खालें मशहूर है। चीनी चमड़े और समूरों की ख्याति ईसा की पहिली शताब्दी तक थी। पेरिप्लस[८०] के अनुसार सिंध नदीपर बार्ब्रिकन नाम के बंदरगाह से चीनी चमड़े और समूर बाहर भेजे जाते थे। प्लिनी[८१] के अनुसार चीन के रंगीन चमड़े काफी कीमती होते थे और आराइश के काम में इनका काफी उपयोग होता था। कंबलो का रंग कमल जैसा कहने से प्रतीत होता है कि लेखक का संकेत शायद ऊपरी स्वात के बने कंबलों से है। महावणिज-जातक में[८२] उड्डीयान के बने कंबल काफी कीमती माने गये हैं। आज दिन भी तोरवाल में ठोक कर बिने चटक रंग कंबल सीमाप्रान्त और पंजाब मे स्वाती कंबल नाम से मशहूर हैं।[८३]

वंग (पूर्वी बङ्गाल), कलिंग (आधुनिक ओड़ीसा में वैतरणी नदी के दक्षिण विजगापतन तक फैला हुआ प्रदेश), ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) और पुंड्र (मालदह, पुर्निया, दिनाजपुर और राजशाही के कुछ भाग) के बने कपड़े।

दुकूल[८४]—शायद रोमन लेखकों का बाइसास ही दुकूल था[८५]।

कौशिक[८६]—ऐसा पता चलता है कि बहुत प्राचीन काल में भी बंगाल मे रेशम पैदा होने लग गया था। रामायण[८७] (कश्मीरी पाठ) में कोशकार देश का उल्लेख है। टीकाकार

७८—सर ऑरल स्टाइन, एशिया मेजर, हर्थ एनिवर्सरी वॉलुम १९२३, पृ० ३६७-३७२

७९—सभापर्व, ४७, २३

८०—शोफ, दि पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी, ३९, ६

८१—प्लिनी, नेचुरल हिस्ट्री, १२, ३१; ३४, १४५

८२—जातक (४९३), ४, पृ० ३५२

८३—स्टाइन, ऑन अलक्जेंडर्स ट्रेक ट इंडस, पृ० ८९

८४—महाभारत, २।४८।१७

८५—वार्मिगटन, कामर्स बिटवीन इंडिया एंड रोमन एंपायर, पृ० २१२

८६—महाभारत, २।४८।१७

८७—सिल्वां लेवी, जूर्नाल असिआतीक, जनवरी-फरवरी, १९१८, पृ० २१२

राम के मत से इस देश का नाम इसलिए पड़ा कि वहा रेशम के कोश काफी तादाद में पैदा होते थे। किष्किंधाकांड के बंगाली पाठ के अनुसार कोशकार देश लौहित्य नदी (ब्रह्मपुत्र) के बाद पड़ता है और इसलिए इस बात की पूरी संभावना है कि कोशकार देश कही पूर्वी बंगाल या आसाम में था।

पत्रोर्ण[८८]—कोश में इस शब्द का अर्थ रेशमी या सूती कपड़ा दिया हुआ है। अगर पत्रोर्ण का अर्थ सूती कपड़ा ठीक है तो पेरिप्लस का यह कथन ठीक है कि पहली सदी में गैंजेटिक नाम की सब से अच्छी मलमल ढाका के आसपास बनती थी[८९]। पर इसमें शक है कि पत्रोर्ण सूती कपड़ा था।

कलिंग देश के नाग बुनकर अपने बढ़िया कपड़ों के लिए प्रसिद्ध थे। उनकी ख्याति इतनी बढ़ी हुई थी कि तामिल में कलिंग शब्द कपड़े का पर्यायवाची बन गया[९०]।

प्रावर[९१]—इस शब्द का प्रयोग दुपट्टे अथवा चादर के अर्थ में होता था। सांची के एक लेख[९२] से ऐसा पता चलता है कि दुपट्टे बेचने वालों का (पारिवारिक) अपना स्वतंत्र व्यवसाय होता था।

यूनानी लेखकों के अनुसार भारतीय वेश-भूषा

हम अनेक प्रकार के वस्त्रों का वर्णन अर्थशास्त्र के आधार पर कर आये हैं, पर उस समय की वेश-भूषा क्या थी इसका उल्लेख हमें यूनानी ऐतिहासिकों से मिलता है। एरियन[९३] का कहना है कि भारतवासी सूती कपड़े पहनते थे और उनकी धोती आधे पैर तक पहुंचती थी। उनके सिर पर पड़ी चादर उनके कंधों को ढकती थी। स्त्राबो[९४] के अनुसार भारतीय क्षौम और कपास के बने सफेद कपड़े पहनते थे। भारतीयों के वस्त्र हमेशा सादे नहीं होते थे इसका पता स्त्राबो के एक दूसरे उल्लेख से, जिसमें कहा गया है कि भारतीयों के वस्त्र सुनहरे काम वाले और रत्नजटित भी होते थे, लगता है।

८८—वही,

८९—मोक, वही, पृ० ८६

९०—कनकसभाई, दि तामिल्स् एटीन हंड्रेड इयर्स एगो, पृ० ८५

९१—महाभारत, २।४८।१७

९२—मार्शल, सांची, १, पृ० ३१२

९३—इंडिका, १६

९४—जिओग्राफी, १५।१।७१

पाँचवाँ अध्याय

शुंगयुग की वेश-भूषा

(ई० पू० दूसरी सदी)

मौर्ययुग के अंत और शुगयुग के आरंभिक वेश-विन्यास पर परखम और बरोदा (मथुरा म्यूजियम) से मिली यक्षमूर्तियों और दीदरगंज की यक्षिणी मूर्ति से काफी प्रकाश पड़ता है। इन मूर्तियो का समय विवादास्पद है पर ऐसा माना जाता है कि शायद ये मूर्तियां मौर्य युग के अंतिम चरण अथवा शुग युग के आरंभ में बनी हों। ई० पू० पहली दूसरी शताब्दियों की वेश-भूषा पर पूरा प्रकाश भरहुत और सांची के अर्धचित्रों से पड़ता है।

परखम की यक्षमूर्ति (आ० १३)[१] एक धोती पहने है जो आगे चुन्नटदार है। धोती कमरबंद से बंधी है जिसके दोनों छोर घुटनों पर लटकते दिखलाये गये है। एक दुपट्टा छाती पर बंधा है जिसका फंदेदार छोर पेट पर लटक रहा है। बड़ोदे की यक्ष मूर्ति भी ऐसा ही दुपट्टा पहने दिखलायी गयी है[२]।

इंडियन म्यूजियम की यक्षमूर्तियां जिन्हें श्री मजूमदार ने[३] मौर्यकाल की ठहराया है परखम यक्ष जैसा ही कपड़ा पहने है। धोती फदेदार कमरबंद से बंधी है जिसके दो फूंदनेदार छोर सामने लटक रहे हैं। पिछली ओर धोती जमीन तक पहुंचती है लेकिन अगली ओर नंगे पैर दिखलाने के लिए वह जरा उठी हुई दिखलायी गयी है। एक चौड़ा दुपट्टा (वैकक्ष्य) बांए कंधे से हो कर दाहिने चूतर तक पहुंचता है। कंकण के पास यह फंदेदार है और पीछे लहराता हुआ है (आ० १४)।

उपरोक्त यक्ष मूर्तियां पगडी नही पहने हैं लेकिन इसी काल का सारनाथ से मिला एक शिर मुगलों जैसी अटपटी पगड़ी पहने है (आ० १५)[४]।

मौर्य युग के अंतिम युग मे स्त्रियों की वेश-भूषा का पता बेसनगर और दीदारगंज से मिली यक्षिणियो की मूर्तियो से लगता है। दीदारगंज की यक्षी एड़ियों तक पहुंचती एक

१-२—कुमारस्वामी, हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इंडोनेशियन आर्ट, प्ले० ५, १५

३—मजूमदार, ए गाइड टु दि स्कल्पचर्स इन इंडियन म्यूजियम, पृ० ६

४—कुमारस्वामी, वही, प्ले० ६, चि० १८

साडी, जिस पर एक पचलडी करधनी है पहने है। साडी से खोसे हुए पटके का जिसे बौद्ध साहित्य में फासुका कहा गया है, एक छोर फदेदार है। एक बटा हुआ दुपट्टा लटक रहा है (आ० १६)। बेसनगर[5] की यक्षिणीमूर्ति घुटने के जरा नीचे पहुचती हुई साडी और उसके ऊपर एक पचलडी करधनी और फदेदार कमरबद जिसका एक फदा नीचे लटक रहा है, पहने हुए है। साडी में खुसे हुए पटके में चूनन पडी हुई है[6] (आ० १७)।

शुगयुग में पुरुषो की वेश-भूषा

भरहुत (ई० पू० १३५-१५०) के अध चित्रो मे हमे तत्कालीन भारतीय वेश-भूषा का एक अच्छा चित्र मिलता है। आदमी धोती पहनते थे जिसका एक छोर कमर में लपेट लिया जाता था और लाग पीछे खोस ली जाती थी। भरहुत के अर्धचित्रो में धोती, घुटनो के जरा नीचे और पैरों के मध्य भाग तक पहुचती दिखलायी गयी है। धोती बिना किसी अलकार के सादी होती थी। धोती के साथ लोग दुपट्टे, कमरबद, पटके और पगडिया भी पहनते थे। नीचे के विवरणो मे ई० पू० दूसरी शताब्दी मे भारतीयो की वेश-भूषा स्पष्ट हो जायगी—

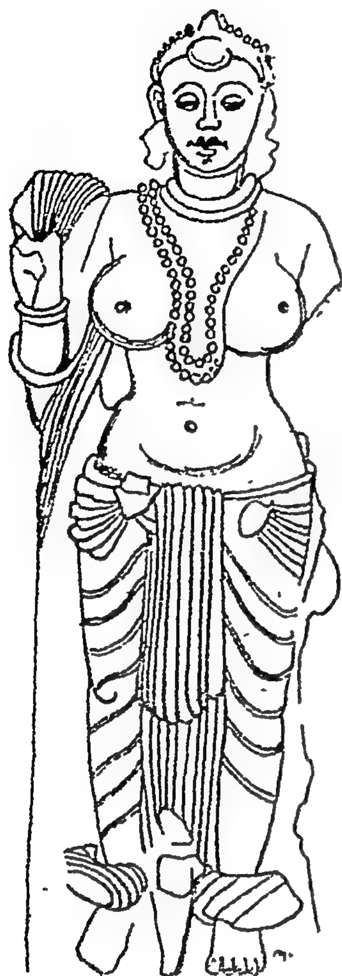
१—कामदार साफा, घुटने के नीचे लटकती हुई चपकी धोती, बटी हुई रस्सियो से बना कमरबद जिसके दोनो ओर लटक रहे है (चुल्लवग मे ऐसे कमरबद को फलाबुक कहा गया है), पटका जो पट्टिया पर सिली गुरियो से बना मालूम पडता है, बदन का ऊपरी भाग नगा है, बायें कन्धे पर पडे हुए दुपट्टे का एक छोर पीछे लटक रहा है[7] (आ० १८)।

२—घुटने की नीचे तक लटकती धोती, सकरमुद्धीदार कमरबद जिसके दोनो छोरो में छीरें है, चूननदार एडियों तक लटकता हुआ पटका, दुपट्टा खिसक कर कमर पर आ गया है[8] (आ० १९)।

३—कामदार पगडी, दुपट्टा, पट्टी का बना कमरबद, पटका (आ० २०)[9]।

४—पगडी, गले में ढीला दुपट्टा जिसके लटकते हुए छोर तिकोने कटे है, कमरबद के दोनो छोर एक बकसुए मे निकलते दिखाये गये[10] (आ० २१)।

५—वही, प्ले० ५, १७
६—वही, प्ले० ३, २
७—कनिघम, भरहुत, प्ले० २२
८—वही, प्ले० २१
९—वही, प्ले० १४
१०—वही, प्ले० २२, २



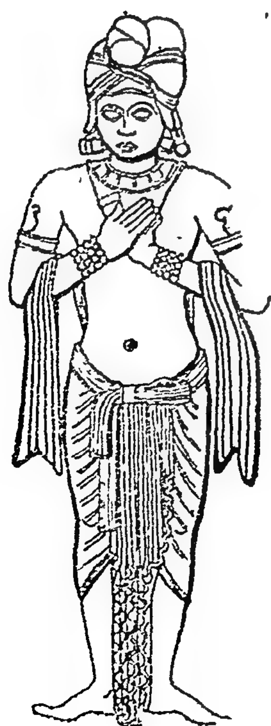
१६



१७



१८

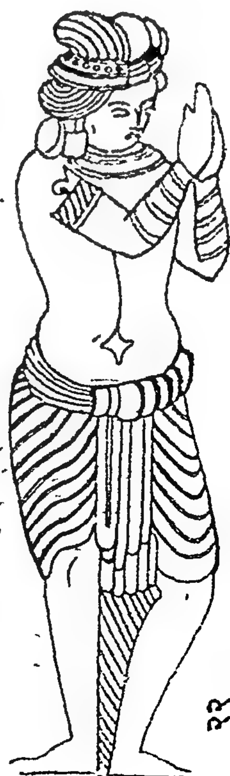




२०



२१



२२

दक्षिण भारत में पुरुषों की वेश-भूषा

ई० पू० दूसरी सदी में दक्षिण भारत के लोगों की वेश-भूषा मध्यभारत वालों जैसी ही थी केवल उसमें कुछ स्थानिक भिन्नताएं अवश्य थीं। नीचे लिखे विवरणों से दक्षिणी पोशाक का पता चल जायगा—

१—अटपटी, पेंचीदार पगडी, घुटने तक पहुंचती चुननदार धोती, कमर फेंटे में लिपटा हुआ पटके का कुछ भाग (आ० २२)[११]।

२—यक्ष (अमरावती), धोती, रस्सी का बना कमरबंद जिसके दोनों छोरों पर फुदने हैं कमरपेटी में लिपटा है[१२]।

शुंगयुग की पगडियां

शुंग युग में पगडियां दो तरह से बांधी जाती थीं। एक में[१३] (आ० २३) बाल का सिर पर जूडा बांध दिया जाता था और पगडी के दो फेंटे मस्तक के ठीक बीच में ले जाकर जूडा ढक दिया जाता था और उसके दोनों छोर खोंस दिये जाते थे। भारी पगडी में पूरा सिर ढक दिया जाता था।

भरहुत के अर्ध चित्रों में हम निम्न लिखित तरह की पगडियां देख सकते हैं

१—लट्टूदार साफा, उसकी ओर पत्तियों का काम, लट्टू में बेल बनी है (आ० २४)[१४]।

२—भरभरा साफा जिसमें पेंची और झालर है (आ० २५)[१५]।

३—लट्टूदार भारी साफा जिसमें शायद झालर लगी थी (आ० २६)[१६]।

४—लट्टू के ऊपर चुनट, पीछे की ओर उभार (आ० २७)[१७]।

५—अटपटा साफा, ऊपर उठती झालर (आ० २८)[१८]।

६—हलका साफा, बायीं ओर की तहें कान तक आ गयी हैं (आ० २९)[१९]।

७—झालरदार सादा साफा[२०]।

११—बर्जेस, बुद्धिस्ट स्तूप ऑफ अमरावती एंड जग्गयपेट, प्लेट० ५३

१२—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन मद्रास म्यूजियम, प्लेट० १८, १

१३—बारुआ भरहुत, प्लेट० १५

१४—वही, प्लेट० ३३, ३

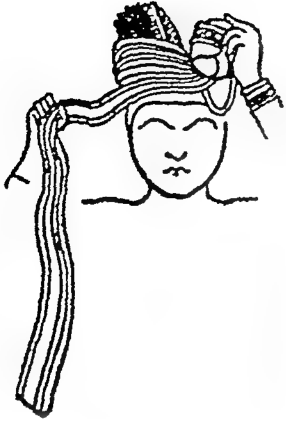
१५—वही, प्लेट० ३३, ४

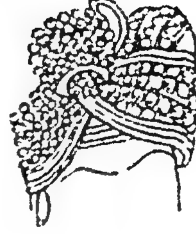
१६—वही, प्लेट० २४

१७—वही, प्लेट० २१

१८—वही, प्लेट० ५७

१९ २०—वही



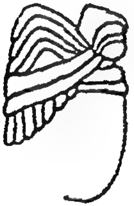
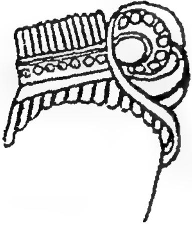

२३ २४ २५ २६ २७







२८ २९ ३० ३१ ३२

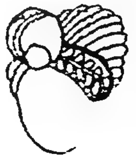






३३ ३४ ३५ ३६ ३७







३८ ३९ ४० ४१ ४२

८—अटपटी लट्टूदार पाग जिसपर चौफुलिया बनी है[२१]।

९—छोटा झालरदार साफा, बायीं कनपटी के ऊपर तीन पेंच (आ० ३०)[२२]।

१०—अटपटी लट्टूदार पगडी (आ० ३१)[२३]।

११—अटपटी पगडी, छोर ऊपर निकला हुआ (आ० ३२)[२४]।

१२—पगडी की झालर कान तक रही है (आ० ३३)[२५]।

१३—पेंचो से सजी चूनरदार पगडी (आ० ३४)[२६]।

१४—कामदार साफा, जिसपर फूल पत्तिया बनी हैं (आ० ३५)[२७]।

१५—कामदार साफे की दूसरी तरह (आ० ३६)[२८]।

१६—आभूषणयुक्त पगडी (आ० ३७)[२९]।

१७—झालरदार पगडी, एक छोर पत्तानुमा है (आ० ३८)[३०]।

१८—लम्बोतरा साफा पीछे गरारीदार अलकार (आ० ३९)[३१]।

१९—सादे साफे पर वृत्ताकार और पुष्पालकार (आ० ४०)[३२]।

२०—पगडी जिसका ऊपरी भाग पान के आकार का है (आ० ४१)[३३]।

२१—साफा जिसके किनारे पर बेल बनी है (आ० ४२)[३४]।

२२—भारी कामदार साफा (आ० ४३)[३५]।

२१—वही, प्ले० ४८
२२-२३—वही, प्ले० ४४
२४—वही, प्ले० ३४
२५—वही, प्ले० २५, ३
२६—वही
२७—वही, २५, १
२८—वही, प्ले० २४, २
२९—वही, प्ले० २१
३०—वही, प्ले० २०
३१—वही, प्ले० १४
३२—वही, प्ले० १३
३३—वही, प्ले० २०
३४—वही, प्ले० ३२, ४
३५—वही, प्ले० २२

२३—एक तरफ उभरा कामदार साफा (आ० ४४)[36]।

२४—चौखूटा साफा जिसके दोनों कोर कान पर आ गये है (आ० ४५)[37]।

शुंगयुग के सिले वस्त्र

यह तो निश्चित है कि शुंगयुग मे सिले कपड़े पहने जाते थे, लेकिन सिले कपडे इस युग के अर्ध चित्रो में कम दिखलाये गये है। इसका यह कारण भी हो सकता है कि सिले कपड़ो से अंग ढक देने से उसकी गठन खूबी से नही दिखलायी जा सकती थी। भरहुत के अर्ध चित्रो मे कोटनुमा वस्त्र दो जगह दिखलाया गया है। एक जगह वटवृक्ष की पूजा करते हुए राजा का अनुचर कोट पहने दिखाया गया है[38]। कोट का छोर गुलाई लिये है और उसका गला, बाहे, मोरिया और किनारे किसी फीते से अलंकृत है। कोट के साथ अनुचर धोती और साफा भी पहने है। एक द्वारपाल जिसकी तुलना डा० बरुआ उत्तरापथ के देवता मिहिर से करते है[39] (आ० ४६) आधी जंघा तक पहुंचता एक पूरी बांह का कोट पहने है। कोट में दो जगह बंद लगे है। गले के बंद मे एकहरी सकरमुद्धी और पेट के बद पर दोहरी सकरमुद्धी लगी है। इसका बाल ललाट पर एक चौड़ी पट्टी से बंधा है। धोती से पटका नीचे लटक रहा है। पैरो मे पूरे बूट है। बायी ओर परतले से एक कटार लटक रही है। कम से कम पोशाक से तो यह द्वारपाल गंधार का निवासी लगता है।

कुछ शुंग कालीन मिट्टी के खिलौनो से यह भी पता चलता है कि उस युग में कोट जैसे कपड़े पहनने की चलन किसी न किसी रूप मे थी। भीटा से मिली एक मिट्टी की मनुष्य मूर्ति (आ० ४७)[40] चुगे की तरह पूरे बाह का एक कोट पहरे है जो सामने से खुला है और जिसमें बांधने के लिए सकरमुद्धी लगी है।

शुंग युग मे कचुक पहनने की भी प्रथा थी। साची के स्तूप न० २ पर एक सिंह से लड़ते हुए सिपाही की आकृति है। यह सिपाही आधे बाह का घुटनो तक लटकता कचुक पहने है जो कमरबंद से बधा है। इसके सिर पर फुलनेदार टोपी और पैरो में बूट है (आ० ४८)[41]। इसी स्तूप के आलबनवाह पर एक मनुष्य चुननदार कचुक पहने दिखाया गया है[42]।

३६—वही, प्ले० २२

३७—वही, प्ले० २०

३८—बरुआ, भरहुत, २, प्ले० २०

३९—वही, प्ले० ६२, ७१

४०—ए० एस० आर०, १९११-१२, पृ० १-७८, प्ले० २३, १९

४१—कुमारस्वामी, वही, प्ले० १४, ५१

४२—मार्शल, साची, भा० ३, प्ले० ७८, १३ बी

स्त्रियों की वेश-भूषा

भरहुत के अर्धचित्रों में स्त्रियाँ पुरुषों की तरह धोती अथवा साड़ी पहने दिखलायी गयी हैं। आधुनिक साड़ी तो एड़ी तक पहुचती है पर भरहुत के अर्धचित्रों में शायद ही कभी वह घुटनों के नीचे पहुचती है, इसमें चुनन भी होती है। साड़ी भारी भरकम करधनी और कमरबंद से बंधी होती है। इस कमरबंद के फुदनेदार किनारे एक ओर लटकते हैं। कमरबंद में खुसे दोनों पैरों के बीच में लटकते पटके पहनने की भी प्रथा थी। पटका साधारणत लहरियादार होता, पर भारी पटका मनके पिरो कर भी बनता था। स्त्रियों के शरीर का ऊपरी भाग खुला हुआ दिखलाया गया है पर यक्षिणी चदा के दाहिने स्तन के नीचे एक मलमली चद्दर की तह के निशान हैं। उनके सिर कामदार ओढनी से ढके होते थे जो कामदार होती थी। स्त्रियां कभी कभी लीलावश पगड़ी भी पहन लेती थीं।

यक्षिणी चदा की वेश-भूषा (आ० ४९)[४३]

चदा की वेश-भूषा में शुग युग की एक सभ्रात नारी की वेश भूषा का पता चलता है। उसकी धोती कमर तक पहुचती है। इस पर खरबुजिया मनकों और चौखूटी तख्तियों से बनी एक सतलड़ी करधनी है। कमरबंद फुल्लों और पजकों से सजा है और इसके किनारों पर दानेदार बेल बनी है। पटका लहरियादार है। उसके शरीर का ऊपरी भाग अनावृत है पर दाहिने स्तन के नीचे की रेखारियां शायद पतले चादर की द्योतक हैं, बाएं कंधे से मोती की बद्धी छाती पर जनेऊ की तरह पड़ी है। गले में छल्डी तोक है जिसकी पहली लड़ में पत्र, अकुश और श्रीवत्स के आकार के टिकरे हैं। दूसरी लड़ गोल मनकों की है। और लड़े गोल तथा लजोनरे मनकों से बनी हैं। गले में स्तनों के बीच लटकती हुई टिकरेदार मोहनमाला है। कानों में वप्रकुडल (घुमावदार) हैं तथा माग में सीसमाग। सिर एक झीनी ओढनी से, जिसके दोनों पल्ले एक दूसरे से पार करके हैं, ढका है। इस ओढनी में चौड़े किनारे हैं जिन पर चौफुल्लिया और सहस्रमा की बेलें बनी हैं। हाथों में कड़े और चूड़ियां हैं। चोटी बेलदार फीते से गुथी है।

यक्षी (आ० ५०)[४४]। इस यक्षी के आकार की कल्पना भी शुग कालीन नारी मूर्ति को लेकर हुई है। यक्षी के कमर में एक पतली साड़ी है जिसपर मुद्धीदार कमरबद, करधनी और मोगपट्ट है। कमरबद फुल्ले और पजकों से सजा है और उसके किनारे बुदकीदार हैं। उसके छोर पर चौड़ी छोर है। चौलड़ी करधनी की प्रत्येक लड़ियाँ भिन्न हैं। एक चौखूटी तख्तियों से बनी है, दूसरी मौलसरी के फूल के आकार वाले दानों से, तीसरी खरबूजेदार मनकों से

४३—कनिघम, वही
४४—कनिघम, भरहुत, फ० ४८



४३



४४



४५



४७



४९



४६



४८

और चौथी गोल मनकों से। कमर पर कमनीयता के लिए एक बटा हुआ तिरछा दुपट्टा बाँध लिया गया है। पैर में चूड़ियाँ पड़ी हैं। दाहिने कंधे से होती हुई बद्धी की लड़ें छाती के आर-पार जाती है। बद्धी खड़े और पड़े मनकों से बनी मालूम पड़ती है। गले में चौल्डा कंठा है। एक दूसरे माला की लटकन धारदार मणियों और त्रिरत्न से बनी है। कानों में तस्तीदार दोहरे कुंडल हैं। हाथ में कंगन और अंगुलियों में अंगूठियाँ हैं। ललाट पर फुल्ले के आकार की टिकुली है। गालों पर पत्रभंग बना है। चोटी सहस्रेना और मौलसरी के फूलों के कल-कारों से सुसज्जित पतले फीते से गुथी है।

यक्षी चूलकोका (आ० ५१)[४५]—इसकी साड़ी घुटने तक की है। कमर पर गोल तख्तियों की बनी करधनी और मुद्धीदार कमरबंद है, जिसके दोनों सिरों पर छोरें हैं। पटका कड़े खानेदार कपड़े का बना मालूम पड़ता है। सिर ओढ़नी से ढका है।

सुदर्शना यक्षी—सिर पर ओढ़नी, घुटने के नीचे तक पहुँचती धोती, फूलदार पेटी, चुननदार पटका (आ० ५२)[४६]।

यक्षी—सिर पर ओढ़नी, हाथों पर सरकता दुपट्टा, बटा कमरबंद, मनकों से बना पटका (आ० ५३)[४७]।

सिरिमा देवता—पजक से सजा कमरबंद, सतलड़ी करधनी, चुननदार कगौने से पहनी गयी साड़ी (आ० ५४)[४८]।

नर्तकी की वेश-भूषा

सिर पर साफा, साड़ी मुद्धीदार कमरबंद से बंधी है (आ० ५५)[४९]।

एक साधारण स्त्री की पोशाक

सादी साड़ी पर कमरबंद और करधनी (आ० ५६)[५०]।

क्षुद्रघंटिका—कभी कभी स्त्रियाँ साड़ी पर घंटियों से बनी मेखलाएँ पहनती थीं (आ० ५७)[५१]।

४५—कनिंघम, वही, प्ले० २३
४६—वही, प्ले० २३
४७—वही, बटनमारा का खंभा
४८—कनिंघम, वही, प्ले० ५१, २
४९—वही, प्ले० १५
५०—वही, प्ले० ८
५१—वही, प्ले० ५१

५१

५२

५०

५३

साधुओ की वेश-भूषा

साधु चादर और कोपीन पहनते थे (आ० ५८)[५२]। उनकी स्त्रिया चादर, साडी और एक शिरोवस्त्र पहनती थी (आ० ५९)[५३]।

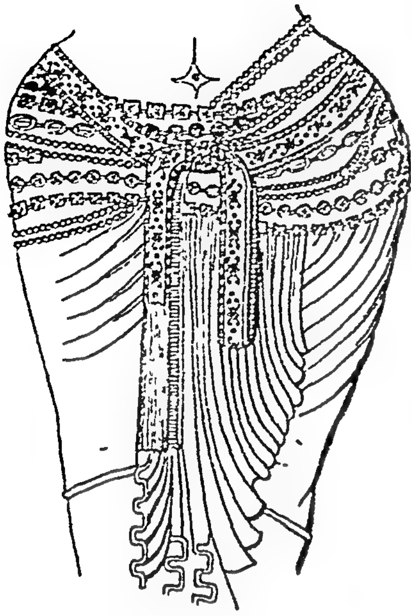
स्त्रियो के शिरोवस्त्र

भरहुत के एक अर्धचित्र में दो स्त्रिया रूमालो से अपने सिर ढके है (आ० ६०-६१) एक तीसरी स्त्री पगडी पहरे है (आ० ६२)[५४]।

शुगयुग में दक्षिणी स्त्रियो की वेश-भूषा

दक्षिण भारत में एक उच्च कुलीन नारी की ई० पू० दूसरी सदी की वेश-भूषा का पता हमें जगय्यपेट (गुटूर जिला) से मिली एक यक्षी की मूर्ति से मिलता है[५५]। साडी केवल घुटने तक पहुचती है। पैरो मे भारी पाजेब है। करधनी लबोतरे और चिपटे मनको के दो लडो से बनी है। कमरबद दो वक्सुओ के बीच से ऐसे निकाला गया है जिससे एक ओर तो फदेदार छोर लटक रहा है और दूसरी ओर कमरबद के दोनो छुट्टे सिरे जिनमें लबी छोरें पडी हुई है। गले में केवल तौक है और कानो में कुडल। चारखानेदार ओढनी से सिर ढका है। इसके किनारे पर खानो में फुल्ले बने है जो एक दूसरे मे बेडी धारियो से अलग होते है (आ० ६३)।

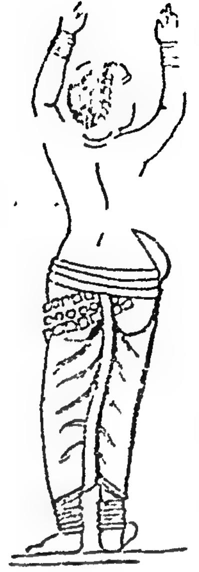
५२—वही, प्ले० ५१, १
५३—वही, प्ले० ५१, ५
५४—वही, प्ले० १५
५५—बर्जेस, दि बुद्धिस्ट स्तूप्स ऑफ अमरावती एड जगय्यपेट, प्ले० ५



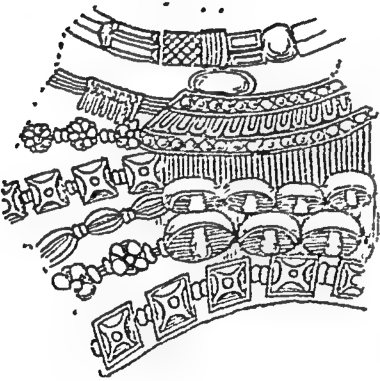
५४



५५



५६



५७



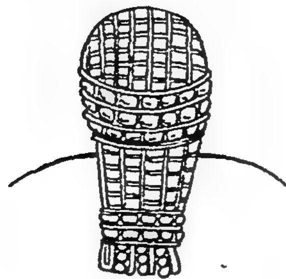
५८



५९



६०



६१



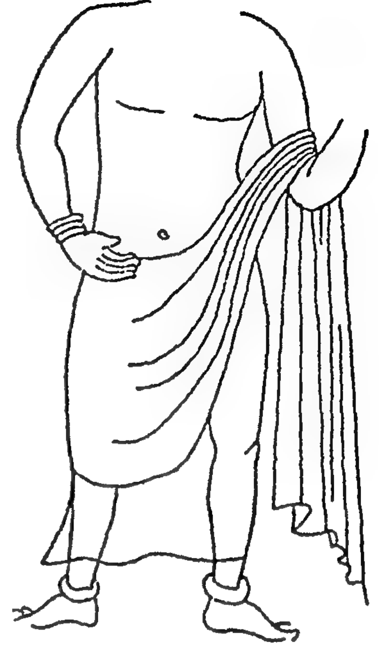
६२



६३



६४



६५



६६



६७



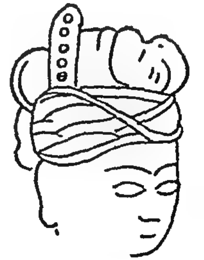
६८



६९



७०



७१

पीछे ओढकर उसके सिरे बगल से निकाल कर पीछे फेंक दिये जाते थे[४]। (३) बदन को ढकता हुआ दुपट्टा बायें कंधे पर रख लिया जाता था[५]।

साफे और पगडियाँ

प्राय सभी पुरुष पगडी पहनते थे । ऐसा लगता है कि पगडी के फेंटे लबे केशो से लपेटे जाते थे । पगडी बाधने की अनेक विधिया थी जिनसे पगडियो की अनेक आकृतियाँ बन जाती थी। साधारणत भरहुत की तरह पगडी के आगे एक लट्टू होता था । पगडी के एक छोर से वह ढक जाता था और तीन चार लपेटो के बाद पगडी बध कर तैयार हो जाती थी (आ० ६६)[६]। इस पगडी में निम्नलिखित भेद पाये जाते है।

१—पगडी की दो फेंटे कुछ नीची बधी हैं (आ० ६७)[७]।

२—पगडी पतले कपडे की है जिसके अदर से बाल झलक रहे हैं। दाहिनी तरफ की निकली फेंट का कुछ हिस्सा चुननदार है (आ० ६८)[८]।

३—पगडी मोती की लडो से सुशोभित है (आ० ६९)[९]।

४—पगडी का लट्टू अबोतरा है और कपडा धारीदार है (आ० ७०)[१०]।

एक दूसरी तरह की पगडी में कपडे की तह गोल लपेट कर लट्टू के बीच में रख दी जाती थी। इसके बाद कई फेंटे बाध कर पगडी का छोर फेंटो के नीचे से निकालकर दूसरी तरफ खोस दिया जाता था (आ० ७१)[११]। इसी पगडी के एक भेद में पगडी का कुछ गोलुवाँ हिस्सा सिर पर तिरछा पडता था और उसी के चारो ओर पगडी लपेट ली जाती थी (आ० ७२)[१२]। इसी पगडी से एक दूसरे भेद में आगे का लट्टू ढोल के आकार का होता था (आ० ७३)[१३]।

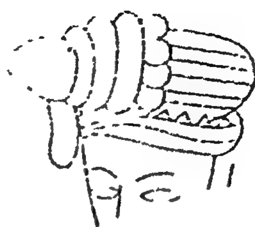
साची के अर्धचित्रो में हमें एक तरह की पगडी मिलती है जिसे हम 'गवाक्षदार'

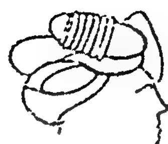
४—फर्गुसन, ट्री एण्ड सर्पेंट वर्शिप, प्ले० २७, १
५—वही
६—मोतीचन्द्र, वही, प्ले० ८, १४
७—वही, प्ले० ५, १५
८—वही, प्ले० ५, १६
९—वही, प्ले० ५, १७
१०—वही, प्ले० ५, १८
११—वही, प्ले० ५, १९
१२—वही, प्ले० ५, २०
१३—वही, प्ले० ५, २१


७२

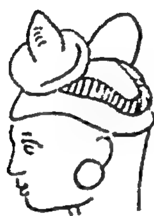

७३


७४


७५


७६

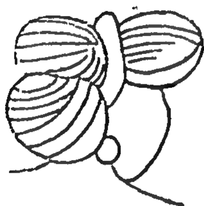

७७


७८


७९


८०


८१


८२

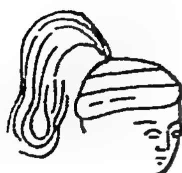

८३


८४

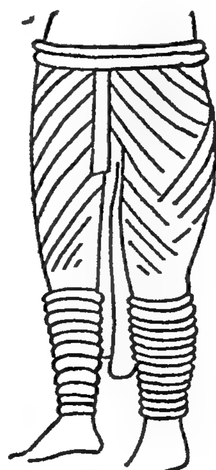

८५


८६


८७


८८


८९


९०


९१

कह सकते हैं। मूल सर्वास्तिवादियों के विनय में इस तरह की पगड़ी को कवु कहा गया है (गिलगिट टेक्स्ट्स्, भा० ३, २, पृ० ९५-९६)। एक में लट्टू शख के आकार का है और उसके पीछे वृत्ताकार अलकार है (आ० ७४)[१४]। दूसरे में शखाकार लट्टू पर पगड़ी का एक छोर कई कई फेर लपटा है (आ० ७५)[१५]। एक तीसरी भाँति में शख का अग्रिम भाग पेचक के आकार का है (आ० ७६)[१६]। साची के अर्धचित्रों में निम्नलिखित प्रकार की और भी पगड़ियाँ देख पड़ती हैं।

१—इस पगड़ी में लट्टू चक्करदार है (आ० ७७)[१७] और एक फेटा कान ढकता हुआ जाता है।

२—इसमें लट्टू का आकार फिरहरी जैसा है (आ० ७८)[१८]।

३—इसमें फेंटे ढीले हैं और लट्टू कबोतरा है (आ० ७९)[१९]।

४—इसमें लट्टू पत्ते के आकार का है, दाहिनी ओर पगड़ी से एक खूँटी सी वस्तु खुसी देख पड़ती है (आ० ८०)[२०]।

५—इसमें लट्टू बेलन के आकार का है (आ० ८१)[२१]।

६—इसमें तीन लट्टुओं के योग से पगड़ी बँधी देख पड़ती है (आ० ८२)[२२]।

साची के अर्धचित्रों में टोपियाँ भी आयी हैं। लगता है शकों द्वारा ऐसी टोपियाँ इस देश में आयीं। निम्नलिखित प्रकार की टोपियाँ देख पड़ती हैं—

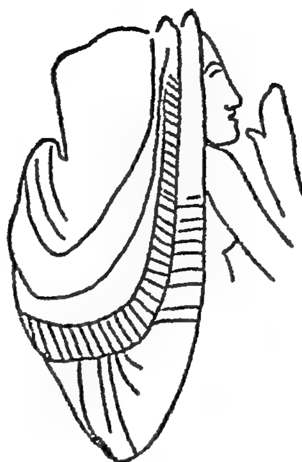
१—शकों द्वारा स्तूप पूजा के दृश्य में कुलाहनुमा टोपी देख पड़ती है (आ० ८३)[२३]।

२—चौरस गोल किनारे वाली टोपी, आगे एक बड़ा फूदना लगा है (आ० ८४)[२४]।

३—पेशानी के ठीक बीचोबीच कटी हुई टोपी, ऊपर पान के आकार का फूदना जिसके चारों ओर सारमुद्धी के आकार का मंडल है (आ० ८५)[२५]।

१४—वही, फ० ५, २२
१५—वही, फ० ५ २३
१६—वही, फ० ६, २४
१७—वही, फ० ६, २५
१८—वही, फ० ६, २६
१९—वही, फ० ६, २७
२०—वही, फ० ६, २८
२१—वही, फ० ६, २९
२२—वही, फ० ६, ३०
२३—वही, फ० ६ ३१
२४—वही, फ० ७, ३३
२५—वही, फ० ७, ३४






९२ ९३ ९४ ९५

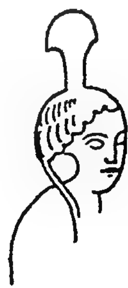





९६ ९७ ९८ ९९





१०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५

८—नीचे धारी वाली सुर्ख टोपीनुमा टोपी, इसके छत पर फुंदना है और किनारे पर मनकों अथवा फदनों की झालर (आ० ८६)[२६]।

९—कुलाहनुमा टोपी जो सामने और बगल में पजरों से सजी है (आ० ८७)[२७]।

साची के अर्धचित्रों में सारथी चोटीदार टोपी पहनते थे (आ० ८८)[२८]। विदेशी अक्सर अपना सिर फुंदनेदार फीते से बांधते थे (आ० ८९)[२९]।

स्त्रियों की वेश-भूषा

साची के अर्धचित्रों में स्त्रियां दो तरह की साड़ियां पहने दिखलायी गयी हैं। एक में साड़ी घुटनों तक पहुंचती थी और चुनन की लांग पीछे खोंस ली जाती थी, फीतेदार पर्यस्तक ढोलड़ी करधनी में खोंस दिया जाता था (आ० ९०)[३०]। दूसरी तरह की साड़ी में एक भाग को कमर में लपेट लिया जाता था और चुनन की लांग पीछे खोंस ली जाती थी (आ० ९१)[३१]। साड़ी पहनने की यह रीति आधुनिक कच्छ साड़ी पहनने की रीति से मिलती है और इसकी चलन मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में है। एक तीसरी जगह चुनन बगल में खोंसी दिखलायी गयी है (आ० ९२)[३२]।

स्त्रियों के सिर किनारदार ओढ़नियों से ढके रहते थे। ओढ़नियों में निम्नलिखित प्रकार देख पड़ते हैं —

(१) सिर को ढकती दोहरे किनारे वाली ओढ़नी (आ० ९३)[३३]।

(२) सिर और चोटी को ढकती हुई पोथी के आकार की ओढ़नी (आ० ९४)[३४]।

(३) बालों की सजावट को ढकती हुई दो तहों वाली ओढ़नी (आ० ९५)[३५]।

(४) सिर पर ओढ़नी दोहरी पेचों से बंधी है (आ० ९६)[३६]।

२६—वही, फ० ७, ४
२७—वही, फ० ७, ३१
२८—वही, फ० ८, ३८
२९—वही, फ० ८, ४६
३०—वही, फ० ८, ४०
३१—वही, फ० ८, ८
३२—वही, फ० ९, ८३
३३—वही, फ० ९, ८८
३४—वही, फ० ९, ४
३५—वही, फ० ९, ६०
३६—वही, फ० १०, ८३

(५) सिर पर पड़ी नुकीली ओढ़नी चौलड़ी पेंची से बंधी है (आ० ९७)[३७]।

(६) कभी कभी ओढ़नी की चोटी पंखे के आकार की होती थी (आ० ९८)[३८]।

(७) ओढ़नी में पंखे का आकार चोटी के पीछे दिखाया गया है (आ० ९९)[३९]।

(८) पेशानी के चारों ओर टिकरेदार बद्धी है, बद्धी को ढकती हुई किनारेदार ओढ़नी है। ओढ़नी के ऊपर एक वीर अथवा चूड़ामणि है जिसमें पंखे के आकार में पर लगे हुए हैं (आ० १००)[४०]।

स्त्रियां विशेषकर साधुनियां कभी कभी पगड़ी भी पहनती थीं। एक जगह यह पगड़ी अटपटी पगड़ी का रूप ग्रहण करती है (आ० १०१)[४१] और दूसरी जगह साफे का (आ० १०२)[४२]।

स्त्रियां कभी सिर से सटी गोल टोपी पहनती थीं (आ० १०३)[४३]। एक जगह इस टोपी में लटकनदार झालर लगी हुई है (आ० १०४)[४४]। एक जगह जुलूस में घोड़े पर सवार राजा के पीछे एक स्त्री शिरस्त्राण पहने हुए है (आ० १०५)[४५]। क्या यह यवनी है जो प्राचीन भारत में राजा के अंगरक्षक का काम करती थी?

हम ऊपर कह आये हैं कि ई० पू० पहली शताब्दी में कुछ ऐसी मट्टी की स्त्री मूर्तियां कौशांबी, मथुरा इत्यादि से मिली है जिनकी वेश-भूषा में कंचुक, भारी भरकम शिरोवस्त्र और भारी गहने हैं। स्त्रियों की यह पोशाक भरहुत और सांची के अर्धचित्रों में नही मिलती। ये मट्टी की मूर्तियां शुंगकाल की कही जाती हैं पर ध्यान देने से पता चलता है कि यह ई० पू० पहली शताब्दी की है। लगता है इनके वेश पर शक प्रभाव पड़ा है पर गहने भारतीय हैं। कौशांबी से मिली हुई एक ऐसी ही अखंडित मूर्ति का जो अब इंडियन इंस्टिटयूट म्यूजियम आक्सफर्ड[४६] में है वर्णन नीचे दिया जाता है। श्री जांस्टन की राय में इस मूर्ति का

३७—वही, प्लै० १०, ४८

३८—वही, प्लै० १०, ५०

३९—वही, प्लै० १०, ५१

४०—वही, प्लै० १०, ५२

४१—वही, प्लै० ११, ५३

४२—वही, प्लै० ११, ५४

४३—वही, प्लै० ११, ५५

४४—वही, प्लै० ११, ५६

४५—वही, प्लै० ११, ५७

४६—ई० एच० जांस्टन, ए टेराकोटा फिगर एट आक्सफोर्ड, जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४२, प्लै० ६, पृ० ९४-१०२

समय ई० पू० २०० का है[४७] और शायद मूर्ति मायादेवी की है[४८]। लेकिन डा० गॉर्डन का मत है कि ऐसी मूर्तिया ई० पू० दूसरी शताब्दी के अंत की और अधिकतर ई० पू० पहली शताब्दी की है[४९]।

मूर्ति की (आ० १०६) पृष्ठिका जो खाली बच गयी है फुल्लो से सजी है। मूर्ति का शिरोवस्त्र खूब सजा हुआ है। बाल दो लट्टूदार जूडो में सिर के अगल बगल में है। बालों को हटने बढने न देने के लिए ललाट पर चौलडी मोती की बद्धी है, जिसके दोनों अंत के फूदने साफ दिखलायी देते है। ललाट के दोनों कोनो में समानान्तर रेखाओं में पत्र भंग है और ललाट के बीचोबीच तिलक, दाहिनी ओर लट्टूदार जूडे पर कामदार पतली पट्टी बँधी हुई है। बायी ओर का जूडा एक चार टिकरो वाले शिखाजाल से बँधा है। और जूडा एक सिरे से दूसरे सिरे तक, निम्नलिखित आकार के टीकरो से सजा है यथा—सब से निचला अंकुश है, उसके बाद वाला त्रिरत्न, जिस पर कोई आवरण है, उसके बाद परशु है, उसके बाद फिर त्रिरत्न है जिसपर कुलाहनुमा कोई आवरण है और फिर है गडासा। इन सब के सिरो से मोती की लडें लगी हुई है। जूडों के बीच फुल्लों से सुसज्जित ढालनुमा गोल टिकरा है जिसका मतलब शायद चूडामणि से हो। कानो में गोल तकिया है जिन पर सितारो और फुल्लो का काम बना हुआ है, इनके नीचे मनको या मोती की कई लडें लटक रही है। शरीर एक बिना बाह वाले और पैर तक लटकते हुए कंचुक से ढका है। यह कंचुक कमर पर पेटी मे बंधा हुआ है। गले के नीचे किनारेदार गोल कालर है। कंचुक में एक विशेषता यह है कि दाहिना कंधा तो खुला है और कंचुक का किनारा बायें स्तन के मध्य से होकर जाता है। कंचुक की चुनन्नें समानान्तर रेखाओ द्वारा दिखायी गयी है। कमर से जरा नीचे खिसकी हुई एक तीन लडवाली करधनी है। लडें खारदार और गोल मनको से बनी है। निचली लड से दो फुदनेदार झुमके लटक रहे है। इन झुमको के ऊपरी लडो में दोनो ओर दो कुंभाडो की बैठी हुई मूर्तिया है। छाती पर दाहिने कंधे से लेकर कटि तक एक पट्टी है जिसमें चार जंतर यथा दो मछलियाँ, एक चिडिया जिसका सिर टूट गया है, एक सोनी हिरनी और मकर है। इन जंतरों से मनको की लडें लटक रही है। मूर्ति एक या उससे अधिक दुपट्टे पहने है जो दायें और बायें बाहुओ और बायें कन्धे और स्तन पर होते हुए घुटनों पर खतम होते है। उनके ठीक ठीक घुमावों का पता नही चलता। हर कलाइयों पर चार चार कंगन है।

४७—वही, पृ० ६६

४८—वही, पृ० १०१

४९—डी० एच० गॉर्डन, अर्ली इंडियन टेराकोटाज़, जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४३, पृ० १५७



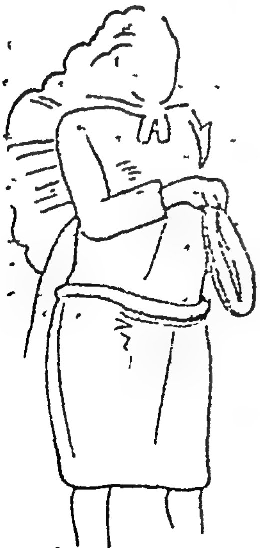
१०६



१०७



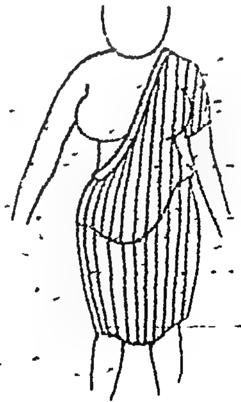
१०८



१०९



११०



१११

सिले वस्त्र

साची के अर्धचित्रो से तत्कालीन सिले वस्त्रो पर भी प्रकाश पडता है। इनमे सारथि[५०], सिपाही[५१], राजा के अगरक्षक अथवा ध्वजवाहक[५२], तथा स्तूप पूजा करते हुए विदेशी[५३] कचुक पहने दिखलाये गये है । सिपाही दो भागो मे बाटे जा सकते है, धनुर्धारी और पदाति। धनुर्धारी पूरे बाह वाला कचुक पहने दिखलायी पडते है (आ० १०७)[५४] बाण छोडते समय केहुनियो तक बहोलिया उलट ली जाती थी[५५]। इसके अलावा वे तहमतनुमा कपडा कमर पर बाधते थे जो कई फेंटो के कमरबद से कमर पर मजबूती से बधा होता था। छाती पर दोहरे परतले और सिर पर पगडी होती थी। पैदल सिपाही धनुर्धारियो की तरह ही कपडे पहनते थे लेकिन वे दोहरे परतलो का व्यवहार नही करते थे । कुछ स्थानो मे पैदल सिपाही (आ० १०८)[५६] कमरबद से बधी जाघिया पहने दिखलाये गये है। कमरबद से लटकता पटका भी वे पहनते थे । स्तूप की पूजा करते हुए विदेशियो की पोशाक भी ध्यान देने योग्य है (आ० १०९)[५७] वे पूरी बाह का घुटनों के नीचे लटकता कंचुक, कमरबद, पीछे फडफडाता हुआ गले मे बधा रूमाल पहने है । कुछ अपने सिर फीतो से बाधते थे जो सिर के पीछे बधा हुआ होता था, कुछ कुलाहनुमा टोपिया पहनते थे और कुछ नगे सर रहते थे। सब के पैरो में पूरा बूट होता था। साची के स्तूप न० ३ मे एक जगह[५८] एक मकर पर चढा हुआ विदेशी आधे बाह का कचुक जाघिया और बूट पहने है।

साची के अर्धचित्रो में केवल विदेशी पूरा बूट पहने दिखलाये गये है, कही कही यह बूट यूनानी चप्पल का रूप ग्रहण करता है (आ० ११०)[५९]। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि भारतीय जूते पहिनते ही नही थे क्योकि तत्कालीन बौद्ध साहित्य मे तरह तरह के जूतों का वर्णन है। भरहुत और साची के अर्धचित्रो मे जूते न पाये जाने से केवल यही माना जा सकता है कि भारतीय सभ्यता के अनुसार पूजा के स्थानो मे जूते आज दिन की तरह वर्जित

५०—फर्गुसन, वही, प्ले० ३३

५१—वही, प्ले० ३६, १, २, ३८, १

५२—वही, प्ले० ४०

५३—मोतीचद्र, वही, प्ले० ७, २२

५४—वही, प्ले० १२, ६०

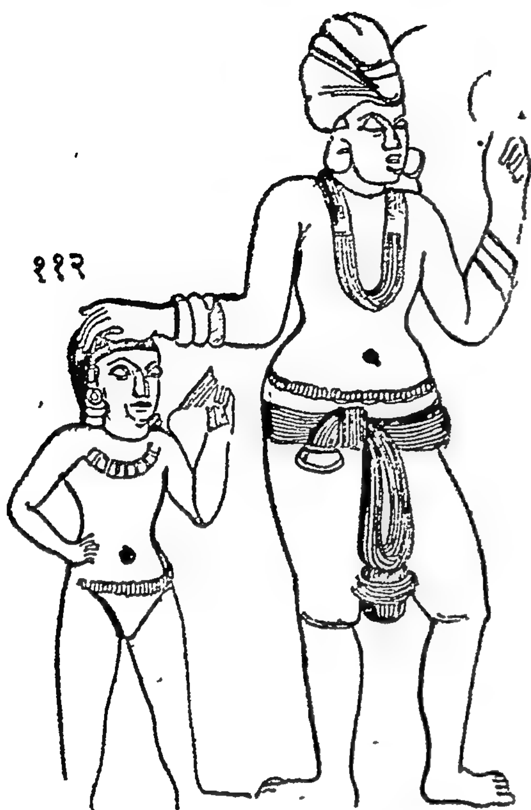
५५—वही, प्ले० १२, ६१

५६—वही, प्ले० १२, ६२

५७—वही, प्ले० १२, ६३

५८—मार्शल, सांची, भा० ३, प्ले० ६७

५९—फर्गुसन, ट्री एंड सर्पेंट वर्शिप, प्ले० २८, मोतीचद, वही, प्ले० १३, ६४



११२



११३



११४



११५

थे। इन अर्धचित्रों में या तो मनुष्य मूर्तियां पूजा करती दिखलायी गयी हैं अथवा वे पवित्र जातकों में पात्रों का काम करती हैं और इसीलिए उनके पैरों में जूते नहीं हैं

ब्राह्मणों के वस्त्र

ब्राह्मण और साधु कौपीन पहनते हैं पर जैसा अर्धचित्रों से पता चलता है यह अनसिला वस्त्र तहमतनुमा न होकर घाघरेनुमा होता था[60]। वे चादरनुमा वैकक्ष्य भी पहनते थे जो बायां कंधा और छाती ढांकता हुआ दाहिनी छाती खुला छोड़ देता था। ऋषि-पत्नियां लहंगेनुमा (आ० १११)[61] एक कपड़ा और वैकक्ष्य पहनती थीं। उनके और ऋषियों के वैकक्ष्यों में अंतर केवल इतना होता था कि ऋषियों का वैकक्ष्य केवल कंधा ढकता था लेकिन स्त्रियों का वैकक्ष्य बाहु का भी कुछ भाग ढक लेता था।

दक्षिणी वेश-भूषा

अर्धचित्रों और भित्तिचित्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर और दक्षिण भारत की वेश-भूषा में अधिक अंतर नहीं था फिर भी दोनों में कुछ स्थानिक अंतर तो था ही। दक्षिण भारत की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए पर्याप्त साधन हमें अमरावती के प्रथम युग के अर्धचित्रों, कार्ले और भाजा के लेणों के अर्धचित्रों में और अजंटा की नं० ९ और १० लेणों के भित्तिचित्रों से मिलते हैं। अमरावती में एक सद्गृहस्थ की वेश-भूषा करीब करीब वैसी ही है जैसे सांची के अर्धचित्रों में एक सद्गृहस्थ की। वे कुछ लंबोतरा साफा बांधते थे, धोती घुटनों तक पहुंचती थी और कई लड़ रस्सियों से बने कमरबंद के अंत में एक फुंदा लटका करता था (आ० ११२)[62]। कार्ले की लेण के अर्धचित्रों में धोती जरा फटी दिखलायी गयी है और उमेठे कपड़े का बना कमरबंद बगल में लटकता दिखलाया गया है[63]। कार्ले में पगड़ी छोटी और कसकर बंधी दिखलायी गयी है।

भाजा के के अर्धचित्रों से दक्षिण की वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है और उनमें दक्षिणी झलक भी साफ देख पड़ती है। भाजा की वेश-भूषा के आधार प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम में भाजा अर्धचित्रों के प्लास्टर की प्रतिकृतियों से लिये गये हैं।

हाथी पर बैठे राजा और ध्वजवाहक की वेश-भूषा (आ० ११३)

राजा के शीश पर गुबददार पगड़ी बंधी है जो मोती या मनकों की लड़ों से सजी है। हाथों में मनकों की लड़ी से भर बाह के कंगन और गले में मनकों की बनी छलड़ी माला है।

६०—मोतीचंद्र, वही, प्लें० ११, ५८

६१—वही, प्लें० १२, ५६

६२—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम, प्लें० १८,१

६३—बर्जेस, रिपोर्ट आन दि बुधिस्ट केव टेंपल्स, प्लें० २५, २



११६



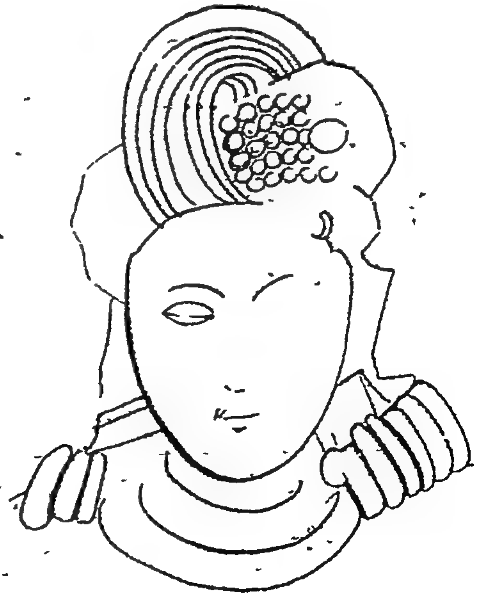
११७



११८



११९



१२०

राजा के कमर मे एक सिला हुआ लहगानुमा वस्त्र है जिसकी चदने साफ साफ देख पडती है। राजा के पीछे बैठे हुए ध्वजवाहक के सिर पर एक अटपटी सी बधी पगडी है जिससे तीन फेरे निकलते दिखलाये गये है। पगडी का एक छोर गालो को घेरता हुआ और ठुड्डी के नीचे से होकर दूसरी तरफ पगडी मे खोस दिया गया है। वह एक पूरे बाह का कचुक भी पहने है जिसका दामन लहरिये के आकार में कटा हुआ है।

द्वारपाल (आ० ११४)

सिर पर मोती या मनको की लडो से सजी हुई गुबददार पगडी है, गले मे खारदार और चपटे मनको के कठे है। दाहिने कधे से होता हुआ एक परतला है जिसके छोर से कृपाण लटक रही है। धोती के एडी के कुछ ऊपर पहुचती है और कमरवद कमर मे लपेट लिया गया है। कमरवद से पटका लटक रहा है।

सिपाही (आ० ११५)

हल्की एक लट्टू वाली पगडी जिसके बाहर कुछ बाल की लटे निकली है बाये कधे से होता हुआ दुपट्टा, कछाडेदार धोती और कमरबद।

पगडी

पगडी (आ० ११६) अनेक पेंचो वाली घुमावदार पगडी (उष्णीषरत्न) जिसमें तीन पर जैसे निकले है।

स्त्रियो के शिरोवस्त्र

(१) ओढनी के ऊपर सिरपेच जैसा आभरण, सिरपेच की नीचे की लडिया फुल्लेदार गोल तख्तियो से बनी है (आ० ११७)।

(२) भारी भरकम ओढनी जिसकी कई तहें सिर पर पडती है, सीसमाग और बद्धी बेना, सिर के मध्य मे एक पहियानुमा टिकरा, ललाट पर एक गोल टीका (आ० ११८)।

(३) शीश पर पगडी जैसा कोई आच्छादन जिसके बाये ओर कुछ दाने से निकले है। गले मे खारदार, ढोलकनुमा और चपटे मनको के कठे (आ० ११९)।

(४) सिर पर मूगरी के आकार का गोलियाया वस्त्र (आ० १२०) जिसका एक छोर गोले के ऊपर होता हुआ दूसरी ओर खोस दिया गया है।

(५) मस्तक पर जूट बधी वेणी (आ० १२१) जिसमें शायद फीते लगे है।

(६) पगडी नीचे के फटे कान तक आ जाते है (आ० १२२)।

अजंटा लेण ९-१० के भित्तिचित्रो में आयी वेश-भूषा की कुछ विशेषताए

साची अथवा भाजा के अर्धचित्रो में हम पगडियो के बहुत से भेद देख चुके है।

अंजटा के १० नं० की लेण के भित्तिचित्रों में पगड़ी भारी भरकम नहीं होती। पहले सिर के ऊपर बालों का जूट बाँध दिया जाता था, फिर एक कटे छोर वाली पतली छीर बालों के ऊपर लपेट ली जाती थी (आ० १२३)[६४]।

दस नंबर की लेण के भित्तिचित्रों में कुछ सिले वस्त्रों के नमूने आये हैं। षड्दंत जातक के चित्र मे शिकारी सोनुत्तर और उसका साथी कंचुक पहने हैं। अपने कंधे पर बंहगी लिये सोनुत्तर का साथी एक चौथाई बाहों वाला, त्रिकोणाकार कटे हुए गले वाला धारीदार कंचुक पहने है जो कमरबंद से बंधा है, । सोनुत्तर का कंचुक बुंदकीदार छींट का बना मालूम पड़ता है । इसका गला गोल है और सामने तुकमेक लगाने की पट्टी है (आ० १२३-१२४)

६४—स्टेला क्रामरिश, ए सर्वे आफ पेंटिंग इन दि डकेन, प्ले० १

सातवाँ अध्याय

ईस्वी पहली शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी के आरभ तक के साहित्य में वर्णित वेश-भूषा

भारतीय इतिहास की मुख्य घटनाओ में ईस्वी प्रथम शताब्दी में इस देश मे कुषाणो का आगमन है । कुषाण ऋषिक (यू० ची०) कबीले के एक अग थे और उनका आदिम निवासस्थान चीन के उत्तर पश्चिमी भाग में था। हूणो द्वारा, ई० पू० १६५ मे विजित होकर ऋषिको ने पहले तो शको के देश पर कब्जा किया और बाद में आगे बढते हुए करीब ई० पू० १० वी सदी में उन्होने बलख जीत लिया। कुषाण वश के सब से प्रसिद्ध राजा कनिष्क ने पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) को अपनी राजधानी बनाया। कनिष्क विद्वानो का आदर करते थे और इनकी सभा में सस्कृत के प्रसिद्ध कवि अश्वघोष और प्रसिद्ध वैद्य चरक थे। कनिष्क बौद्ध थे इसलिए धर्मप्रसार के लिए इन्होने तिब्बत, मगोलिया और खोतान ऐसे सुदूर देशो में भिक्षु भेजे । सस्कृत बौद्ध साहित्य तथा तत्कालीन लेखो से पता चलता है कि सर्वहित कामना का इस युग में विशेष प्रचार था ।

उत्तर भारत में कुषाणो के उदय होते ही सातवाहनो की सत्ता को धक्का पहुचा और उनकी राज्य-सीमा घटकर केवल दक्खिन तक ही रह गयी । करीब ११० ई० से० के चष्टन कुषाणो के महाक्षत्रप हुए लेकिन बाद में सातवाहनो ने उनसे यह सत्ता छीन ली। चष्टन के पोते रुद्रसिंह, जिन्होने अपनी कन्या का विवाह राजा सातवाहन के पुत्र से किया था, अपने सबधी को युद्ध मे दो बार हराकर धीरे धीरे सिंध, मारवाड, कच्छ, सुराष्ट्र, गुजरात, मालवा और उत्तरी महाराष्ट्र पर कब्जा कर लिया । बाद में सातवाहन अपने विजित राष्ट्र के कुछ भाग ले लेने मे समर्थ हुए ।

ईसा की आरभिक सदियो में तामिल देश पर चेर, चोल और पाड्यो की सत्ता थी और इनमें बहुधा लडाइया भी होती रहती थी । तामिलनाड का सब से प्रतापी राजा करिकाल चोल ने (करीब ई० ७०-१०० तक), जिसने सिंहल के सम्राट् गजबाहु को हराया, उरैयूर (आधुनिक त्रिचनापल्ली) में अपनी राजधानी कायम की । इस युग मे कावेरी के मुहाने पर कावेरीपट्टन प्रसिद्ध बदरगाह बन गया । चेर सेंगुट्टुवन् (करीब ई० १४०-१९२) दक्षिण देश का एक दूसरा बडा राजा था जिसने चोल देश के नौ सम्मिलित राज्यों को हराया। इसकी यश-गाथा हमें प्रसिद्ध तामिल काव्य सिलप्पदिकार में मिलती है ।

ईस्वी दूसरी शताब्दी के अत में सातवाहन साम्राज्य छिन्न भिन्न होने लगा। आभीरो ने गुजरात में एक स्वतत्र राज्य कायम किया । चुटु सातवाहन करीब सौ साल तक

अपनी राजधानी वैजयन्ती (आधुनिक वनवासी, कनारा) से उत्तर महाराष्ट्र और कर्नाटक पर राज्य करते रहे और इक्ष्वाकुवंश अपनी राजधानी शायद नागार्जुनीकोंड (धान्यकटक, गुंटूर जिला) से आंध्र देश पर। उत्तर भारत मे नाग, भारशिव, और मघराजाओं ने कुषाणों को निकाल बाहर किया और यौधेयों और मालवों के गणतंत्र प्रवल हो उठे। वाद मे भारशिवों की सत्ता के अंत होने पर विंध्यशक्ति ने ई० २४८-२८४ मे प्रसिद्ध वाकाटक वंश की स्थापना की और उस वंश का सबसे प्रतापी राजा प्रवरसेन (ई० स० २८४-३४४) हुआ।

भारतवर्ष के इतिहास के ये तीन सौ वरस न तो केवल लड़ाई भिड़ाई मे ही बीते और न तो, जैसा कुछ ऐतिहासिकों का विश्वास है इसके पिछले युग का इतिहास (ई० स० १५६ से ३५० तक) अन्धकार मय ही है क्योकि इस काल के इतिहास पर डा० जायसवाल प्रभृति विद्वानों ने अच्छा प्रकाश डाला है। प्लिनी और पेरिप्लस के ग्रंथों से, तथा वृहत्तर भारत और इस देश के पुरातत्व संवंधी अन्वेषणों से यह पता चलता है कि इस युग मे कला और साहित्य समुन्नत थे। भारत और रोम के साथ हमारा गहरा व्यापारिक संवंध था और हम अपनी ब्रह्मविजय से मध्य एशिया से लेकर हिंदचीन तक अपनी सांस्कृतिक धाक जमा चुके थे। ई० सन् की पहिली शताब्दी में हिन्द-चीन, अनाम कंवुज तथा यवद्वीप इत्यादि मे भारतीय राज्य वन चुके थे। भारतीयों का पूर्व की ओर प्रसार उन्हें चीनियों के संयोग में लाया और इन दोनों देशों में व्यापारिक संवंध वढ़ा। इसी युग मे रोम साम्राज्य के उत्कर्पावस्था में भूमध्य सागर और भारत का मूल्यवान व्यापारिक संवध और भी दृढ हुआ। भारतीय रत्न, मसाले, गंधद्रव्य और कीमती 'मिरहिना' की घरियां, जिनकी कीमत से घवराकर प्लिनी को रोमनों के भाग्य पर रोना पडा, तथा वढ़िया मलमल इस देश से रोम को जाते थे। सज्जा की इन वस्तुओं के व्यापार से देश की आमदनी इतनी वढ़ी कि व्यापार का पलडा हमारी ओर झुक गया और इसके फलस्वरूप बहुत वड़े पैमाने मे रोमन दीनारें इस देश मे आने लगीं।

भारतीय वेश-भूपा की प्रचुर सामग्री हमे इस युग की मूर्तियों और अर्धचित्रों मे मिलती है। उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त की गंधार-मूर्तियां, मथुरा की कुपाण मूर्तियां तथा अमरावती, नागार्जुनीकुंड और गोल्ली से मिले अर्धचित्र हमे यह वतलाते है कि धोती, साड़ी तथा पगड़ी पहनने मे कौन कौन सी स्थानिक विशेपताएं थी। उत्तर पश्चिमी भारत मे शुद्ध भारतीय वेश-भूपा के सिवाय कंचुक, शलवार, टोपियां इत्यादि विदेशी वस्त्र भी काम मे लाये जाते थे। ये वस्त्र प्राचीनभारत और मध्य एशिया तथा ईरान के सांस्कृतिक और व्यापारिक संवंध के प्रतीक है। गंधार की कला यूनानी कला से प्रभावित थी जिसके फल-स्वरूप हम गंधार की कला में स्त्री-पुरुषों को कभी कभी यूनानी कपड़े पहने देखते हैं। कुषाण सिक्कों पर अंकित कुषाण राजाओं की आकृतियों से हमे शकों की वेश-भूपा का अच्छा पता लगता है। दक्षिण-भारत मे स्त्रियों और पुरुषों की वेश-भूषा बहुत सादी होती थी।

वे केवल मलमली धोती और कमरबद पहनते थे- कचुक तो केवल योद्धागण, शिकारी और द्वारपाल ही पहनते थे । इस युग के अर्धचित्रो मे पजाबियो की प्रिय कुलाह भी कभी कभी दिखलायी पडती है ।

कुषाण युग के साहित्य से उस युग की वेश-भूषा पर विशेष प्रकाश नही पडता । महावग्ग और चुल्लवग्ग ऐसे ग्रथो का जिनमें ईसा के पूर्व चौथी या पाचवी शताब्दी के नर-नारियो की वेश-भूषा, पहनने के ढग और कपडो का विशद वर्णन है, इस युग मे अभाव ही सा है। इस युग के साहित्य मे वेश-भूषा का छिटपुट वर्णन है, और वस्त्रो और कपडो का नाम बिना किसी भाष्य के आते है। इन शब्दो के अर्थ आधुनिक कोशो मे भी नही मिलते और अगर मिलते भी है तो यह पता नही चलता कि वे वस्त्र सूती, रेशमी अथवा और किसी दूसरे रेशो से बनते थे । इस युग के कपडो का ज्ञान हमें "पेरिप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी" नामक एक पुस्तक से, जिसे एक यूनानी नाविक ने ईसा की पहली शताब्दी मे भूमध्य और हिंद-सागर के व्यापारिक सबध पर लिखा था, मिलता है ।

कपास धुनने, कातने और बुनने की क्रिया

इस युग में सूती कपडे का बहुत चलन हो गया था। अच्छी कपास पैदा की जाती थी और कपास के खेत (कर्पासवाट) का उल्लेख मिलता है[१] । कपास की मृदुता (कर्पास-पिचु) के लोग कायल थे। दिव्यावदान मे एक जगह[२] उपगुप्त के शरीर की कोमलता की उपमा कर्पास से दी गयी है। कपास बाजार से खरीद कर धुन ली जाती थी (त परिकर्मयित्वा, और उससे पतला एकसा सूत कात लिया जाता था[३] । बुनकर (कुविंद), कपडे बीनते समय चीर छोडकर (अविचीरविचीरक) तथा अपने सिर उठाकर और अपने हाथ पैरो का सचालन करते हुए बुनना आरभ करते थे । पास में बैठी बुनकर की स्त्री माडी (दिव्यसुधा) देकर ताना तानने का काम आरभ कर देती थी (तमरिका कर्तुमारब्धा)[४] । दो हजार वर्षों के बाद भी आज हम एक बुनकर के घर यही दृश्य देख सकते है। कार्पासिको और बुनकरो (तन्त्रवायक) का अपनी श्रेणिया होती थी (महावस्तु, आ० ३, पृ० ११३)

कलिंग देश के नाग बुनकर

दक्षिण भारत में उस युग में नाग जाति बहुत सी कलाओं मे और विशेषकर बुनाई में पारगत थी। कलिंग देश के नाग बुनाई में इतने कुशल होते थे कि तामिल भाषा मे कलिंग शब्द अच्छे कपडे का बोधक हो गया । ईसा की प्रारभिक शताब्दियो में पूर्व समुद्र के किनारे पाड्यो की राज्य-सीमा मे भी बहुत अच्छे बुनकर थे और इनकी बनायी हुई मलमल काफी

१—दिव्यावदान, पृष्ठ २१२, सतर २१
२—वही, पृ० ३८८, सतरें १४-१५ तथा पृ० २१०, १८
३—वही, पृ० २७६, स० ८, ११
४—वही, पृ० ८३, स० २१ २५

परिमाण में निर्यात होती थी । बढ़िया मलमल की तामिल काफी कदर करते थे और बाहरी देशों में भी इसका बड़ा गहरा दाम मिलता था।[५] एक प्राचीन तामिल काव्य में अय नाम के एक प्रसिद्ध राजा के नील नाग द्वारा भेंट किया हुआ एक अमूल्य मलमल का थान शिव की मूर्ति पर चढ़ाने का उल्लेख है[६] । मूल सर्वास्तिवादियों के विनय में एक जगह स्त्रीरत्न के शरीर के मृदुता की उपमा कलिंग प्रावार से दी गयी है (गिलगिट टेक्टस्, भा० ३, २, पृ० ३६)

रोम में भारतीय मलमल

भारतीय मलमल की रोम साम्राज्य में बड़ी कीमत होती थी पेरिप्लस के अनुसार सबसे अच्छी मलमल को 'मोनाचे' और कुछ घटिया रुई के बने कपड़े को जिसका व्यवहार खोल बनाने के लिए होता था 'सगमतोगेने' कहा जाता था । ये कपड़े गुजरात में बनते थे और भड़ोच से एक घटिया बैंगनी रंग के 'मोलोचीन' नामक कपड़े के साथ पूर्वी अफ्रिका के बंदरों में भेजे जाते थे[७] । इसी तरह के कपड़े भड़ोच होकर अरब, मिस्र और सोकोतरा भी भेजे जाते थे । भड़ोच की बंदरगाह में ये कपड़े उज्जैन और तगर (आधुनिक तेर) से आते थे[८] । त्रिचनापल्ली और तंजोर में आर्गरितिक[९] नाम की मलमल बनती थी जिसका यूनानी नाम चोलों की राजधानी उरैयूर (आधुनिक त्रिचनापली का एक भाग) मे बनने से पड़ा। मसालिया (आधुनिक मसुलीपतन) मे भी काफी मलमल बनती थी[१०]। पर सब से अच्छी मलमल का नाम 'गेंजेटिक' था और वह शॉफ के अनुसार ढाका के आस-पास बनती थी[११]। काशी भी उस युग में कीमती मलमल बनाने का एक बड़ा केन्द्र था और हो सकता है कि गेंजेटिक से यहां काशी की मलमल का उद्देश्य रहा हो । रोम में भारत के सादे और रंगीन वस्त्रों की इतनी अधिक मांग थी कि दूसरे देशों के कपड़ों की मांग काफी गिर गयी। इस देश की सब से अच्छी मलमल का नाम रोमनों ने 'वेंटस टेक्सटाइलिस' (हवा की तरह कपड़े) और 'नेबुला' रक्खा। एरियन के अनुसार भारत मे बने सूती कपड़े दूसरे देशों मे बने कपड़ों से अधिक सफेद और चमकीले होते थे तथा लूशियन के अनुसार भारतीय कपड़े यूनानी कपड़ों से भी हलके और मुलायम होते थे[१२]। संस्कृत बौद्ध साहित्य में मलमल के लिए विरली शब्द आया है। बिंदुसार द्वारा एक कीमती विरली अंबपाली को भेंट दी गयी (वही, ३, २, पृ० २०) जामदानी के काम को चित्रा विरली कहते थे (वही, पृ० २३)

५—कनकसभै, दि तामिल्स-एट्टीन हंड्रेड इयर्स एगो, पृ० ४५
७—शॉफ, दि पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी, पृ० ७२-७३, १७९-१८०
८—वही, पृ० ४२
९—वही, पृ० ४६
१०—वही, पृ० ४१
११—वही, पृ० ४७
१२—वार्मिंगटन, कामर्स बिटवीन दी रोमन एम्पायर एंड इंडिया, पृ० २१२

रेशमी वस्त्र

रेशमी कपडो की काफी चलन थी और इस देश में काफी रेशमी कपडे बनते भी थे। दिव्यावदान[१३] मे रेशमी वस्त्र के लिए पट्टाशुक, चीन, कौशेय और धौतपट्ट शब्दो का व्यवहार हुआ है। लेकिन इन रेशमी वस्त्रो मे बनावट और नक्काशियो की दृष्टिकोण से क्या फरक था इसका पता हमे नही लगता। लगता है पट्टाशुक सफेद और सादा रेशमी वस्त्र था, चीन चीन देश मे बने रेशमी कपडे को कहते थे, कौशेय शहतूत की पत्ती खाकर कोश बनाने वाले कीडो के रेशम से बने वस्त्र का नाम था और धौतपट्ट धारे हुए रेशम के बने वस्त्र को कहते थे। नकाशीदार रेशमी वस्त्र को कोसिकारक भी करते थे (महावस्तु, १, पृ० २३५-२३६)। विचित्रपटोलक[१४] अथवा नक्काशीदार रेशमी वस्त्र का भी उल्लेख है। इस वस्त्र का नाम गुजरात की पटोला साडी मे जिसे विवाह के अवसर पर लडकी का मामा उसे भेंट मे देता है बच गया है। यह साटी बाधणी रगने की विधि मे रगे हुए तानेबाने से बनती है। इसकी विनावट में सकरपारे पडते है जिनके बीच मे तिपतिये फूल होते है। कभी कभी अलकारो में हाथियो की पक्ति, पेड, पौधे, मनुष्य-आकृतिया और चिडिया भी होती है[१५]। लेकिन ये अलकार नये है पुराने अलकारो का हमे पता नही है। पटोलक के साथ विचित्र विशेपण मे पता लगता है कि वह रग-बिरगा कपडा होता था।

तामिलनाड में धनिक वर्ग रेशमी कपडे पहनता था। सिलप्पदिकार में एक जगह कहा गया है कि मदुरा की स्त्रिया पुष्पालकृत लाल रग की रेशमी साडिया पहनती थी[१६]।

पेरिप्लस मे इस बात का उल्लेख है कि सिंध नदी पर बारबरिकोन बदरगाह से रेशम का निर्यात होता था, और बलख के रास्ते सिंध होते हुए भडोच को, रेशम और कीमती रेशमी कपडे भेजे जाते थे। रेशमी कपडे मुजिरिस, नेलकिंडा तथा मालाबार के और दूसरे बाजारो मे गगा के मुहाने और पूर्वी समुद्र के किनारे से होकर पहुचते थे[१७]। ईसा की आरभिक सदियो में चीन से रेशमी वस्त्र ब्रम्हपुत्र की घाटी, असम और पूर्वी बगाल भी हो कर आते थे[१८]। रेशमी कपडो के व्यापारी चोलो की राजधानी कावेरीपट्टन में भी पहुचा करते थे[१९]। 'पेरिप्लस' के अनुसार रोमन व्यापारियों के रेशमी वस्त्र गगा के मुहाने, खभात की खाटी और शावकोर के बदरो में मिलते थे जहा इनका आयात पश्चिमी चीन से व्यापा-

१३—दिव्यावदान, पृ० ३१६

१४—ललितविस्तर, पृ० ११३, सतर १, डा० राजेंद्र लाल मित्र सपादित, कलकत्ता १८७७

१५—वाट, इडियन आर्ट एट दी देहली एक्जिबिशन, पृ० २५६-२५९

१६—सिलप्पदिकार, १४, पृ० २०३

१७—वार्मिगटन, वही, पृ० १७६, शॉफ वही, पृ० २६३-२६८

१८—वाट, डिक्शनरी आफ एकोनामिक प्राडक्ट्स आफ इडिया, पृ० ९९८ १०२६

१९—वार्मिगटन, वही, पृ० १७६

रियों द्वारा होता था[२०]। चीनपट्ट के सिवाय भारतवर्ष के बने रेशमी कपड़े भी शायद ईसा की आरंभिक शताब्दियों में रोम पहुंच चुके थे।

ऊनी कपड़े और पश्मीना

ऊनी कपड़े का साधारण बोधक शब्द कंबल था[२१]। इस युग मे ऊनी कपड़ों के लिए शायद दूश्य (आधुनिक धुस्सा) शब्द का भी व्यवहार होता था[२२]। दिव्यावदान में कहा गया है कि उत्तर कुरु देश मे कल्पदूश्य नामक वृक्ष से तुंडिचेल नाम के कपड़ो के थान पैदा होते थे, जिनसे नीले, पीले, लाल और सफेद रंग के कल्पदूष्य के छोटे बड़े टुकड़े बनते थे[२३]। यह भी कहा गया है कि मातंग स्त्रियां बिना कुदी किया हुआ दूश्य (अनाहत दूश्य) पहनती थी[२४]। कभी कभी ऊन और दुकूल के रेशों को मिलाकर बहुत अच्छे कपड़े बिने जाते थे (ऊर्णा दुकूलमयशोभनवस्त्राणि)[२५]। एशिया के ऊनों मे कश्मीर, भूटान, तिब्बत और उत्तरी हिमालय में बकरों के रोये का ऊन जिसे पश्म कहते है अपने चिकने पोत के लिए प्रसिद्ध है। रोम के बादशाह ऑरेलियन को ईरान के बादशाह द्वारा एक लाल रंग के पश्मीने के रूमाल के भेजने का उल्लेख है। वार्मिंगटन का कहना है कि यह रूमाल भारतवर्ष का बना था[२६]। रोमन कानून के संग्रह (३९।५।७) में मारोकोकोरम लाना भारत के उत्तरी-पश्चिमी बंदरगाहों से लाया गया पश्म था जो मिश्र देश में बुना जाता था। वार्मिंगटन का अनुमान है[२७] कि मारोकोकोरम शब्द शायद काराकोरम का अपभ्रंश है। इसमें संदेह नही कि आज दिन भी सब से अच्छा पश्म पामीर से आता है। रंगीन पश्म भारत से बाहर नही जाता था और इसलिए अरॉलियन और उसके परवर्ती राजाओं को लाल पश्मीना देखकर विस्मय होता था[२८]। प्राचीन काल में पश्म का बहुत दाम होता था। इस बात का उल्लेख है कि ससानी बादशाह हुरमुज द्वितीय (ई० ३०२-३१०) ने काबुल के राजा की कन्या से जब विवाह किया तब उसके दहेज में काश्मीर के अच्छे से अच्छे पश्मीने के बने शाल दुशाले आये, जिनकी कारीगरी देखकर सब लोग चकित हो गये[२९]।

२०—शॉफ, वही, पृ० १७२

२१—दिव्यावदान, पृ० ३१६, सतरें—२३-२७

२२—वही, पृ० २१५, स० २७-२९

२३—वही, पृ० २२१, स० १७-२०

२४—वही, पृ० ६१४, स० १७

२५—वही, पृ० ३१६, स० २३-२७

२६—वार्मिंगटन, वही, पृ० १६०

२७—वही, पृ० १६०

२८—वही, पृ० १६१

२९—वही, पृ० १६१

संस्कृत बौद्ध साहित्य मे भी ऊनी वस्त्रो के कइ जगह उल्लेख हैं। ऊनी वस्त्र कभी कभी बहुत पतला होता था। कवल सूक्ष्माणि (महावस्तु, २, पृ० ११६) तथा ऊन बिनने वालो (ऊर्णवायक) की अपनी श्रेणि होती थी (वही, ३, पृ० ११३)। साधारण और ऊट के बाल के बने कवलो का (कुतुप, उष्ट्रकबल) का भी व्यापार होता था (गिलगिट टेक्स्ट, ३, २, पृ० ९५-९६)

क्षौम, शाण, पाडुदुकूल, हर्यणी, अपरातक, फलक, फट्टक और पुष्पपट्ट

क्षौम—क्षौम अथवा तीसी के छाल के रेशो से बने कपडो का काफी व्यवहार होता था।[३०]

शण—अट्ठारह गज लबे और बारह गज चार अगुल चौडे सन के बने कपडे का उल्लेख है।[३१] एक दूसरी जगह सन की साडी (शण शाटिका) बिने जाने का उल्लेख है।[३२] ऐसा पता चलता है सन की बनी धोती (शण शाटिका) गरीब किसान पहनते थे।[३३]

हिरि वस्त्र—सुनहले कपडे को हर्यणी[३४] अथवा हिरि वस्त्र[३५] कहते थे। लगता है कि इन शब्दो मे आधुनिक मिसवाब की तरह किसी वस्त्र की ओर सकेत है। पर इसका ठीक ठीक पता नही चलता कि आया यह कपडा सादा होता था या नक्काशीदार। सुनहले कलाबत्तू से बिनी गई और रत्नो से जटित (रत्न-सुवर्ण-प्रावरका) कीमती चादरे भी होती थी।[३६]

पाडुदुकूल—दुकूल के रेशो से बना सफेद कपडा[३७]। इस युग के साहित्य में दुकूल का ठीक ठीक परिचय नही मिलता। जैन अगो की टीकाओ में गौड अथवा बगाल की रुई को दुकूल कहा गया है पर यह व्याख्या बारहवी शताब्दी की होने से अविश्वसनीय है। दुकूल शायद दुकूल वृक्ष की छाल के रेशो से बना कपडा था।

काशिक वस्त्र—बनारस में बने कपडो के लिए काशिक वस्त्र[३८], काशी[३९] तथा काशिकाम्[४०] इत्यादि शब्दो का प्रयोग हुआ है। बहुधा काशिक वस्त्र से लोग रेशमी कपडे

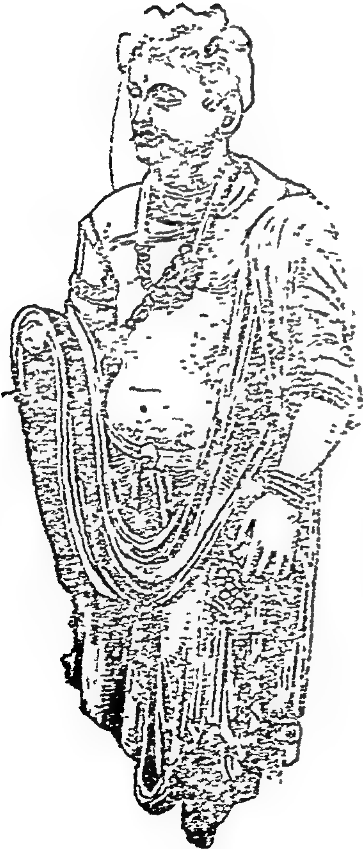
३०—दिव्यावदान पृ० ३१६, प० २३ २०, पृ० ५७७, प० २१-२२
३१—वही, पृ० ३४९, प० ३-५
३२—वही, पृ० ८३, प० २१-२५
३३—वही, पृ० १९८, प० ३
३४—वही, पृ० ३१६
३५—ललितविस्तर, पृ० १५८, स० १८
३६—दिव्यावदान, प० ३१६
३७—ललितविस्तर, पृ० ३३३
३८—दिव्यावदान, पृ० ३९१, प० ६
३९—वही, पृ० ३८८, प० १७
४०—वही, प० ३१६, प० २३-२७

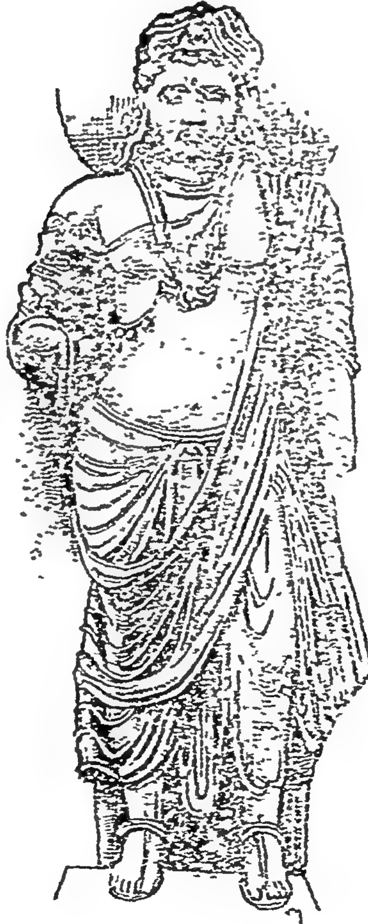

१२१


१२२


१२३


१२४


१२५


१२६


१२७

का अनुमान करते हैं क्योंकि आज दिन भी बनारस रेशमी कपडे बिनने का मुख्य केन्द्र है। लेकिन इस युग के साहित्य में काशी के बने वस्त्रों का रेशमी होने का कहीं उल्लेख नहीं है। बहुत सभव है कि ये वस्त्र सूती रहे हों क्योंकि प्राचीन काल में बनारस के आसपास बहुत अच्छी कपास पैदा होती थी और यहां की कत्तिने बहुत महीन सूत कातती थीं। भैषज्यगुरु-सूत्र[४१] में कहा गया है कि काशिक वस्त्र बहुत महीन होते थे (सूक्ष्माणि जालानि च सहितानि)। काशिक वस्त्र से बहुत अच्छे पहनने के कपडे बनने का भी उल्लेख है[४२]।

फलक—लगता है यह कपडा किसी फल के रेशे से बनता था[४३]।

अपरांतक—शायद कोकण में बना कपडा। यह पता नहीं चलता कि कपडा सूती होता था या रेशमी[४४]।

फुट्टक—ठीक ठीक तो नहीं कहा जा सकता पर ऐसा अनुमान होता है कि शायद यह शब्द छींट अथवा चूदरी के लिए आया है। इस कपडे की काफी माग थी। सोपारा में ऐसी दूकान (फुट्टक वस्त्रावारि) थी जहां केवल यही कपडा बिकता था[४५]।

पुष्पपट्ट—फूलदार कपडा। यह ठीक पता नहीं चलता कि फूल बिने हुए, छपे हुए अथवा कसीदा किए होते थे[४६]। सम्भव है जामदानी से तात्पर्य हो।

साधुओं के वस्त्र

भिक्षुक, तथा ऋषि मुनि फलक, वल्कल, मूज, दर्भ तथा वल्वज के बने कपडे तथा ऊट, बकरे तथा मनुष्य के बालों के बने कबल पहनते थे[४७]।

चीनी और भारतीय कपडे और समूर

इस युग में साधुओं को छोड कर और कोई चमडे के बने वस्त्र नहीं पहनता था। लेकिन इस युग में भारतवर्ष और रोम में चमडे और समूरों का काफी व्यापार होता था। पेरिप्लस का कहना है कि चीनी चमडे और समूरों का निर्यात सिंध नदी पर स्थित बार्बरिकोन[४८] बदरगाह से होता था। प्लिनी के अनुसार रोम में बराबर[४९] चीनी लोहा, सूत और चमडे आते थे।

४१—गिलगिट टेक्स्ट्स, भा० १, पृ० १२५-१२६
४२—ललितविस्तर, पृ० २६२, पं० ६
४३—वही, पृ० १५८, पं० १८
४४—दिव्यावदान, पृ० ३१६, पं० २३ २७
४५—वही, पृ० २६, पं० ७
४६—ललितविस्तर, पृ० १४१, पं० २०, पृ० ३६८, पं० १४
४७—वही, पृ० ३१२, पंक्ति १-१३
४८—शॉफ, वही, पृ० ३८
४९—प्लिनी, ३४, ४१



१२८



१२९



१३०



१३१

वालदार खुरदरे चमडे अथवा भारी ऊनी कोट उत्तर पश्चिमी भारत से पूर्वी अफ्रिका को भेजे जाते थे। कावेरी पट्टन में भी ऊनी कपडे बिकते थे। लातीनी में इस तरह की वस्तुओ को सामूहिक रूप से 'केपिली इडिकी'[५०] कहते थे। जाच पडताल से पता लगता है कि प्लिनी कथित चीनी लोहा, सूत और चमडे वास्तव मे चीन की पैदावार नही थे ये सब वस्तुए भारतवर्ष की थी जो पेरिप्लस के अनुसार खभात की खाडी मे हो कर सुमाली समुद्र तट के बदरगाहो को जाती थी[५१]। वार्मिगटन के अनुसार सिंध नदी के बार्बरिकन बदरगाह से जिन समूरो का निर्यात होता था उसमे कुछ तो मध्य एशिया के कौशेय पथ के सार्थवाहो द्वारा चीनी रेशम के साथ बलख होते हुए सिंध की ओर आते थे और कुछ तिब्बती समूर होते थे[५२]।

चीनी कपडे मौर्य युग में चीनसि[५३] नाम से विख्यात थे पर इस बात का अभी ऐतिहासिक प्रमाण नही मिला है कि इतने प्राचीन काल मे भी भारतवर्ष और चीन में भी व्यापारिक सबध था। हो सकता है कि ईसवी पूर्व के भारतीय साहित्य में शायद चीन से काफिरिस्तान, कोहिस्तान और दरद प्रदेशो से मतलब है जहा "शिना" बोली जाती है। भारत मे समूर के आयात का पता हमे महाभारत[५४] से भी लगता है।

कपडे की दूकाने

इस युग मे तरह तरह के कपडो की दूकाने होती थी। लेकिन उनमे कुछ ऐसी भी दूकाने होती थी जिनमे केवल एक ही प्रकार का कपडा मिल सकता था। प्राचीन शूर्पारक (आधुनिक सुपारा) मे कुछ ऐसी दूकानो का उल्लेख है जिनमे केवल काशी के वस्त्र (काशिक वस्त्रावारि[५५]) अथवा छपे हुए कपडे (फुट्टक वस्त्रावारि) मिलते थे[५६]। मदुरा मे बजाजा होने का भी उल्लेख है। यहा दूकानो मे तरह तरह के कपडे तथा ऊन और सूत की पेटिया जिनमे हर पेटी मे सौ लच्छे होते थे[५७] मिल सकती थी। कावेरी पट्टन में ऐसे बुनकर (कारुक) होते थे जो अपने काम के साथ ही साथ रेशमी तथा सूती कपडो और समूरो की दलाली भी किया करते थे[५८]।

५०—वार्मिगटन, वही, पृ० १५७
५१—शॉफ, वही, पृ० १७३
५२—वार्मिगटन, वही, पृ० १५८
५३—अर्थशास्त्र, पृ० ८१
५४—महाभारत, २, ५१, ८
५५—दिव्यावदान, पृ० २१, पंक्ति ४-५
५६—वही, पृ० २६, पंक्ति १, ७
५७—सिलप्पदिकार, १४, पं० २०८
५८—वही, ५, पं० ११०

साहित्य में भारतीय वेश-भूषा के उल्लेख

उत्तर भारत की वेश-भूषा—इस युग के साहित्य में भारतीय पहरावे का कम उल्लेख हुआ है। साधारणत. लोग धोती और दुपट्टा पहनते थे। काशी के बने धोती, दुपट्टे सारे भारत मे प्रसिद्ध थे[५९]। धोती दुपट्टे की जोड़ी (यमली) की कीमत कभी कभी एक लाख कार्षापण[६०] तक पहुच जाती थी। राजे महाराजे कुंदी किए हुए चौड़े किनारे वाले नये वस्त्र पहनते थे। (आहतानि वासांसि नवानि दीर्घ दशादि) ये वस्त्र उनके शरीर को पूर्ण रूप से ढँक लेते थे[६१]। यहां चौड़े किनारे वाले कपड़ों से शायद धोती और दुपट्टे से मतलब हो। पूरे शरीर ढँकने वाले वस्त्रों से शायद कंचुक से मतलब हो। बुनकर[६२] और किसान[६३] सन्नी धोती (शण शाटी) पहनते थे। छोटी धोती को प्रावरण पोत्री (गुजराती, पोत्युं[६४]) कहते थे। राजे पगड़ी भी (प्रवर मौलि पट्ट) पहनते थे[६५]। राजा के सिवाय मंत्री कंचुकी सेठ और पुरोहित भी पगड़ियां पहनते थे[६६]।

राजे कभी कभी सिले कपड़े जो शायद कंचुक रहे हों (चोडक-संघात-प्रत्यवरेण-वाससं) पहनते थे[६७]। राजमहल के अंगरक्षक और पहरुवे काषाय कंचुक पहनते थे[६८]। योद्धा भी कंचुक पहनते थे[६९] और उनकी छाती और बांह जिरह बख्तर से ढंके रहते थे। (मणिवर्म पंचांगोपेतम्[७०])। सुंदर रंगों से कपड़े रंगने की कला (वस्त्रराग[७१]) और सिलाई की कला[७२] सीखना इस युग में शिक्षा का एक आवश्यक अंग माना जाता था।

दक्षिण भारत की वेष-भूषा

प्राचीन तामिल साहित्य में ऐसे बहुत से उल्लेख है जिनसे इस युग मे दक्षिण भारत

५९—दिव्यावदान, पृ० २९, पंक्ति ९
६०—वही, पृ० २३६, पंक्ति ९-११
६१—वही, पृ० ३९८, पंक्ति २७-२८
६२—वही, पृ० ८३, पं० २१-२५
६३—वही, पृ० ४६३, पं० ८
६४—वही, पृ० २५६, पं० २६
६५—वही, पृ० ४२०, पं० ५-७
६६—भारतीय नाट्यशास्त्र, २३।१२६
६७—दिव्यावदान, पृ० ४१५, पं० ५-७
६८—भारतीय नाट्यशास्त्र, २३।१२६
६९—ललितविस्तर, पृ० ४७, पं० ७
७०—दिव्यावदान, पृ० ५४६, पं० १४
७१—ललित विस्तर, पृ० १७०, पं० १
७२—वही, पृ० १८९, पं० ७

की वेश-भूषा का पता चलता है। दक्षिणी राजे धोती और जडाऊदार टोपी पहनते थे[७३]। तामिल लोगो की वेश-भूषा उनके सामाजिक स्थान और जातियो को लेकर भिन्न भिन्न तरह की होती थी। शुद्ध तामिल समाज मे मध्यवर्ग के लोगो की पोशाक दो टुकडे कपडो की होती थी। एक टुकडा वे धोती की तरह पहनते थे और दूसरा सिर पर बाधते थे[७४]। अपने सिर के लबे बालो के वे सिर के ऊपर अथवा बगल में जूडे बाधते थे। बाल बाधने के फीते चमकीली फूदनेदार डोरियो और मनको के बने होते थे[७५]। नाग जाति का एक सरदार धोती पहने बतलाया गया है[७६]। अगरक्षक सिपाही कोट पहनते थे। यवन सिपाही जो राजमहल अथवा राजशिविर पर पहरा देते थे कचुक पहनते थे[७७]। युद्धक्षेत्र मे एक तामिल राजा के शिविर पर पहरा देते हुए यवन सिपाहियो का निम्नलिखित वर्णन तामिल साहित्य मे एक जगह आया है

"लोहे की सिकडियो से नयी हुई दोहरे कपडे की कनातो से युक्त एक खेमे पर कमर पेटी से बधे ढीले और लबे कोट पहने और अपने गभीर चेहरो से दर्शको के मन मे भय उत्पन्न करने वाले यवन सिपाही पहरा दे रहे थे। जिरह बख्तर पहने इशारे से बात करनेवाला एक प्रहरी सुदर दीप से आलोकित अतर गृह पर धीरे धीरे घूमते हुए रात भर पहरा दे रहा था[७८]।"

तामिल स्त्रिया एडी तक पहुचती साडी पहनती थी। कमर के ऊपर शरीर का नगा भाग चदन और सुगधित चूर्णो से सज्जित होता था[७९]। बार वनिताए केवल जाघो के मध्य तक पहुचती साडी पहनती थी जिसका पोत इतना महीन होता था कि शरीर नगा देख पडता था[८०]। जगली स्त्रिया हरी पत्तियो से बनी घघरिया पहनती थी[८१]।

७३—कनक सभाई, तामिल एट्टीन हड्रेड इयस एगो, पृ० ११०

७४-७७—वही, पृ० ११७

७८—वही, पृ० ३७ ३८

७९—वही, पृ० ११७

८०—वही,

८१—वही, पृ० ११८

आठवाँ अध्याय

गंधार, मथुरा और दक्षिण की कला में भारतीय वेश-भूषा

गंधार कला मे आयी उत्तर पश्चिम भारत की वेश-भूषा मिश्रित है। धोती, दुपट्टा, चादर और पगड़ी जैसे शुद्ध भारतीय पहरावे के साथ साथ हम गंधार कला मे पायजामा, अंगरखा, कंचुक और कुलाह भी देखते हैं जो उत्तरापथ के निवासियों के पहरावे के खास अंग हैं। गंधार के पहरावे मे यूनानी पहरावे का भी स्पष्ट प्रभाव है जो यूनानियों के साथ साथ इस देश मे पश्चिमी एशिया से आया मालूम पड़ता है।

राज पुरुषों का पहनावा

गंधार की मूर्तिकला मे राजे और सामंत एड़ियों तक लटकती सिलवटदार धोती तथा कंधों को ढकती तथा बायीं बाहु पर होती पीछे फिकी हुई चादर पहनते थे। चादर की सिलवटों को कड़ा बनाये रखने के लिए एक भारी वजन चादर मे पीछे बंधा रहता था (आ० १२५)[१]। चादर पहनने के इस तरीके मे कलात्मक रेखाएं और सिलवटें पड़ती थीं (आ० १२६)[२]। कभी कभी चादर छाती नही ढकती थी (आ० १२७-१२८)[३]। और कभी कभी वह पूरी छाती ढकती हुई केवल दाहिना कंधा खुला छोड़ देती थी (आ० १२९)[४]। बैठने मे चादर दाहिने कंधे और छाती को नही ढकती पर गोद में उसकी सुंदर सिलवटें देख पडती है (आ० १३०)[५]। डोरी या गोट के बने कमरबंद के दोनों झब्बेदार सिरे कमर से धोती को खिसकने से रोकने के लिए आगे लटकते रहते थे[६]। गंधार में उच्चवर्ण के लोग चट्टियां अथवा खड़ाऊं पहनते थे।। राजाओं के जूते रत्नजटित होते थे। कर्टियस के अनुसार राजा सुभूति ऐसे ही जूते पहनते थे[७]

पगड़ियां

कभी कभी खुले सिर पर जूड़े मोती की लड़ों और रत्नों से सजे होते थे[८], लेकिन बहुधा लोग जूड़े के ऊपर पगड़ी पहनते थे (आ० १३१-१३३)[९]। पगड़ियों के संबंध मे एक उल्लेख-

---

१—फूशे, ल' आर्त ग्रेकोबुधीक दु गंधार, भा० २, आ० ३९३, ४१७

२—फूशे, वही, आ० ४१६

३—फूशे, वही, आ० ४१५-१७

४—फूशे, वही, आ० ३९२

५—ए० एस० आई० एन० रि०, १९११-१९१२, प्ले० ४०, ११

६—फूशे, वही, आ० ४१५

७—हिस्टो० अले०, ९।१।५

८—फूशे, वही, आ० ३९२, ३९५, ४१८ इत्यादि

९—फूशे, वही, आ० ३९४, ३९६, ३९७

नीय वात यह है कि वे सिर पर टोपी की तरह पहनी जाती थी[१०]। एक दृश्य में जहा सिद्धार्थ हाभिनिष्क्रमण के लिए उद्यत है सारथि छदक उनकी वधी पगडी हाथ में लिए है[११]। यह पगडी किसी फूले कपडी की वनी है और उसका एक छोर पखे के आकार में है। पगडी के फेंटो के अस्त व्यस्त न होने देने के लिए उस पर एक शीर्षपट्ट भी लगा हुआ है। आज दिन भी पजाव और अफगानिस्तान में इस तरह की पगडी वाधी जाती है।

शीर्षपट्ट बहुधा अलकृत होते थे। कलकत्ता म्यूजियम मे जलालावाद के पास से मिले एक शीर्षपट्ट पर चूमते हुए मिथुन का चित्र है (आ० १३४)[१२]। शीर्षपट्ट कभी कभी सुपर्ण द्वारा अपहृत नाग के चित्र से भी अलकृत होता था (आ० १३५)[१३]। कभी कभी इस पर वुद्ध मूर्ति भी खचित होती है (आ० १३६)[१४]। कभी कभी गोल शीर्षपट्ट सिंहमुख से अलकृत होता है[१५]। कभी कभी इसके आकार से मोर के फैली पक्ष का वोध होता है। मोर की छाती और पीठ के उतार चढाव का उपयोग सुनार सुदर अलकार वनाने के लिए करते थे (आ० १३३)[१६]। पखे ऐसे फैले ऊपरी छोर के नीचे पगडी की फेंटे सजायी जाती थी। कभी कभी इसके तीन फेंटे होते थे[१७] और इसकी सजावट फेंटो के अदर से वीचो-वीच जाते हुए एक सिकुडे कपडे से और अधिक वढ जाती थी। शीर्षपट्ट या मिथुन से सुसज्जित आधार पगडी के वीचोवीच लगा हुआ है। रत्नो और गरुड मूर्तियो से खचित एक पट्टी ललाट के चारो ओर है। ये पट्टिया और अलकार दो वधनो से जिनके छोर पीछे हवा में फडफडा रहे हैं वधे है (आ० १३१)[१८]।

गधार की मूर्ति कला में पगडियाँ

१—चक्करदार लट्टू वाली पगडी (आ० १३७)[१९]।

२—हलकी पगडी जिनके दोनो छोर सिर पर आडे वल होते हुए पीछे खोंस दिये गए हैं (आ० १३८)[२०]।

१०—फूशे, वही, भा० २, पृ० १८६
११—फूशे, वही, भा० १, आ० १७८ ए०, १८० वी, भा० २, आ० ४४७
१२—फूशे, वही, भा० १, पृ० १८१, नो० ३
१३—फूशे, वही, भा० २, आ० ३२०, ३९८, ४१५
१४—फूशे, वही, आ० ३९९, ४२९
१५—फूशे, वही, आ० ३०६, ४९५
१६—फूशे, वही, आ० ३९७
१७—फूशे, वही, भा० १, प्ले० १
१८—फूशे, वही, भा० २, आ० ३९३ ९४
१९—ए० एस० आ० इ०, एन० रि०, १९१२-१३, प्ले० ६ ए
२०—वही, १९१५ १६, प्ले० २० ई०



१३२



१३३



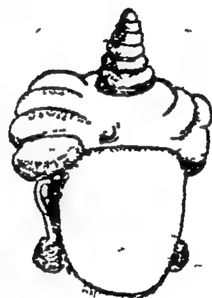
१३४



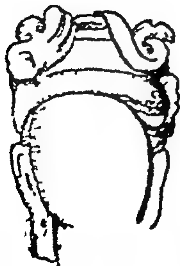
१३५



१३६



१३७



१३८



१३९



१४०



१४१



१४२

३—एक हलकी पगडी जिस पर एक तिकोना अलकार लगा है (आ० १३९)[२१]

४—एक हलकी मोटे फेंटो वाली पगडी जिसका सिर के ऊपर वाला सिरा पखाकार है (आ० १४०)[२२]

५—शीर्षपट्ट के साथ एक भारी पगडी जिसके लट्टू से एक एक मोती की लड दोनो ओर बधी है (आ० १४१)[२३]।

गधार की मूर्तिकला मे सेठ दाताओ को धोती, दुपट्टा और चादर पहने दिखाया गया है (आ० १४२)[२४]। यही पोशाक व्यापारियो[२५] और गृहपतियो की भी थी[२६]। सरदी मे वे कचुक पहनते थे जिसके दाहिने[२७] या बायें ओर[२८] घुटनो के ऊपर एक कटाव होता था। एक चुस्त बाहो वाले लवे कोट मे गले से ले कर छाती के मध्य तक अथवा नाभि तक एक खडी पट्टी का मतलब शायद तुकमा-घुडी की कतार से है[२९]। सहरी बहलोल से मिली एक दाता की मूर्ति एक चुस्त बाहो वाला कचुक पहने है। चादर का एक कोना दाहिने काख से निकाल कर बायें कधे पर डाल दिया गया है जिससे छाती ढक जाती है। वह एक चपकी टोपी भी पहने है (आ० १४३)[३०]। पुरुष शलवार भी पहनते थे जो इत्सिग के अनुसार ईरान, तिब्बत, काशगर और तमाम तुर्किस्तान के पहरावे का एक अंग था। समूरी अस्तर वाला चोगा कभी कभी कचुक के ऊपर पहन लिया जाता था (आ० १४४)[३१]

सिपाहियो की वेश-भूषा

गधार की मूर्तियो मे दो तरह के सिपाही मिलते है जिनकी पोशाकें भिन्न भिन्न होती है (आ० १४५-१५०)[३२]। एक तरह के सिपाही तो लगता है किसी जगली जाति के थे। धोती, पेटी, रस्सी का बना कमरबद और दाहिने कधे से छाती पर होते हुए कमरबद से खुसा दुपट्टा पहनते है (आ० १४५-१५०)। उनके बाल खुले अथवा पगडी से ढके होते है। एक

२१—वही, प्लेट जे
२२—वही, १९११-१२, प्ले० ४२, १७
२३—वही, प्ले० ४०, १२
२४—फूशे, वही, आ० ३५०
२५—फूशे, वही, आ० ४४०
२६—फूशे, वही, आ० ३४५, ३४६
२७—फूशे, वही, आ० ३४६
२८—फूशे, वही, आ० ३५१, ३५३
२९—वही, भा० २, आ० ३७०
३०—ए० एस० ई०, एन० रि०, १९११-१२, प्ले० ४१, १४
३१—फूशे, वही, आ० ३५२
३२—फूशे, वही, भा० १, आ० ३१, २०१, २०४, २६२

दूसरी तरह के सिपाही (आ० १४६-१४९)[३३] शीर्ष कटाह या खोद और असीरिय ढंग का जिरह बख्तर पहने हैं[३४]। फूशे का विचार है ये भाड़े के सिपाही पश्चिम से आते थे[३५]। यह अधवहियां जिरह बख्तर घुटनों तक पहुंचता है। कड़ीदार जिरह बख्तर छाती पर वाहुओं पर कस कर वैठता था और उसकी कड़ियां सेहरे के आकार की (आ० १४९)[३६] अथवा नग के आकार की (आ० १४८) होती थी[३७]। ये कड़ियां तिब्बती अथवा जापानी जिरह बख्तरों की तरह एक दूसरे से पतली डोरियों से बंधी होती थीं। वहोलियों (आस्तीनों) के किनारे मजबूती के लिए रस्सियों से बंधे होते थे। घघरियां चौकोर चिप्पियों की समानांतर पंक्तियों से बनी होती थीं और इनके किनारे रस्सियों से मजबूती के लिए बंधे होते थे। सिपाही कमरबंद और परतले भी पहनते थे। बख्तर का गला समभुज कोण (आ० १४९), अथवा अर्धवृत्ताकार होता था (आ० १४७)। इन बख्तरबंद सिपाहियों में हम दो प्रकार देख सकते है। इनमें एक तो पगड़ी कंचुक और धोती पहनता था (आ० १४९) और दूसरा यूनानी खोद और जूते। सिपाही कभी कभी जांघिया भी पहनते थे[३८]। पर जांघिया केवल सिपाहियों के पहरावे तक ही सीमित न था। समय आने पर सामंत और राजे भी उसे पहन सकते थे।

शिकारियों इत्यादि की वेश-भूषा

गंधार की मूर्तिकला में हमें शिकारी के दो वार दर्शन होते है (आ० १५१)[३९]। वह केवल धोती पहरे दिखाया गया है। खेतिहर (आ० १५२)[४०] अथवा मजदूर (आ० १५३)[४१] केवल एक छोटी धोती अथवा लंगोटी पहनते थे। पहलवान भी लंगोट ही पहनते थे[४२]। दंगल के वक्त शाक्य पुरुष जांघिया पहनते थे (आ० १५४)[४३]। ब्राह्मण और ब्रह्मचारी धोती और वाएं कंधे से लटकती चादर पहनते थे। उनके वाल पीछे लटकते थे पर सिर पर वद्ध शिखा होती थी (आ० १५५)[४४]।

३३—वही, आ० २०२
३४—असीरिय जिरह बख्तर से तुलना के लिए देखो स्टाइन, एंशंट खोतान, पृ० २५२, प्लेट० १६; रुइंस आफ डेसर्ट केथे, भा० १, पृ० ४४३, आ० १३८
३५—फूशे, वही, भा० २, पृ० ४०२
३६—फूशे, वही, भा० १, आ० २०२
३७—वही, भा० १, आ० २०४
३८—वही, भा० १, आ० २७०
३९—वही, भा० १, आ० १३८, १८७ वी
४०—वही, भा० १, आ० १७५-७६
४१—वही, भा० १, आ० २६६; भा० २, आ० ३०२
४२—वही, भा० २, आ० ३०३
४३—वही, भा० १, आ० १७२
४४—वही, भा० २, आ० ४३१

टोपियाँ

विदेशी टोपिया पहनते थे। एक कुलाहनुमा टोपी जिसके पेंदे में चारो ओर गोट लगी रहती थी कभी कभी सिर पर पुलखे तौर से पड़ी रहती थी (आ० १५६)[४५]। कभी कभी टोपी की चोटी पर फुदने होते थे और वह अर्धचद्र से भूषित होती थी। यह टोपी एक रूमाल से जिसके दोनो सिरे पीठ पर लहराते थे, सिर के साथ बंधी होती थी (आ० १५७)[४६]। एक गुंबद के आकार की टोपी जिसके सिरे पर सकरमुद्धीनुमा गाठ (सरकने वाली डेढ गाठ) पड़ी होती थी और जिसका किनारा मोतियो से सजा रहता था, पहनी जाती थी (आ० १५८)[४७]। कटावदार किनारे और गुम्मददार सिरे वाली टोपिया या खोद बहुधा विदेशी सिपाही पहना करते थे (आ० १५९)[४८]।

स्त्रियो की वेश-भूषा

गधार की कला मे स्त्रियो की वेश-भूषा के तीन कपडे स्पष्ट है—यथा आस्तीन वाले कचुक, साडी जो सारे शरीर को ढक लेती थी, और एक चादर अथवा दुपट्टा जो कधो को ढाँकता हुआ बाहुओ पर गिरता था (आ० १६०-१६१ ए० बी०)[४९]। कभी कभी चादर का एक छोर कमर में खोस लिया जाता था (आ० १६२-१६३)[५०]। भुरला प्राय घुटनो तक पहुँचता था (आ० १६४-१६५)[५१] और अपवाद स्वरूप कभी कभी वह आगे खुला भी रहता था (आ० १६६)[५२]। इस पूरी बाहो वाले और कमर के जरा नीचे पहुँचते हुए खुले कोट की काट ऐसी होती थी जिससे नाभि खुली रह जाय। ऐसा लगता है कि यह कोट बीच मे लगे एक बटन से बद होता था। कभी कभी यह कोट एक चौथाई बाँहो वाला होता था और नाभि तक पहुँचता था[५३]। एक दूसरी तरह का पूरी बाहो वाला कोट नाभि को ढक लेता था (आ० १६६)[५४]। कचुक साडी के ऊपर या नीचे पहना जाता था[५५]। कभी कभी साडी पहनने के दोनो तरीके साथ साथ देख पडते हैं (आ० १६७-१६८)[५६]। स्त्रियो के कचुक लबे और कसे होते

४५—वही, भा० २, आ० ३५४
४६—वही, भा० २, आ० ३५३
४७—ए० एस० आई० एन० रि०, १९११-१२, प्लें० ४०-५०
४८—ए० एस० आई० एन० रि०, १९१० ११, प्लें० ३२ सी०
४९—फूशे, भा० २, आ० ३३५, ३७८
५०—फूशे, वही, भा० २, आ० ३१८, ३१९
५१—फूशे, वही, भा० १, आ० १०६, भा० २, आ० ३१६, ३३६
५२—फूशे, वही, भा० २, आ० ३३५
५३—ए० एस० आई०, एन० रि०, १९१९-२०, प्लें० ६
५४—वही, १९२५-२६, प्लें० ६६
५५—फूशे, भा० १, आ० १३९-१४०, २४४ ४५, भा०, २, आ० ३१८-१९
५६—वही, भा० १, आ० १३३ बी


१४३

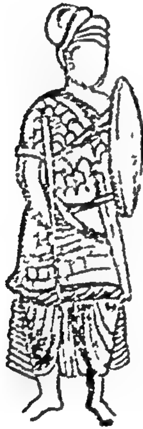

१४४


१४५


१४६

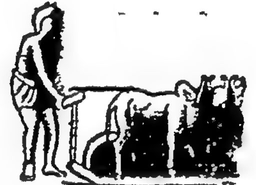

१४७

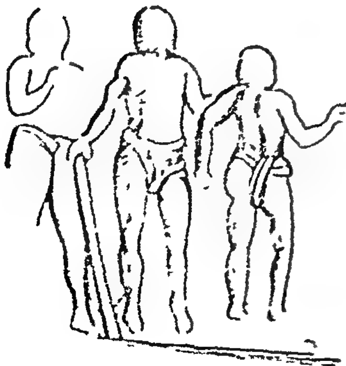

१४८

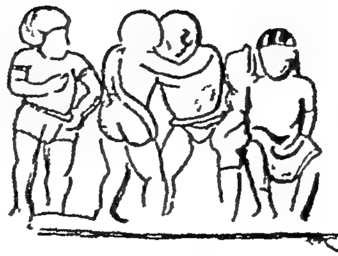

१४९


१५०

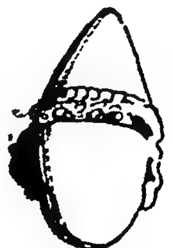

१५१


१५२


१५३


१५४

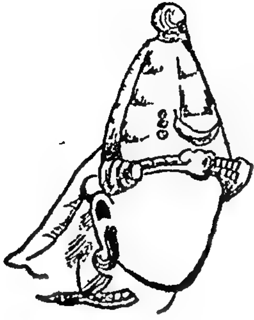

१५५


१५५

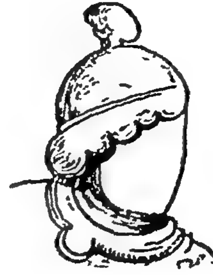
थे और उन पर सिलवटें पडती है (आ० १६९)[५७]। कभी कभी स्त्रियाँ स्तनपट्ट भी पहनती थी[५८]।

गधार की मूर्तियो और अर्धचित्रो से पता चलता है कि उस युग की स्त्रियाँ साडिया दो तरह से पहनती थी। प्राय साडी का एक भाग कमर में लपेट लिया जाता था और दूसरा हिस्सा चुन कर पीछे खोस लिया जाता था (आ० १६३)[५९]। साडी पहनने की दूसरी रीति में साडी का एक सिरा कमर मे लपेट लिया जाता था और दूसरा सिरा बायें कधे पर डाल दिया जाता था (आ० १६२)[६०]। कभी कभी साडी इतनी बडी होती थी कि वह पैरो और शरीर को ढक लेती थी और उसका खाली हिस्सा आगे (आ० १७०)[६१] या पीछे (आ० १७१)[६२] लटका रहता था। साडी पहनने की एक तीसरी रीति में (आ० १६१ ए० बी०)[६३] साडी का छुट्टा भाग स्तन पर होता हुआ बायें कधे पर काटे से लगा दिया जाता था। साडी का छुट्टा छोर कभी कभी साडी पर तिरछा डाल दिया जाता था जिससे दाहिना स्तन खुला रह जाता था (आ० १७२)[६४]। साडी ढीली तरह से भी पहनी जाती थी। ऐसी साडी का एक छोर जाघो में ऐसे लपेट लिया जाता था कि कमर खुली रह जाती थी। साडी का दूसरा छोर बायें हाथ से लिपटा हुआ उसी ओर लटका रहता था। साडी पहनने की इस रीति में बायी छाती और पीठ खुली रह जाती थी (आ० १६६)। इस बात के भी उदाहरण है जब साडी चादर की तरह बाया कधा ढाकते हुए पहनी जाती थी (आ० १७३)[६५]। दुपट्टा अथवा चादर अक्सर कधो पर डाल दिये जाते थे और उसका एक छोर कमर के पास फेंटे में खोस लिया जाता था। एक विचित्र ध्यान देने योग्य बात यह है कि गधार की स्त्रियाँ आधुनिक दक्षिणी स्त्रियो की तरह सकच्छ साडी पहनती थी। स्त्रियाँ अक्सर अपने बाल शेखरक से सजाती थी, पर यदा कदा वे भारी काम के मुकुट भी पहनती थ (आ० १७४)[६६]।

५७—वही, भा० २, आ० ३१८, ३७४
५८—फूशे, वही, भा० २, आ० ३१६
६०—वही, आ० ३१८-३१६
६१—फूशे, वही, भा० १, आ० १५२
६२—फूशे, वही, भा० १, आ० २६१
६३—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७८
६४—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७५
६५—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७७
६६—ए० एस० आई०, एन० रि० १६११-१२, प्ले० ४१, १६


१५७


१५८


१५९


१६०


१६१ ए


१६१ बी


१६२


१६३


१६४


१६५


१६६


१६७


१६८


१६९

यवनी अथवा विदेशी स्त्रियाँ राजा के अंगरक्षिका का काम करती थीं[६७]। गंधार की कला में उनका चित्रण हुआ है। इनकी वेश-भूषा दो तरह की होती है यथा यूनानी अथवा भारतीय। यूनानी पोशाक मे यवनियाँ घुटनो के कुछ ऊपर तक पहुँचता कंचुक तथा कमरबंद युक्त चुन्नटदार घाघरा पहनती है। कंधों पर पड़े दुपट्टे के दोनों सिरे कंचुक में लगी कड़ियों से निकलते है और स्तनों को ढाकते हुए कमरवंद मे खुस जाते है। वे कुलाहदार टोपियां भी पहनती हैं (आ० १७५)[६८]। दूसरी तरह की अंगरक्षिकाएं साड़ी पहनती है जिसका एक हिस्सा तो कमर से और दूसरा छुट्टा हिस्सा तिरछे वल छाती पर होता हुआ बाये स्तन को ढाकता है। वे शिखाकार बँधा हुआ एक ढीला कमरवंद और एक भारी चादर अथवा दुपट्टा भी पहनती हैं (आ० १७६)[६९]।

कुषाणयुग की मथुरा की मूर्तिकला में प्रदर्शित वेश-भूषा

पुरुषों की वेश-भूषा

मथुरा के कुषाणयुग की मूर्तिकला में तत्कालीन भारतीयों और विदेशियों की वेश-भूषा संबंधी प्रचुर सामग्री है। भारतीय प्राय: सकच्छ धोती, जिसका अधिक हिस्सा कमर मे लिपटा होता था और वायी ओर फदेदार हो जाता था, पहनते थे[७०]। वे कंधों पर होता तथा केहुनियों पर गिरता दुपट्टा और नाभि के पास खुसा और घुटनों के बीच लटकता पटका भी पहनते थे (आ० १७७)। कभी कभी उच्च वर्ण के नागरिक अपनी धोती खिसकने से वचाने के लिए शिखाकार मुद्धीवाला कमरबंद जिसका एक झब्बेदार छोर पैरों के वीच मे लटका करता था, पहनते थे। वे एक तरह का दुपट्टा भी पहनते थे जिसका एक सिरा वाये कंधे से पीठ पीछे होता हुआ तथा दाहिने घुटने को ढाकता हुआ फंदे के आकार का होकर वायी कलाई पर स्थिर हो जाता है (आ० १७८)[७१]। कभी कभी रस्सी की तरह बटा कमरवद ढीली तरह से पहना जाता था (आ० १७९)[७२]। दुपट्टे और कमरबंदों के पहनने के और वहुत से तरीके दिखाये गये है (आ० १८०-१८३)[७३]। कमरबंद के कई फेटों से बंधी लुंगी घुड़सवार, सईस इत्यादि पहनते थे (आ० १८४)[७४]।

६७—मेगस्थनीज, फ्रे० २३; स्त्रावो, १५।१।५५, सिलवांलेवी, ल थियेत्र आदियां, २६, १२६, २४६; अर्थशास्त्र, १, २१; जातकमाला, पृ० १८५

६८—फूशे, वही, भा० २, आ० ३४२

६९—फूशे, वही, भा० २, आ० ३४३

७०—फोगेल, ला स्कल्प्त्यूर द मथुरा, प्ले० ७, सी० डी०

७१—वही, प्ले०, ३५ वी०

७२—वही, प्ले० २१ वी०

७३—ए० एस० आई० एन० रि० १९११-१२, प्ले० ५७, आ० १२-१५

७४—फोगेल, वही, प्ले० ८ वी०



१७०



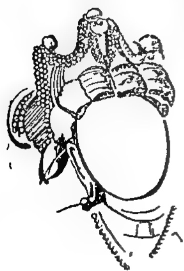
१७१



१७२



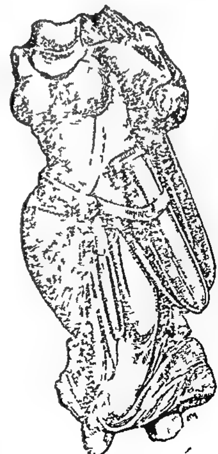
१७३



१७४



१७५

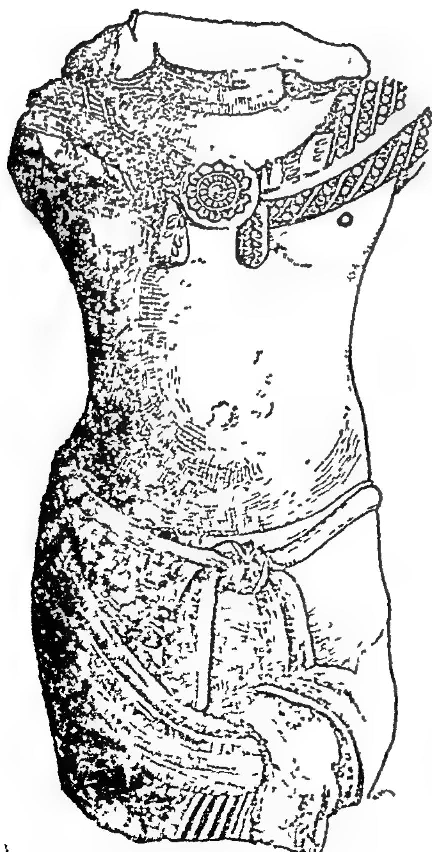


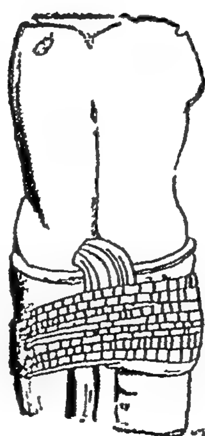
१७६

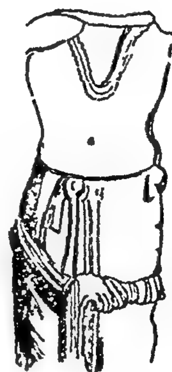

१७७

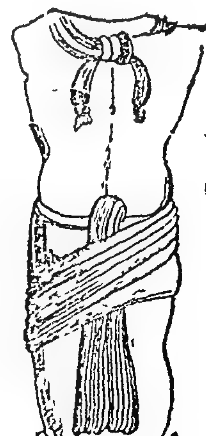

१७८


१७९


१८०


१८१


१८२


१७३

पगड़ियाँ

पुरुष प्राय पगडी अथवा उष्णीष पहनते थे। यह पगडी प्राय सादे कपडे की लंबी छोर या पट्टी से बनी होती थी और मस्तक पर जूडे के चारो ओर लपेट ली जाती थी (आ० १८५)[७५]। पर रईस लोग प्राय कामदार पगडी जिन पर सोने के वृत्ताकार शीर्षपट्ट लगे होते थे पहनते थे (आ० १८६)[७६]। कभी कभी शीर्षपट्ट चपकनदार और बदामा आकार के होते थे (आ० १८७)[७७]। कभी कभी फुल्लो से सजी एक धातु की पट्टी से लगा शीर्षपट्ट पगडी पर पहन लिया जाता था (आ० १८८)[७८]। कभी कभी बदामा शीर्षपट्ट कलगी जैसे आभूषण से सज्जित होता था (आ० १८९)[७९]।

एक दूसरे तरह के पहिरावे में जो शक राजाओ और सिपाहियो को प्रिय था कचुक, शलवार, टोपी और पूरे पैर के जूते होते थे। शको की प्रतीक वेश-भूषा का चित्र हमे मथुरा के पास माट से मिली कनिष्क की बे सिर वाली मूर्ति से मिलता है। मूर्ति का दाहिना हाथ गदा पर और बायाँ तलवार की मठ पर है। घुटने के नीचे तक पहुचता कचुक एक कमरपेटी से जिसके दो चौकोर टिकरे सामने देख पडते हैं बधा है। कमरपेटी का बाकी हिस्सा एक चोगे से जो कचुक से बडा है और घुटनो के नीचे तक पहुचता है ढका हुआ है। कचुक और चुगा सादे कपडे के बने मालूम पडते हैं। मूर्ति के तस्मेदार भारी बूट हमारा ध्यान खीचते हैं (आ० १९०)[८०]। ऐसे जूतो को बृहद् कल्पसूत्रभाष्य में कफुस्स कहा गया है जो ईरानी कफ्स का अपभ्रंश मात्र है।

मथुरा में मिली एक दूसरे शक राजा की मूर्ति एक कचुक पहने है जिसमें छाती के नीचे तीन इच चौडी दोहरी कामदार गोट घुटनो से होती हुई नीचे चली गयी है। दाहिनी मोहरी में भी ऐसी ही गोट लगी है। पूरे कचुक में जामदानी मलमल की तरह फुल्ले और दाहिनी मोहरी के सिरे पर तीन इच व्यास का एक उभरा वृत्त है। आधुनिक कोट की तरह कचुक के दोनो भाग गले के ठीक नीचे जुट कर कुछ नीचे जुटते हैं, पर इस कचुक और आधुनिक कोट में यह अतर है कि कचुक मे न तो गला है न लौटन (लेपल्स)। ऐसी अवस्था में गले के स्थान पर एक त्रिभुजाकार कटाव पड जाता है जिसमे से हम गले के चारो ओर पतली सिलाई वाला नीचे का वस्त्र देख सकते है। बूट आगे ऊपर तक तीन इच चौडी पट्टियो से

७५—स्मिथ, जैन स्तूप ऑफ मथुरा, प्ले० १६, २

७६—वही, प्ले० १०१, १

७७—वही, प्ले० ६४

७८—फोगेल, वही, प्ले० ३६ बी०

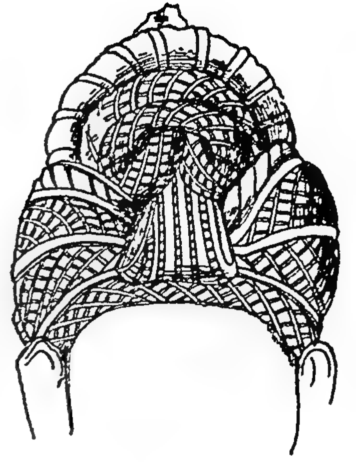
७९—अग्रवाल, हैंडबुक ऑफ दि कर्जन म्यूजियम ऑफ ऑर्कियोलोजी, मथुरा, प्ले० १६, ३३

८०—ए० एस० आई०, एन० रि०, १९११-१२, पृ० १२२, प्ले० ५३, ३

८१—बृहद् कल्पसूत्र भाष्य


१८४


१८५


१८६


१८७


१८८


१८९


१९०

सजे है। एडी से जरा हट कर एक तस्मा है। जूतो के साथ रकाब जैसी वस्तु भी लगी है (आ० १९१)[८२]।

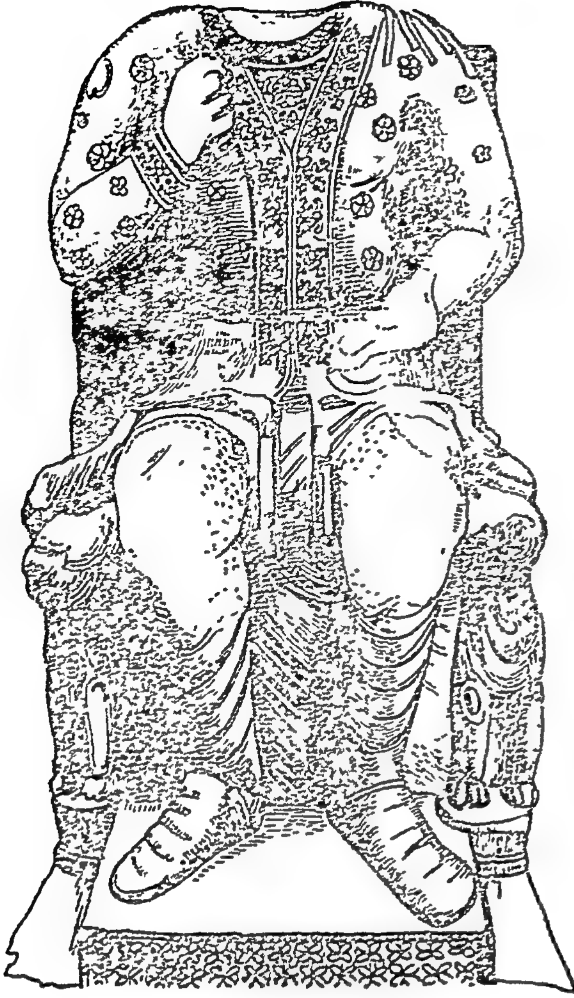
मथुरा की मूर्तिकला में एक और तरह का कचुक आया है जो घुटने तक पहुँचता है (आ० १९२ ए० बी०)[८३]। यह कचुक कारचोबी गोट से सजा है। कमरपेटी गोल और चौखूटे टिकरो से बनी है। टिकरे अलकारिक मत्स्य और कुलाह पहने अश्वारोहियो की आकृति से सजे है। ये दोनो अलकार कुषाणयुग मे साधारणत व्यवहार में आते थे[८४]।

मथुरा से मिली सूर्य की एक बैठी प्रतिमा एक छोटी वहोलियो वाला तथा शरीर और बाहुओ पर चुस्ती मे बैठने वाला कचुक पहने है (आ० १९३)[८५]। इसका गला गोल है तथा मोहरियो पर किनारेदार गोट है। कचुक के बीच में भी ऊपर से नीचे तक गोट लगी है। दोहरे फँटे वाले कमरबद में एक छुरा खुसा है। टोपी पर गथा हुआ काम है।

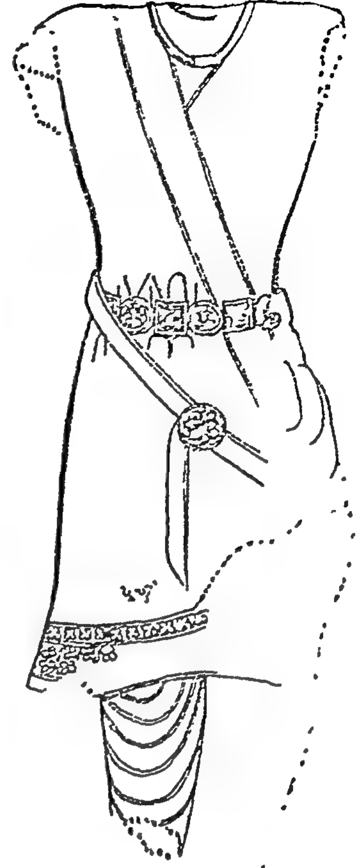
एक दूसरी मूर्ति जो दाढी और घुघराले बाल से एक शक अथवा ईरानी की मूर्ति प्रतीत होती है एक गहरा काम किया हुआ कचुक पहने है। कारचोबी के अलकार मेहराबदार खानो में बने है। बुदकीदार (Beading) अथवा डोरीदार काम एक बिचले खाने को जिसके चारो ओर सीधी और खडी रेखाओ और बिंदुओ से छोटे खाने भरे हुए है, घेरे हुए है। रूमाल पीठ पर गिरता हुआ दिखलाया गया है, और इसके दोनो सिरे छाती पर बायी ओर पहने हुए एक दूसरे छेद से निकाल दिये गए है। कुलाहनुमा टोपी के किनारे पर काम किया हुआ है उसके दाहिनी ओर चद्रमा और सूर्य की प्रतिकृतिया बनी हुई है (आ० १९४)[८६]।

विदेशी ईरानी अथवा शक प्राय टोपिया पहनते थे। मथुरा से मिला हुआ एक मूर्ति का सिर एक कुलाहनुमा टोपी, जो सिरा जरा आगे झुकने से पीछे की ओर टेढी पड जाती है पहने है। (आ० १९५)[८७]। टोपी के बायें हिस्से पर सकेत नाम (मोनोग्राम) जैसा कसीदा किया हुआ है। टोपी नमदे अथवा कपडे के दो टुकडो को सी कर बनी है। टोपी मे यह सिलाई सिरे से लेकर नीचे तक साफ साफ दिखलायी देती है। टोपी का किनारा एक गोट से जिसमें छोटे छोटे टुकडो की तीन पक्तिया है सजा है। शायद इन टुकडो से रत्नो का मतलब हो (आ० १९६)[८८]। एक कुलाहनुमा टोपी जिसका सिरा पीछे की ओर झुकने से

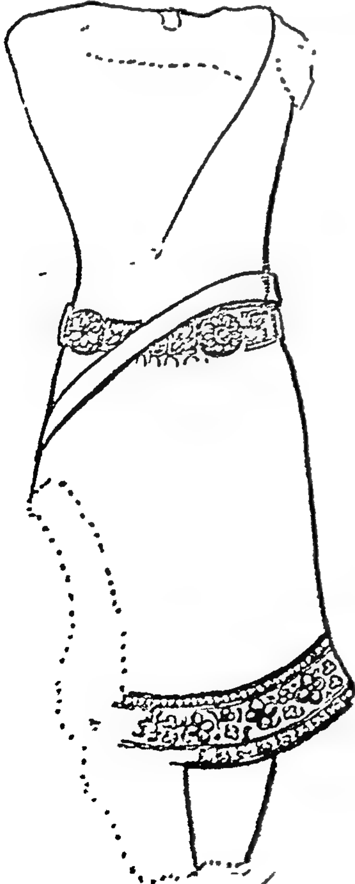
८२—ए० एस० इ० रि, १९११-१२, पृ० १२४, प्ले० ५४, ४-६
८३—वही, प्ले० ५५, ७ ८
८४—वही, पृ० १२५
८५—वोगेल, वही, प्ले० ३३ बी०
८६—वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, प्ले० २१, आ० ६१
८७—फोगेल, वही, प्ले० ४ ए०
८८—वही, प्ले० ४ बी०



१११



११२ ए०



११२ बी०



११३


१९४


१९५


१९६


१९७


१९८


१९९


२००

उसमें कुछ वल आ गया है अक्सर पहनी जाती थी (आ० १९७)[८९]। टोपी के दाहिने ओर एक अर्धचन्द्र वना है और वायीं ओर एक अलंकार है जो मोनोग्राम सा लगता है (आ० १९८)[९०]। इस टोपी का आधुनिक मिस्र और भारत मे पहने जाने वाली तुर्की टोपी से काफी साम्य है।

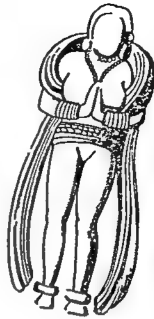
एक दिल्लीवाल पगड़ीनुमा टोपी भी पहनी जाती थी। इस टोपी की छत तो अर्धवृत्ताकार है और छज्जा उलटा हुआ है (आ० १९९)[९१]। इस टोपी की वनावट अजंटा में ईरानियों की टोपी की वनावट से वहुत मिलती है। आज दिन भी भारत का पारसी समाज ऐसी ही टोपी पहनता है। दिल्लीवाल पगड़ी भी लगता है इसी टोपी से निकली है। सूर्य की मूर्ति एक विचित्र टोपी पहने है (आ० २००)[९२]। टोपी की छत गोल और चपटी है। और पूरी टोपी ज्यामितिक आकृतियों और पुष्पालंकारों से सजी है।

मथुरा की मूर्तिकला में स्त्रियां प्राय. एड़ी तक पहुंचती साड़ियां जिनके ऊपर स्थान-च्युत होने से वचाने के लिए अनेक लड़ों वाली करधनियां होती है, और तहदार दोनों कंधों को ढंकते हुए नीचे लटकने वाले दुपट्टे पहिनती थीं (आ० २०१-०४)[९३]। लेकिन अक्सर दुपट्टा नहीं भी पहना जाता था। उसे उमेठे हुए कमरवंद से कमर के दोनों ओर फंदे पड़ते हुए वांधा जाता था। साड़ी की खूवसूरती इससे वढ़ जाती थी (आ० २०५)[९४]। कभी कभी कमरवंद का लंवा सिरा कमर से वांध लिया जाता था और झब्बेदार छोटा सिरा सामने लटकता हुआ छोड़ दिया जाता (आ० २०६)[९५] था। कभी कभी कमरवंद दोहरा कर के उसका निचला भाग कमर में नाभि के पास खोंस लिया जाता था और उसमें दोनों सिरे खाली छोड़ दिए जाते थे (आ० २०७)[९६]। दूसरी जगहों में कमरवंद के झब्बेदार सिरे मोड़ कर दायी ओर खोंस लिए जाते थे और तव कमरवंद के कुछ भाग को मोड़ कर नाभि के पास साड़ी मे खोंस लिया जाता था। कमरवंद का छुट्टा सिरा वायें हाथ में जान वूझ कर पकड़ लिया जाता था (आ० २०८)[९७]। पटका पहनने की भी वहुत सी रीतियां थी (आ० २०९-२१२)[९८]।

८९—वही, प्ले० ४ सी०
९०—वही, प्ले० ४ डी०
९१—अग्रवाल, वही, प्ले० १३, आ० २६
९२—फोगेल, वही, प्ले० ३३ वी०
९३—फोगेल, वही, प्ले० ७ ए० और वी०
९४—वही, प्ले० १६ वी०
९५—वही, प्ले० ५० ए० वी०
९६—वही, प्ले० १७ ए०
९७—वही, प्ले० १८
९८—वही


२०१


२०२

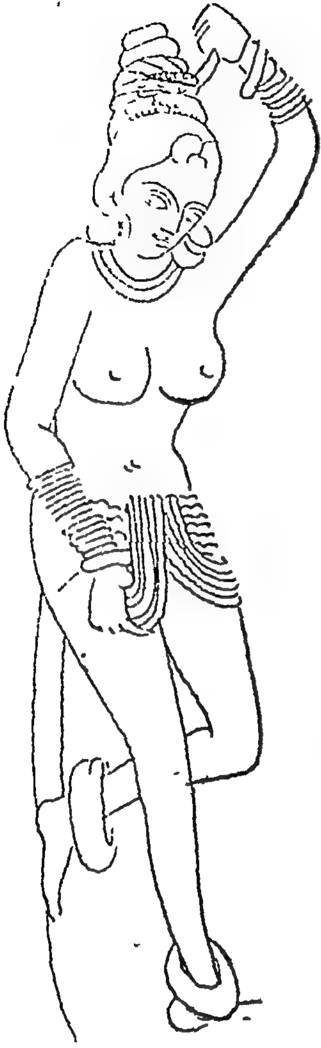

२०३


२०४


२०५

२०६

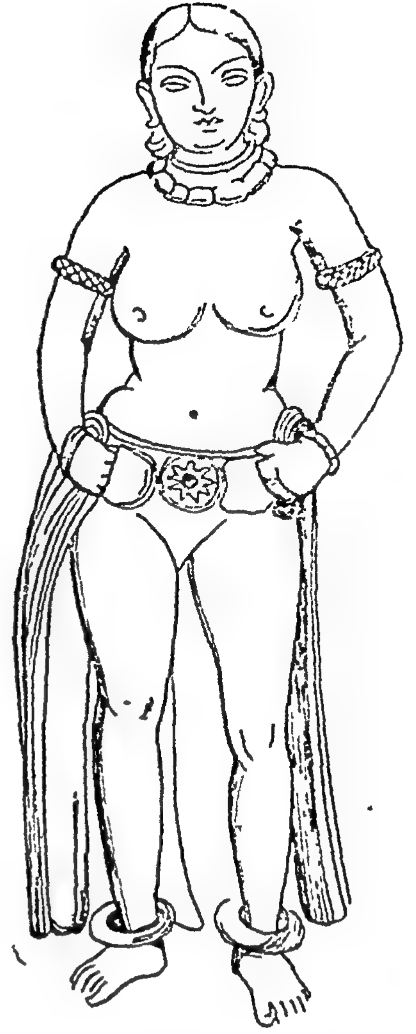

२०७



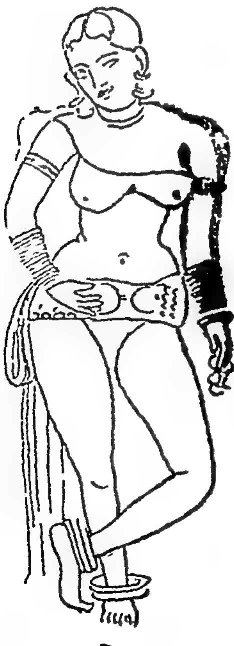
२०७

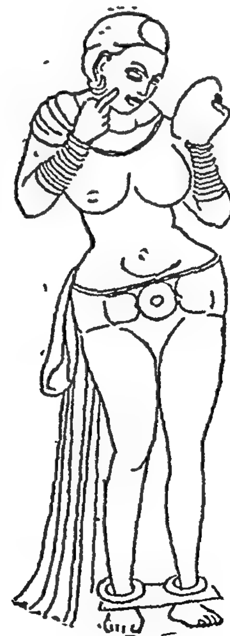


२०८



२०९





२११

मध्यकालीन उत्तर और पश्चिम भारत मे स्त्रिया प्राय लहगा पहनती थी और आज दिन भी पश्चिमी युक्त प्रान्त, राजपूताना, मालवा तथा गुजरात मे यह प्रथा जारी है। जहा तक हमे पता चलता है सब से पहले लहगा कुषाणयुग की मूर्तिकला में दीख पडता है। इस युग की मूर्तियो मे आये वेश-विन्यास से यह प्राय निश्चित हो जाता है कि लहगा पहनने की प्रथा साधारण न हो कर अपवाद स्वरूप थी। ऐसा लगता है कि इस युग मे ग्वालिने और उन्ही की श्रेणी की स्त्रिया लहगा पहनती थी। मथुरा मे जमालपुर के पास से मिली एक स्त्री मूर्ति शायद ग्वालिन की है (आ० २१३)। वह दाहिने हाथ से बेंत की बनी गेडुरी पर स्थिर सिर पर घडा पकडे है। नाभि के जरा नीचे तक उसका शरीर अनावृत है पर उसके बाद लहगा शुरु होता है यह लहगा वैसा भारी भरकम नही है जैसा आज दिन भी मथुरा के आसपास पहना जाता है। इसमें उतनी कलिया भी नही है। लहगा कमर पर सीधा है और निचले भाग में केवल एक घेर पडता है। लहगे का बडा जोड ओर से छोर तक ठीक बीचोबीच हो कर जाता है।

मथुरा की स्त्रिया, कम से कम जैसा उनका मथुरा की मूर्तिकला में प्रदर्शन हुआ है, कचुक या चोली नही पहनती। लेकिन इसके अपवाद स्वरूप आपानक दृश्यो में स्त्रिया सिले कपडे पहने दिखलायी गयी है। ये स्त्रिया कमर तक कसा कचुक जिनका घेर चुन्नदार होता है (आ० २१४-२१५)[९९] पहनती है। मथुरा से मिले एक मूर्ति के पादपीठ पर जिस पर कुषाण सवत् का उन्यासीवा वर्ष है, अकित कुछ स्त्री मूर्तिया कचुक पहनती है। कचुक के ऊपर वे साडी भी पहनती है। इस साडी का एक भाग तो वह कमर में लपेट लेती थी और उसका दूसरा भाग बायें स्तन को ढाकते हुए बाये कधे पर डाल लेती थी (आ० २१६)[१००]। साडी पहनने का यह ढग गधार में साडी पहनने के ढग से मिलता जुलता है। हो सकता है ये स्त्रिया गधार की ही हो।

खूब कामदार कचुक शक अथवा ईरानी स्त्रिया कभी कभी पहनती थी। मथुरा के पास जमालपुर के टीले मे मिले हुए एक वेदिकास्तभ पर, जो अब लखनऊ म्यूजियम में है, धपदानी लिए हुए दाहिनी ओर जाती हुई एक स्त्री का चित्र है (आ० २१७)[१०१]। वह लौटे हुए छज्जो वाली एक टोपी और पैर तक पहुचता एक कचुक पहने है। कचुक के बीच में गले से लेकर अत तक एक पट्टी या गोट है। लेकिन इस कचुक की सब से खास बात तो उस पर कसीदा किये अथवा बुने हुए अलकार है। पूरा कचुक का कपडा बारह पडी पट्टियो में बधा हुआ है जिनमें शाखें और फुल्ले बने हुए है। कोई भी प्रतिकृति इस अलकार

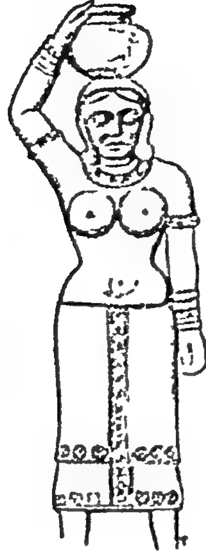
९९—वही, प्लेट० ४७, आ० ए०

१००—वही, प्लेट० ६० बी०

१०१—स्टेला क्रामरिश, ग्रुन्त्सुगे डर इडिशेन कुन्स्ट प्लेट० १९



२१२



२१३



२१४



२१७



२१५



२१६

की खूबसूरती नही दिखला सकती। लगता है कचुक का कपडा वही पुप्पपट्ट है जिसका उल्लेख इस काल के साहित्य में आता है ।

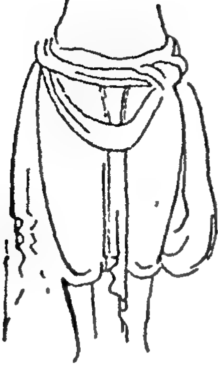
जैसा कि मथुरा की मूर्ति कला से पता चलता है स्त्रिया अपने सिर इसलिए नही ढाकती थी कि लोग उनकी सुदर केश रचना देख सके। लेकिन कुछ स्त्रिया पीछे लहराती ओढनी भी ओढती थी[१०२]। एक जगह एक परिचारिका लटट्दार पगडी[१०३] जिसका सिरा पीछे लटक रहा है पहरे देख पडती है। एक दूसरी स्त्री पाग पहने है (आ० २०७)[१०४]।

दक्षिण भारत की वेश-भूषा

जैसा हम देख आये है इस युग में दक्षिण भारत की वेश-भषा का आनुशगिक रूप से उल्लेख हम दक्षिण के सगम युग के साहित्य में पाते हैं। यह हमारा भाग्य है कि अमरावती नागार्जुनी कोडा, और गोल्ली से मिले हुए अर्धचित्र तत्कालीन आचार विचार और वेश-भूषा को अक्षुण्ण बनाये रखते है। इन अर्धचित्रो से हम तत्कालीन वेश-भषा का जीता जागता चित्र सोच सकते है। अर्धचित्रो में अकित दक्षिण भारत के लोग उत्तर भारत के लोगो की तरह एडी के जरा ऊपर तक पहुचती धोती पहनते है। एक चुना हुआ अश नाभि के पास कमर मे खोस लिया जाता है और लाग पीछे खोस ली जाती है (आ० २१८)[१०५]। धोती पहिरने के दूसरे ढग मे धोती घुटनो तक पहुचती है (आ० २१९)[१०६]। तीसरी रीति में चुना हुआ धोती का अश जाघो के बीच से होकर पीछे खोस लिया जाता था (आ० २२०-२२१)[१०७]। कमरबद बाधने की अनेक कलात्मक रीतिया थी। एक रीति में कमरबद का एक फेटा दोनो सिरो को छोड कर बाध लिया जाता था, दूसरा फेंटा मोड कर कमर पर खोस लिया जाता था (आ० २२०)। एक दूसरी रीति में कमरबद का एक फेंटा बाध लिया जाता था और छुट्टा हिस्सा मोड लिया जाता था, दूसरा हिस्सा पहले फेटे से तीन फेरे निकाल कर लटका दिया जाता था (आ० २२२)[१०८]। तीसरी रीति में कमरबद एक फेटे का होता है और इसके छुट्टे सिरे मोड कर कमर के अगल बगल खोस लिये जाते है (आ० २१८)। चौथी रीति में कमरबद के एक सिरे की दाहिनी ओर सकरमुद्धी बना ली जाती है इसका एक सिरा तो

१०२—स्मिथ, वही, प्लें० ३८-३५
१०३—वही, प्लें० १४
१०४—फोगेल, वही, प्लें० १७ ए०
१०५—फर्गुसन, वही, प्लें० ६५, आ० ३
१०६—वही
१०७—वही, प्लें० ७४, ८३, २
१०८—वही, प्लें० ६१-३

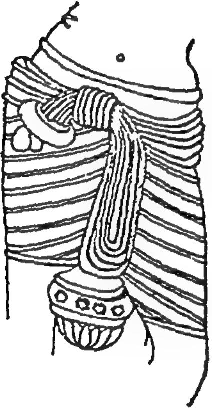

२१८

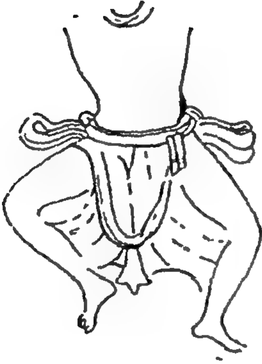

२१९


२२०


२२१


२२२


२२३


२२४


२२५


२२६


२२७


२२८


२२९


२३०


२३१

लटका करता है और दूसरा बायें हाथ में होता है[१०९]। एक पाचवे तरह का कमरबद रस्सियो का बना होता है जिसके दोनो सिरो पर फब्वे होते हैं (आ० २२३)[११०]। नाचने की मुद्रा में कमरबद के इन मोडो से नर्तक की सादी वेश-भूषा में एक गति आ जाती थी (आ० २२४)[१११]।

दुपट्टे या चादर पहनने की रीति कम थी। छाती पर तिरछा जाता हुआ और बायें कधे पर पडा हुआ दुपट्टा कभी कभी देख पडता है (आ० २२५-२६)[११२]। कभी कभी कटा हुआ दुपट्टा परतले की तरह छाती पर पहरा जाता था (आ० २२७)[११३]। दुपट्टा कभी कभी गले और कधो पर भी डाल लिया जाता था (आ० २२८)[११४]।

दक्षिण भारत में अनेक तरह के शिरोवस्त्र भी पहने जाते थे। पगडिया ढीले तौर, स दो या तीन फेरो में बाध ली जाती थी और उनके बीच में धातु का बना शीर्षपट्ट लगा होता था (आ० २२९)[११५]। एक दूसरी तरह की अटपटी पगडी मे एक सिरा नीचे झुका हुआ और एक ऊपर उठा हुआ दिखलाया गया है (आ० २३०)[११६]। एक तीसरे तरह की पगडी चक्करदार बधी हुई है और उसके सिरे पर मोरपख जैसा आभूषण है (आ० २३१)[११७]। चौथी तरह की पगडी ढीली बधी है और उसका पखानुमा फैलता हुआ एक सिरा पगडी में खुसा है (आ० २३२)[११८]। पाचवी तरह की पगडी में उसके दोनो छोर शीर्षपट्ट के पेंच से निकाल कर जूडे के साथ बाध दिये गये हैं (आ० २३३)[११९]। छठी तरह की पगडी में इसके दोनो छोर उस पर लगे दो छल्लो से निकाल दिये है (आ० २३४)[१२०]। सिर से चपकी हुई छोटी गोल पगडी सरपेंच के साथ पहनी जाती थी (आ० २३५)[१२१]। अमरावती के अर्धचित्रो मे निम्नलिखित तरह की पगडिया मिलती हैं—

१—तीन कुल्ले वाली पगडी जिस पर शायद एक पख खुसा है (आ० २३६)[१२२]।

१०९—शिवराम मूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम, प्ले० ८, २५
११०—शिवराम मूर्ति, वही, प्ले० ८, ३१
१११—लागहर्स्ट, दी बुधिस्ट एंटीक्वीटीज फ्रॉम नागार्जुनीकोंड, प्ले० २२ ए०
११२—वही, २१ ए० और ४६ ए०
११३—वही, प्ले० ४० ए०
११४—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ६
११५—फर्गुसन, वही, प्ले० ७४
११६—वही, प्ले० ८६, २
११७—वही, प्ले० ८४, २
११८—वही, प्ले० ८३, १
११९—लांगहर्स्ट, वही, प्ले० २३ बी०
१२०—वही, प्ले० २१ बी०
१२१—फर्गुसन, वही, प्ले० ७४
१२२—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ७, १



२३२



२३३



२३४



२३५



२३६



२३७



२३८



२३९



२४०



२४१



२४२



२४३



२४४



२४५



२४६



२४७



२४८



२४९



२५०

२—नीची पगडी जिसके चारो ओर एक दोहरी पट्टी का आभूपण है (आ० २३७)[१२३]।

३—साफ सुथरे ढग से तीन फेंरो में बधी पगडी जिस पर शीर्पपट्ट है (आ० २३८)[१२४]।

४—अटपटी पगडी जिसमें शायद दो चौरिया खुसी है (आ० २३९)[१२५]।

५—अटपटी पगडी जो एक सरदल पट्टी में लगे फिरकीनुमा आभूपण से अलङ्कृत है (आ० २४०)[१२६]।

६—वहुत से लट्टू पडती हुयी पगडी, आगे शिरो भूपण है, पीछे चौकोर कघी जैसी कोई वस्तु (आ० २४१)[१२७]।

७—गोल पेचदार पगडी, इसका एक छोर गोल शीर्पपट्ट से निकलता दिखलाया गया है (आ० २४२)[१२८]।

८—गोल दिल्लीवाल पगडी जैसी चपकी पगडी जिसमें पर खुसे है (आ० २४३)[१२९]।

९—चक्करदार ऊची पगडी (आ० २४४)[१३०]।

दक्षिण में धातु निर्मित ऊची ढालदार टोपिया भी इस युग में पहनी जाती थी। ऐसी टोपी वहुधा रेखाओ और वृत्तो से अलङ्कृत होती थी और उसमे दोनो ओर भव्वे लगे होते थे (आ० २४५)[१३१]। एक दूसरी तरह की टोपी मोरपखो से सजी होती थी और उसमें सामने की ओर एक पान के आकार का अलकार लगा होता था (आ० २४६)[१३२]। एक विचित्र तरह की टोपी की शकल चायदानी के ढक्कन जैसी है, ढक्कन से चारो ओर अर्धवृत्त निकल रहे है (आ० २४७)[१३३]। यह छोटी टोपी सिर पर ठीक बीचोबीच रखती है। एक टोपी में उलटा हुआ कटावदार छज्जा है[१३४]। दक्षिण में आए हुए विदेशी चपटी टोपिया

१२३—वही, प्ले० ७, २
१२४—वही, प्ले० ७, ३
१२५—वही, प्ले० ७, ४
१२६—वही, प्ले० ७, ६
१२७—वही, प्ले० ७, ७
१२८—वही, प्ले० ७, ९
१२९—वही, प्ले० ७, ११
१३०—वही, प्ले० ७, १४
१३१—फर्गुसन, वही, प्ले० ८६
१३२—वही, प्ले० ७२, २
१३३—वही, प्ले० ७२, २
१३४—वही, प्ले० ७४

पहनते थे। इसमें एक टोपी का छज्जा ऊपर की ओर मुड़ा हुआ है (आ० २४८)[१३५]। दूसरी कुलाहनुमा टोपी का छज्जा लहरियादार है (आ० २४९)[१३६]। एक कंचुकावृत मनुष्य कंटोप-नुमा टोपी पहने है (आ० २५०)[१३७]। कभी कभी इस टोपी मे गोल शीर्षपट्ट भी लगा होता था (आ० २५१)[१३८]।

कंचुक पहने हुए मनुष्य, जो शायद दक्षिण में सिकंदरिया से आये यवन है, अपने सिर रूमाल से ढांकते थे, जिसका एक सिरा ठुड्डी के नीचे से होता हुआ सिर के दूसरी ओर खोंस लिया जाता था। इस तरह दोनों कान ढक जाते थे (आ० २५२-२५३)[१३९]।

इस युग में ठेठ दक्षिण भारत के उच्चवर्णो मे कंचुक पहनने की प्रथा नहीं थी। राजे, बड़े राज कर्मचारी तथा सामंत कंचुक नहीं पहनते थे। सेवक, गायक, वादक तथा विदेशी गोल गले वाला तथा पूरी तथा कसी बाहों वाला कंचुक जो कमर तक पहुंचता है, पहनते थे। कंटोपा, धोती तथा रूमाल के साथ कंचुक पहनने की प्रथा थी (आ० २५०)। यह पगड़ी, दुपट्टा और धोती के साथ भी पहरा जाता था (आ० २३२)। शरीर के साथ यह कमरबंद से जकड़ा होता था (आ० २५०)। कभी कभी ढीले बाहों वाला घुटनों के जरा नीचे तक पहुंचता कंचुक टोपी और चूड़ीदार पाजामा पहना जाता था (आ० २५४)[१४०]। पालकी उठाने वाले आधी बाहों वाला कसा कंचुक कमरबंद के साथ पहनते है (आ० २५२)। एक ऐसा ही बिना बाहों वाला कंचुक पहने एक दूसरा वाहक दिखलाया गया है (आ० २५२) एक दूसरा आदमी जो विदेशी मालूम पड़ता है एक आधी जांघों तक पहुंचता पूरी बाहों वाला किसी धारीदार कपड़े से बना कंचुक पहने दिखलाया गया है (आ० २५३)। घोड़े की रास पकड़े हुए एक साईस एक विचित्र तरह का कोट पहने है जिसकी तुलना अंग्रेजी टेल कोट से की जा सकती है। कोट अधबहियां है और उसका बायां पख (फ्लैप) दाहिने पख पर चढ़ता हुआ दिखलाया गया है। चार फेंटे वाले कमरबंद से यह कोट शरीर से जकड़ा है (आ० २५५)[१४१]। ग्वाले और इसी तरह के दूसरे व्यवसायी जांघिया पहनते हैं (आ० २५६)[१४२]। यह जांघिया सकरमुद्धीदार कमरबंद से बंधी रहती है।

१३५—वही, प्ले० ६९

१३६—वही

१३७—वही, प्ले० ७३, २

१३८—लांगहर्स्ट, वही, प्ले० २८, सी०

१३९—फर्गुसन, वही, प्ले० ८४, तथा ८३, १

१४०—वही, प्ले० ८३, २

१४१—आर० एस० आई० एन० रि०, १९०८-१९०९ प्ले० ३०

१४२—फर्गुसन, वही, प्ले० ५७


२५१


२५२


२५२


२५३


२५४


२५५


२५६


२५७


२५८


२५९


२६०


२६१


२६२

दक्षिणी स्त्रियों की वेश-भूषा

इस युग में दक्षिणी स्त्रियां बहुत हल्के कपड़े पहिनती थीं कमर के ऊपर शरीर का भाग खुला रहता था, साड़ी एंडी के ऊपर तक पहुंचती थी, इस पर करधनी और कमरबंद, जिसका एक छुट्टा हिस्सा आगे लटका रहता था और दूसरा मुड़ा हुआ हिस्सा आगे लहराया करता था, होते थे (आ० २५७)[१४३] । एक दूसरी जगह सकरमुद्धीदार कमरबंद करधनी का स्थान ग्रहण कर लेता है। (आ० २५८)[१४४] । कभी कभी स्त्रियां साड़ी के ऊपर करधनी, पटके और कमरबंद तीनों पहनती थीं। फेटे के दोनों सिरे मुड़े होते थे और कमरबंद की फेरेदार गांठ कमर के बायें ओर लगी रहती थी । सिर पर पगड़ीके आकार का कोई वस्त्र होता था[१४५] । कभी कभी स्त्रियां लीलावश दुपट्टा हाथ मे ले लेती थी[१४६] ।

इस युग में दक्षिणी स्त्रियां बहुधा अपने सिर नहीं ढांकती थी पर कभी कभी वे सुसज्जित पगड़ी पहनती थी । इस तरह की एक भारी भरकम पगड़ी मे चक्करदार फेटे जूड़े के ऊपर बंधे है । पगड़ी के आगे एक बदामा शीर्षपट्ट है जिसमे एक झब्बा लटक रहा है (आ० २५९)[१४७] । एक दूसरी तरह की पगड़ी मे फेटे एक सीगनुमा केशवेश के चारों ओर बंधे है (आ० २६०)[१४८] । बाल बांधने की यह प्रथा आज दिन भी मध्यभारत के बनजारा स्त्रियों मे पायी जाती है । कभी कभी पट्टीनुमा मुकुट जिसके दोनों ओर दो कुब्बों से झब्बे अथवा बाल की लटे लटकती थी और जिसके ऊपर दोमुंहे मकर की आकृति अर्धचंद्र वहन करती थी पहना जाता था[१४९] । एक जगह इस मुकुट मे दोहरे मुख वाले मकर का पूरा शरीर बना दिखाया गया है (आ० २६१)[१५०] । एक जगह चक्करदार मुकुट में एक कलगी जैसा आभूषण लगा है (आ० २६२)[१५१] । कभी कभी स्त्रियां छः नोक वाला एक छोटा मुकुट पहनती थी (आ० २६३)[१५२] । कभी कभी लहरियादार कमल की पखुड़ियों से सजा मुकुट पहना जाता था (आ० २६४)[१५३] ।

१४३—वही, प्ले० ८५
१४४—वही, प्ले० ९१, ३
१४५—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ३३
१४६—वही, प्ले० ८, १०
१४७—लांगहर्स्ट, वही, प्ले० २० बी०
१४८—वही, प्ले० ३४, ए०
१४९—फर्गुसन, वही, प्ले० ८५
१५०—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ६, १०
१५१—वही, प्ले० ६, ११
१५२—फर्गुसन, वही, प्ले० ८४, ३
१५३—वही, प्ले० ८३, १

इस युग मे ओढनी ओढने का बहुत कम रिवाज था फिर भी अमरावती के एक अर्ध-चित्र में एक स्त्री सिर पर से पीछे की ओर बाल ढकते हुए ओढ़नी ओढे दिखलायी गयी है (आ० २६५)[१५४]।

साधुओ की वेश-भूषा

ब्राह्मण साधु एक कौपीन पटको और दुपट्टे के साथ पहनते थे (आ० २६६)[१५५]। इन पर पडी धारियो से पता लगता है कि ये वल्कल के बने होते थे। बौद्ध साधु कभी कभी पासुदुकल पहनते थे। (आ० २६७)[१५६] जो चीथडो को सी कर बनाया जाता था।

सिपाहियो की पोशाक

योद्धागण कभी कभी पूरी आस्तीन का कचुक पहनते थे। इस कचुक मे और अधिक कसाव लाने के लिए कई फेंटो मे नाभि के ऊपर एक रुमाल बधा होता था। इनकी धोती पर कमरबद होता था[१५७]।

बच्चो की वेश-भूषा

इस युग मे बच्चे जाघिया और कमरबद पहनते थे। (आ० २६८-२६९)।[१५८] कभी कभी इनके छाती पर एक रुमाल बधा होता था जिसका सकरमुद्धी लगा छोर हवा में फडका करता था। कभी कभी उनके छाती पर छन्नवीर की तरह दोहरा परतला और कई फेरो में पेट पर रुमाल भी बधा रहता था (आ० २७०)[१५९]।

१५४—वही, प्ले० ७२, १
१५५—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ६, १
१५६—वही, प्ले० ६, १४
१५७—वही, प्ले० १०, ६
१५८—रागहस्ट, वही, ६, सी० डी०
१५९—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ३३

३६



२६३



२६४



२६५



२६६



२६७



२६८



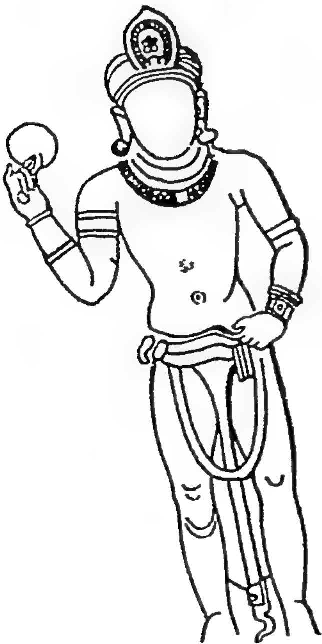
२६९



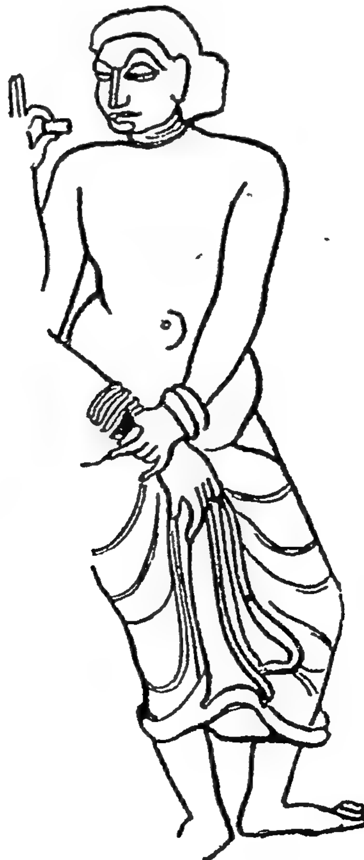
२७०



२७१



२७२





२७३

नवाँ अध्याय

तीसरी सदी से सातवी सदी तक के साहित्य में भारतीय वेश-भूषा

"मनुष्य-जीवन में सब से पहले भोजन और कपडो का स्थान है। मनुष्यो के लिए ये वेडिया है जो उन्हें पुनर्जन्म से बाधे रहती है।" इत्सिग

- प्राक् गुप्तयुग का इतिहास कुषाण साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने पर आरभ होता है। इस युग में राजपूताने और पूर्वी पजाब में यौधेयो की राज्य-सत्ता का आरभ और दृढीकरण तथा पवाय के नागो, कौशावी के भारशिवो और मघो इत्यादि का उत्कर्ष देखते हैं। गुप्त वश के उद्भव के पहले तक इन राज्यो का उत्तर भारत के अधिक हिस्से पर प्रभुत्व रहा। आधुनिक ऐतिहासिक अनुसधानो से प्राय यह निश्चित सा हो गया है कि इन राज्यो और गणतत्रो ने कुषाणो की राज्य-सत्ता उखाड कर पुन भारतीय आदर्शों पर स्थित राज्य-सत्ता चलाई।

विशृङ्खलित राज्यतत्र के इस युग में भारतीय वेश-भूषा के इतिहास की कम सामग्री मिलती है। इस युग में हमें साची और अमरावती के से अर्धचित्र प्राप्त नही है जिनके बल पर हम तत्कालीन वेश-भूषा का सागोपाग चित्र खडा कर सकें। मथुरा की तथाकथित कुषाणयुग की कुछ मूर्तियो का सहारा हम इस युग की वेश-भूषा के इतिहास के लिए ले सकते हैं। पर इसमें कठिनाई है कुषाण कला से तात्पर्य। कुषाण कला गोल तरह से दो सौ वर्षों तक जारी रही और अभी तक कला के इतिहासकारो ने इस कला में विकासक्रम का पता लगाने का प्रयत्न तक नही किया है। कुषाण कला के माने कुषाण युग के कला के सिद्धातो पर आश्रित कला है चाहे वह पहली शताब्दी की हो या तीसरी। जैसा हमें मालूम है आरभिक कुषाणयुग में सुदर से सुदर मूर्तिया काफी सख्या में बनी, लेकिन इसका कोई कारण नही मालूम पडता कि कुषाणों के पतन के और गुप्तो के अभ्युत्थान के अन्तर युग में भी यह कला जीवित नही रही। लेकिन इस प्रश्न के हर पहलू को ध्यान में रखते हुए तथा ऐतिहासिकता के कठोर मापदडो को सामने रखते हुए हमने इस युग की अधिकतर मूर्तियो और अर्धचित्रो का उपयोग तीसरी शताब्दी की भारतीय वेश-भूषा के इतिहास के लिए नहीं किया है।

इस युग की दक्षिणी वेश-भूषा के इतिहास के लिए आध्र देश के गुटूर जिले के पालनाड तालुक में गोल्ली नाम ग्राम से मिले तीसरी शताब्दी के उत्कीर्ण पट्ट बड़े काम के हैं। इन अर्धचित्रो से हमें तत्कालीन दक्षिण भारत की वेश-भूषा का काफी पता चलता है, पर इस युग की वेश-भूषा अमरावती और नागार्जुनीकोड के अर्धचित्रो में चित्रित दक्षिण

भारत की वेश-भूषा से कोई भिन्न नहीं है। गोल्ली के अर्धचित्रों की यथार्थवादिता तामिलनाड से मिले पल्लव अर्धचित्रों के आदर्शवाद से बिल्कुल विपरीत है। इसी कारण से हम पल्लव अर्धचित्रों और मूर्तियों का उपयोग वेश-भूपा के इतिहास के लिए नहीं कर सके। ग्वालियर रियासत के पवांय नामक स्थान से मिली हुई मूर्तियां और अर्धचित्र तीसरी सदी के हैं और इनसे बुंदेलखंड के वस्त्रों की स्थानिक विशेषताओं का पता चलता है।

गुप्तयुग भारतीय वेश-भूषा के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। इस युग की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री हमें सारनाथ, देवगढ इत्यादि से मिली मूर्तियों और अजंटा की १७ नंबर की लेण से मिलती है। वास्तव में अजंटा की लेणे वाकाटकों की राज्य-सीमा में हैं और इसलिए शायद अजंटा की चित्रकला को गुप्त शैली की मानना ऐतिहासिक दृष्टि से असंगत हो। पर जैसा कि भारतीय कला के इतिहास से पता चलता है उत्तर भारत में परिवर्धित गुप्तकला का भारतवर्ष के कोने कोने में समावेश हुआ और उसकी सौंदर्य भावना और अंकन शैली का प्रभाव देश में सर्वत्र पड़ा फिर चाहे वह सिंध में मीरपुरखास से मिली मूर्तियां हों अथवा अजंटा के भित्तिचित्र। अगर यह दृष्टिकोण हम ध्यान में रखे तो इस युग की प्रादेशिक कलाओं को चाहे वह गुप्त साम्राज्य के बाहर ही क्यों न परिवर्धित हुई हो हम गुप्तकला के अन्तर्गत मान सकते हैं। जो भी हो इस युग की मट्टी की मूर्तियों, सिक्कों और भित्तिचित्रों के आधार पर हम चौथी से सातवी शताब्दी तक के भारतीय कपड़ों और पहरावे का जीता जागता चित्र खड़ा कर सकते है।

गुप्तवंश की नीव चन्द्रगुप्त प्रथम (३२०-३३५ ई० स०) ने डाली पर समुद्रगुप्त (३३५-३८५ ई० स०) ने जो भारतवर्ष के इस काल के शासकों मे अपनी दूरदर्शिता, पराक्रम और कला-प्रेम के कारण एक विशेष स्थान रखते हैं, इस नीव को मजबूत किया। अनेक विजय यात्राओं के अलावा जिनका हमसे संबंध नहीं है, समुद्रगुप्त साहित्य-व्यसनी, कवि और संगीतज्ञ थे। उनके पुत्र और उत्तराधिकारी चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (३८५-४१३ ई०) ने ३९५ और ४०० ई० के बीच में सौराष्ट्र के क्षत्रपों को जीत लिया। चन्द्रगुप्त अपनी कीर्ति और यश के बल पर आज तक भारत में विख्यात है। इन्ही के राज्यकाल, में महाकवि कालिदास हुए। समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त के विजय-पराक्रमों से परिवर्धित गुप्त-साम्राज्य का, जैसा कि बसाढ, भीटा और राजघाट से मिली मुद्राओं से पता चलता है, कार्य संचालन सुव्यवस्थित था। कुमारगुप्त (४१४-४५५ ई०) का राज्यकाल गुप्त-साम्राज्य की क्रमशः अवनति का है। स्कंदगुप्त (४५५-४७० ई०) के राज्यकाल मे हूणों के भीषण आक्रमण से आक्रांत गुप्त-साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया, और इस तरह भारत के स्वर्ण-युग के इतिहास पर परदा पड़ गया। स्कंदगुप्त के पराक्रम का पता हमें भितरी के स्तंभोत्कीर्ण लेख से पता लगता है जिसमें कहा गया है कि जमीन पर अपने सिपाहियों के साथ सोकर मानो उन्होने तप करते हुए अपनी विचलित कुललक्ष्मी की आराधना की। इस

अवसर पर (करीव ४५५ ई०) तो हूण हारे, पर थोडे ही समय के लिए । उनके आक्रमणो का ताता जारी ही रहा और स्कदगुप्त की मृत्यु के उपरान्त गुप्त-साम्राज्य का अत हो गया । स्कदगुप्त के वाद भी कुछ गुप्त वगज राजाओ का पता हमें सिक्को और लेखो से लगता है पर इनका ऐतिहासिक दृष्टि से विशेप महत्त्व नही है । युवानच्वाग के कथनानुसार हूणो को जो थोडे दिनो के लिए गुप्त-साम्राज्य के अधिकारी वन वैठे थे वालादित्य ने हराया । इस महान् पराक्रम का श्रेय यशोधर्मन् नाम का राजा भी ५३३-५३४ ई० के वीच के अपने एक अभिलेख में लेता है ।

सास्कृतिक दृष्टिकोण से गुप्तयुग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है इस युग में सव धर्मों को पूरी स्वतत्रता थी । गुप्त राजे स्वय परमभागवत थे पर इस युग मे वैदिक धर्म की पुनर्जागृति हुई और यज्ञो को पुन प्रधानता मिली । इतना होने पर भी वौद्ध-धर्म की ओर लोगो की उतनी ही आस्था रही ।

श्री हर्ष के युग को भी हम गुप्तयुग के सास्कृतिक इतिहास के साथ साथ ले सकते है। इस युग में वाण, युवानच्वाग और दूसरे लेखक भारत के कुछ ऐसे सास्कृतिक पहलुओ पर भी प्रकाश डालते है, जिनका पता तक इस युग के सवसे वडे कवि कालिदास के ग्रथो में भी नही चलता ।

गुप्तयुग केवल राजनीतिक, धार्मिक और कला के क्षेत्रो में ही भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ युग नही था वरन् इस युग में भौतिक सस्कृति का धरातल भी यथेष्ट ऊचा उठा । इस भौतिक सस्कृति की उन्नति का पता हमें कालिदास के ग्रथो से, अजटा के चित्रो से और दूसरे पुरातात्त्विक अवशेषो से लगता है। अजटा के भित्तिचित्रो में राजमहलो के सजीव चित्रण हमें प्राचीन महलो की सजावट की छोटी से छोटी वस्तुओ का भी पता देते है। साफ, सुथरे और हलके कपडे पहने हुए राजाओ की प्रशात मूर्तिया, अत पुर के कठोर नियमो का पालन करती हुई चित्ताकर्षक दासिया और प्रसाधिकाए, सिले कपडे पहने हुए नर्तक, नर्तिकाए और समाजी, सुसज्जित सैनिको से युक्त जुलूस, राजा के जीवन के ये सव पहलू गुप्तयुग में भौतिक सस्कृति के विजय-चिन्ह के समान है । केश वन्धन की सुदर विधिया तथा साफ सुथरे कपडे और गहने गुप्तयुग की पहले की शताब्दियो के भडकीलेपन से दूर है। इस युग में स्त्रिया अपने वालो की चोटिया नही करती थी पर उन्हें सव सजाती थी। उनके केश-वधन की अनेक विधियों में हम उस युग की कुशल प्रसाधिकाओ का हाथ देख सकते है । धोती और साडी पहनने मे कलात्मक ढग से चुनने और सिलवटो के प्रदर्शन से हम पता लगता है कि उस युग के पुरुष और स्त्रिया वेश विन्यास की कला से पूरी तरह अवगत थे । इस युग में ठीक तौर से कपडे पहनने का इतना महत्त्व था कि सस्कृत साहित्य में इसके लिए पाच शब्द यथा, आकल्प, वेश, नेपथ्य, प्रतिकर्म और प्रसाधन आए है[1]।

१—अमरकोश, २, ६, ९९

साहित्यिक उद्धरणों और अजंटा के चित्रों से यह साफ साफ पता चलता है कि गुप्तयुग में कपड़े की नक्काशियों में भी काफी उन्नति हुई।

गुप्तयुग में भारतीय वेश-भूषा के अध्ययन के लिए मूर्तियों और अजंटा की १७ नं० की लेण के भित्तिचित्रों के सिवाय बहुत से सिक्के भी हैं जिन पर गुप्त-राजाओं की प्रतिकृतियां अंकित हैं। इनकी वेश-भूषा से इस मार्के की वात का पता चलता है कि गुप्त राजे कुषाण राजाओं की तरह कंचुक, कोट और पायजामे पहनते थे तथा शुद्ध भारतीय पहरावा भी। इस सिले वस्त्रों के उपयोग से पता चलता है कि गुप्तों ने देशी और विदेशी दोनों पहरावे उसी तरह ग्रहण कर लिये थे जैसे आज दिन पश्चिमी शिक्षा पाये हुए नवयुवक सहूलियत के लिए आफिस जाने में अथवा सामाजिक उत्सवों में शामिल होने पर पश्चिमी पहरावा पहन लेते हैं लेकिन घर पर अपना जातीय पहरावा ही पहनते हैं। यह वात भारतीयों के लिए ही नहीं प्रत्युत युरोपीय ढंग से रहने वाले प्रत्येक एशियावासी के लिए लागू है। सिले हुए कपड़ों मे पहनने की सहूलियत और आकर्षक ढंग गुप्तों की रसात्मक पर कार्यात्मक वृत्ति को अवश्य रुची होगी। हमे गुप्तों की विवेचनात्मक बुद्धि का पता पहरावे में किए गए हेर-फेर से लगता है। उन्होंने कुषाणयुग के मोटे, ऊनी अथवा रुई भरे सूती कपड़ों की जगह पतले और पारदर्शी कपड़ों का व्यवहार शुरू किया जो जलवायु के दृष्टिकोण से इस देश के लिए सर्वथा उपयुक्त थे। कुषाण वस्त्रों के भारीपन और भद्दी काटों की जगह हम गुप्त-वेश-भूषा में तैयारी और सफाई देखते है जिनसे पहरने वालों की कलात्मक सुरुचि का पता लगता है। गुप्तयुग में सिले हुए विदेशी कपड़ों से धीरे धीरे उनका विदेशीपन निकाल कर उन्हें भारतीय ढांचे में ढाल दिया गया। उदाहरणार्थ मूर्तियों और सिक्कों में कुषाण राजे पूरे पैर का भारी बूट पहने दिखाये गए हैं। ये वूट देखने में तो अवश्य ही भद्दे मालूम पड़ते हैं पर मध्य एशिया के कठोर शीत में पैरों की रक्षा करते हैं और घुड़सवारी में तो इनकी बड़ी उपयोगिता सिद्ध होती है। लेकिन गुप्तयुग में इन बूटों का भद्दा और भारीपन निकल जाता है और उनकी शकल आधुनिक घुड़सवारी के बूट जैसी वन जाती है।

राजदरबारों में सिले विदेशी वस्त्रों का प्रभाव

कुषाणयुग में इस देश में सिले वस्त्र काफी संख्या में आए इसके पहले भी बहुत प्राचीन काल से इस देश में सिले वस्त्रों का ज्ञान था। उन लोगों की वेश-भूषा पर जिनका राज दरबार से निकट संबंध था इसका कुछ अंशों तक असर पड़ा। उनके सुंदर कारखाने कंचुक और जांघिये इस वात के द्योतक हैं कि तत्कालीन राजे अपने सेवकों की वरदी का पूरा ध्यान रखते थे। अक्सर लोगों का यह विश्वास है कि सिले कपड़े पहने हुए वे नौकर विदेशी थे जिन्होंने वाहर से आकर राजा की नौकरी स्वीकार कर ली थी। यह बात कुछ

नौकरो के लिए तो ठीक हो सकती है पर उनमें अधिकतर तो इसी देश के रहने वाले थे। सेवको और सेविकाओ के जो वर्णन वाण भट्ट में आए है और जिन्हें हमने आगे चल कर दिया है, उनसे हमारे मत की पुष्टि होती है।

विदेशी दासिया

विदेश से क्रीत दासियो के लाने की प्रथा इस देश में गुप्तकाल के बहुत पहले से थी। 'पेरिप्लस आफ दी एरीथ्रियनसी'[२] में (पहली शताब्दी ई०) इस बात का उल्लेख है कि भरोच के बन्दरगाह में उतरने वाली बहुमूल्य वस्तुओ में जो राजा के व्यवहार के लिए होती थी कीमती चादी के वर्तन, गायक लड़के और अत पुर के लिए सुन्दर दासिया होती थी। विदेशो से दासिया लाने की प्रथा का जैन साहित्य मे भी जो गुप्तकालीन अथवा उसके कुछ पहले का है वर्णन है। 'अतगडदसाओ'[३] में विदेशी दासियो की एक तालिका दी हुई है। कथा में इस बात का उल्लेख है कि बचपन में राजकुमार गौतम की सेवा अनेक जातियो की विदेशी दासिया करती थी। बब्बर[४] (बर्बर), पौसय (बौसी)[५], यूनानी (जोणिय, यवनी), पल्हविय (पहलवी), इपिणय (इयिणी),[६] थोरुणिगिणि, लासिय, लौसिय, दामिली (तामिल), सिंहली, आरबी (अरब), पुलिंद, पक्कणी,[७] बहली (बलख देश की), मुरडी (मुरुडी)[८] शबर और पारसी, (पारसीही) इन दासियो में मुख्य होती थी। इन विदेशी दासियो के वस्त्र उनके देशो के अनुरूप होते थे (विदेस परिमण्डियाहि) और इनके कपडो

२—शाफ, पेरिप्लस आफ दी एरीथ्रियनसी, पृ० ४२

३—एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित, पृ० २८-२९, लडन १९०७, नायाधम्म कहाओ, १, २०, म भी दासियो का यही ब्योरा दिया हुआ है।

४—ऊपर की तालिका में सब देशो की पहचान करना आसान नही है। बब्बर देश से शायद उत्तरी अफ्रिका का मतलब है। *'पेरिप्लस' में आये बर्बर शायद लाल सागर और नील नदी के बीच में रहने* वाले बेजा, ऊपरी नील एबीसीनिया और अदन की खाडी के दनकेल सुमाली और मल्ला लोगो के पूर्वज थे (शाफ, वही, पृ० ५-६)। 'पेरिप्लस' के अनुसार बर्बर देश से बहुधा दासियो का निर्यात होता था (वही, पृ० २५)

५—पौसय या बौसय ऑक्सस नदी के तीर से आयी दासिया हो सकती है।

६—ईपि ऋषिक शब्द का जो चीनी यू-ची का सस्कृत रूप है, प्राकृत स्वरूप है। जिस समय का यह अवतरण है शायद उस समय ऋषिक वदख्शा में रहते थे।

७—पक्कण और पाणिनी में आये प्रकिण्व (६, १, १५३) एक ही है। काशिका के अनुसार यह देश था। डा० वासुदेवशरण (जे० यू० पी० एच० एस० १६, भा० १, प्ले० २८) प्रकण्व की पहिचान हिरोडोटस के 'परिकानिआइ' से जो स्टेनकोनो के अनुसार (कापस ऑफ खरोष्ठी इसक्रिपशन्स पृ० १८) फरगना के निवासी थे करते हैं।

८—हेमचद्र के अनुसार 'लपाकास्तु मुरुण्डा स्यु' अर्थात् लपाक के रहने वाले मुरुड थे अगर ठीक है तो य दासियां अफगानिस्तानके लमगान प्रदेश से आती थी।

की काट उनके देश के कपड़ों जैसी ही होती थी (सदेस नेवथ्थ गहिय वेसाहि)। ये दासियां इस देश की भाषा नहीं समझ सकती थीं और वे केवल इशारों से दूसरों के विचारों और आज्ञाओं को समझ सकती थी (इंगिय चिंतिय पत्थिय वियनियाहि)। विदेशी दासियों के उपरोक्त वर्णन से यह पता चलता है कि ईसा की आरंभिक शताब्दियों मे भारतीय अंतःपुरों मे उनका प्रवेश हो चुका था। गुप्तयुग में भी अंतःपुर मे विदेशी दासियों के रखने की काफी प्रथा थी। कालिदास के नाटकों में, राजा की अंगरक्षिकाओं की तरह यवनियों का काफी उल्लेख आया है। इस युग मे यवन शब्द का आरंभिक अर्थ जिसके अनुसार वह यूनानियों का द्योतक था लुप्त हो चुका था और यह शब्द शायद अधिकतर विदेशियों के लिए लागू होने लगा था।

इन विदेशी दासियों के वेश-भूषा का प्रभाव तत्कालीन भारतीय वेश-भूषा पर काफी पड़ा होगा, कम से कम अजटा के भित्तिचित्रों मे आयी दास दासियों की आकृतियों से तो यही पता चलता है। लेकिन यह मान लेना भ्रमात्मक होगा कि इस देश में विदेशी वेश-भूषाओं का प्रवेश केवल दासियों द्वारा ही हुआ। यथार्थ में शकों और कुषाणों की चढाइयां, विदेशों से व्यापारिक संबध तथा बाहर के यात्री इन सब कारणों से भी यहां विदेशी वस्त्रों का कुछ कुछ प्रचार बढा होगा। शक इस देश मे कुलाह, तिकोने गले वाले कंचुक तथा पूरे पैर के बूट लाये। भारतीय वेश-भूषा के क्षेत्र मे इस विदेशी धावे की कहानी हम अजंटा के भित्तिचित्रों मे पढ़ सकते है और यह भी देख सकते हैं कि किस तरह से विदेशी पहरावे भारतीयता के रंग में ढल रहे थे। समन्वय की भावना गुप्त कला तक ही सीमिति न रह कर वेश-भूषा के क्षेत्र में भी आयी।

गुप्तयुग में विदेशी वस्त्रों की ओर झुकाव की तुलना हम मुगलयुग में भारतीय पहरावे पर तुर्की प्रभाव से कर सकते हैं। मध्य एशिया के निवासी मुगल अपनी वेश-भूपा इस देश मे लाये और यह वेश-भूषा समयांतर मे भारतीयता के ढांचे में ढल कर जातीय पोशाक बन गयी और उसे राजकर्मचारियों और व्यापारियो ने अपना लिया। जामा, पगड़ी, पाजामा, कमरबंद और पटके जातिभेद और वर्णभेद छोड़ कर सभी के वस्त्र बन गये। कुषाणयुग मे भी भारतीय वेश-भूषा मे कुछ ऐसा ही परिवर्तन हुआ था गो कि उसका प्रभाव इतना व्यापक नही था जैसा मुगल युग में। भारतीय दृष्टि मे शक तुषार बर्बर थे इसलिए उनकी वेश भूषा भी मान्य नही थी। जब गुप्त कुषाणयुग की संस्कृति के उत्तराधिकारी हुए तो उन्होंने कुषाणयुग की वेश-भूषा की उपयोगिता देखते हुए उसे थोड़े फेर-फार के साथ अपना लिया। लेकिन इस वेश-भूषा को जबर्दस्ती दूसरों पर लादने का प्रश्न ही नही उठता था और इसीलिए विदेशी पोशाक उन्ही तक सीमित रही जिन्हें वह प्रिय थी और जिन्हें अपने दैनिक जीवन में उसकी उपयोगिता का ज्ञान था। हमारी अधिकतर जनता इस युग मे भी अपने पुराने कपड़े जो इस देश के लिए उपयुक्त थे, पहनती रही।

गुप्तयुग के सिपाहियो की वर्दी की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। अजटा के भित्तिचित्रो में सैनिको का एक भाग धोती पहनता है, लेकिन दूसरा भाग कचुक, पायजामा अथवा जाधिया और पूरे बूट पहनता है और अपने बाल फीते अथवा रुमाल से बाधता है । वास्तव में देखा जाय तो उनकी वेश-भूषा पूर्व निश्चित वर्दी के रूप में है । गुप्तयुग के पहिले की शताब्दियो में, सिवाय कही कही शातवाहन युग को छोड कर, सिपाहियो की कोई पूर्व निश्चित वरदी नही थी और अधिकतर सिपाही धोती ही पहनते थे । गुप्तयुग में सिपाहियो की वर्दी सम्भवत कुषाणकाल की वर्दी के आश्रय पर बनी । गुप्तराजे पराक्रमी योद्धा थे और उन्हे अपनी विजय-यात्राओ के लिए हमेशा एक सुशिक्षित, सुवेष्टित और सामानो से लैस सेना की आवश्यकता रहती थी । नयी वर्दी की उपादेयता गुप्तो की व्यापारिक बुद्धि को ठीक जची होगी और उसी के फलस्वरूप एक राष्ट्रीय सेना का सृजन हुआ होगा । सेना में जिस तरह का हेर-फेर कुषाण सेना के सगठन को ले कर हुआ होगा। यह भी सभव है कि हूणो से लडाइ लडते समय इस तरह के सगठन और वर्दी की उपयोगिता का ज्ञान गुप्तो म हुआ होगा । जो भी हो इस प्रश्न का निराकरण आसानी से नही हो सकता ।

वेष-भूषा के इतिहास के साधन

पुन इतिहास की कडी पकडते हुए हमें पता लगता है कि गुप्तो के समसामयिक दक्खिन के शासक वाकाटक थे । पाचवी शताब्दी के पहले भाग में गुप्त-साम्राज्य और सुदूर दक्खिन के राज्यो के बीच में वाकाटक साम्राज्य दक्खिन में सब से मजबूत राज्य थे। अपने समय में वाकाटक साम्राज्य दक्खिनी और उत्तरी भारत के सांस्कृतिक आदान-प्रदान का माध्यम था । इस वश का छठवी शताब्दी के मध्य में अत हो गया । अजटा से मिले वाकाटक लेख भारतीय कला के इतिहास के काल क्रम को ठीक करने में अपना एक विशेष स्थान रखते है । दक्षिण में वेश-भूषा का इतिहास भी हमें अजटा के भित्तिचित्रो से मिलता है। जब हम दक्षिण की वेश-भूषा की तुलना गुप्तयुग की वेश-भूषा से करते है तो हमें पता चलता है कि गुप्तकालीन पहिरावा दक्षिण तक चला गया था और थोडे से स्थानिक भेदो को छोड कर सारे भारत में एक ही सा था ।

उत्तर भारत में हूणों के पतन और गुप्तो के पुन अपनी शक्ति को प्राप्त करने में असफल होने से बहुत से राज्यो का उदय हुआ जिनमें वलभी, चालुक्य, मौखरी, बाद के गुप्त तथा थानेश्वर के वर्धन जिन्होने बाद के इतिहास में काफी स्थान पाया मुख्य थे । सातवी शताब्दी के उत्तर का युग श्री हर्ष का राज्यकाल (६०५-६४० ई०) था । श्री हर्ष एक कुशल शासक, कलाप्रेमी और साहित्यिक थे, इनके दरबार में इनके जीवनी लेखक बाण भट्ट हुए। हर्ष के समसामयिक दक्षिण के चालुक्य राजा पुलिकेशिन् हुए जिनके समय में

शायद अजंटा की १ और २ नंबर की लेणें बनीं। शायद इन्ही के काल में अथवा इनके कुछ पहले बाघ के भित्तिचित्र बने जो तात्कालिक आचार विचार के जानने के साधन हैं।

युवानच्वांग और इत्सिंग की भारत-यात्राएं इसी युग की संस्कृति धर्म और सामाजिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। इन चीनी यात्रियों के विवरणों और बाणभट्ट के ग्रंथों में आये संस्कृति अवतरणों के आधार पर हम सातवीं सदी की भारतीय वेश-भूषा का सुंदर चित्र खड़ा कर सके है। जैन छेदसूत्रों और चूर्णियों में भी, जिनमें बृहद् कल्पसूत्रभाष्य और निशीथ चूर्णी मुख्य हैं, हम इस युग अथवा इसके पहले के युग का बहुत सा सांस्कृतिक मसाला पाते हैं। वस्त्रों और पहरावों का तो इनमें विशेष रूप से वर्णन है। इनमें दी हुई वस्त्र की तालिकाओं से यह बताना तो मुश्किल है कि कौन कौन से वस्त्र खास कर गुप्तयुग में ही होते थे, क्योंकि इनमें कुछ बहुत पुराने वस्त्रों के भी नाम आ गए हैं, पर साधारणत. तो यह कहा ही जा सकता है कि ये सब वस्त्र चाहे कितने ही पुराने क्यों न हों गुप्तकाल तक बनते थे। गुप्तयुग के बाद इनमें से बहुत से वस्त्रों की चलन कम हो गयी थी, इसीलिए दसवीं सदी के जैन टीकाकार उनके ठीक ठीक अर्थ नहीं कर पाये।

सभ्य समाज का एक नियम सा है कि उसके अंतर्गत रहने वाले अच्छे कपड़े पहनें और इसके लिए इस बात की आवश्यकता होती है कि तरह तरह के रंगीन और नक्काशीदार कपड़े बनें। बढ़िया कपड़ों की इस देश में और बाहर काफी मांग थी। भारतीय समाज के स्त्री और पुरुष दोनों कपड़े के शौकीन थे। इस युग में छपाई की भी काफी उन्नति हुई और तत्कालीन नक्काशियां जैसे चारखाने, डोरिया, हंस मिथुन इत्यादि कालांतर में छीपियों के रूढ़िगत अलंकार बन गये।

अभाग्यवश हमें इस युग के संस्कृत साहित्य में इतनी सामग्री नहीं मिलती जिसके द्वारा हम उस युग के रहन-सहन आमोद-प्रमोद और वेश-भूषा का पूरा पूरा चित्र खींच सके। कालिदास के काव्यों में वस्त्रों के छिटपुट उल्लेख हुए है पर सातवी सदी की वेश-भूषा पर बाणभट्ट की 'कादंबरी' और 'हर्षचरित' से काफी प्रकाश पड़ता है। बाण भट्ट की सजग आंखों से उस युग की छोटी से छोटी बात नही छिपी है। जैन छेद सूत्रों के रचयिता कवि या साहित्यिक नहीं थे और इसीलिए उनके वर्णनों में रस की मात्रा कम है। फिर भी उनके रूखे वर्णनों और तालिकाओं में ऐसी सामग्री सुरक्षित है जो अन्यत्र नहीं मिल सकती।

वस्त्रों के भेद

अमरकोश के अनुसार वस्त्र चार प्रकार के होते थे यथा (१) वल्क, यानी छालों और रेशों से बने कपड़े जिनमें क्षौम भी आ जाता था, (२) फाल, अर्थात् फल के रेशों से

बने वस्त्र जिसमें कपास भी आ जाती थी, (३) कौशेय, अर्थात् रेशमी कपड़े, और (४) राकव अर्थात् पश्मीने[९]। इसी तरह अनुयोगद्वार सूत्र[१०] के वस्त्रों को अंडज, बोंडज और कीडज इन तीन जातियों में बांटा गया है। अंडज की तो टीकाकार ने विचित्र कल्पना की है जिसके अनुसार ऐसे कपड़े हंस के अंडे से बनते थे, शायद उनका तात्पर्य यहां हंस दुकूल से है। सूती कपड़े को बोंडज कहते थे और रेशमी को कीडज।

राकव

रंकु संज्ञा से बना राकव शब्द टीकाकारों के अनुसार रंकु पशु अथवा ऐसे ही किसी दूसरे पशु के रोए से बने ऊनी कपड़े का द्योतक था। पर रंकु की पहचान उन्हें नहीं थी। राकव का एक सीधा सादा अर्थ जो हमारे समझ में आता है वह यह है। पामीर के ऊंचे पठारों और मैदानों में एक किस्म के बकरे होते हैं जिन्हें वहां के रहने वाले रंग कहते हैं। शाल दुशाले बनाने के लिए अच्छा से अच्छा पश्म हमें इन बकरों से मिलता है[११]। पामीर का यह रंग ही शायद संस्कृत का रंकु है। अगर रंकु और रंग की समानता ठीक है तो राकव के अर्थ होंगे पामीर के आसपास में बना पश्मीना। जैसा महाभारत से पता चलता है पश्म के नमदे (राकव कट) भी बनते थे[१२]।

जैन साहित्य में वस्त्रों के भेद

जैसा हम पहले कह आये हैं जैन साहित्य में वस्त्रों की अनेक तालिकाएं आती हैं। इन तालिकाओं में बहुत से वस्त्रों के नाम आते हैं जिनके आधार पर हम इस युग के वस्त्र की निम्नलिखित तालिका तैयार कर सकते हैं—

१—जंगिय—जंगिय ऊनी कपड़े को कहते थे टीका में इसे जंगमोष्ट्राद्यर्णा निष्पन्न कहा गया है इससे पता लगता है कि यह वस्त्र ऊंट के बाल से बनता था[१४]।

२—भंगिय—भंगेला। अभी भी यह वस्त्र थोड़ा बहुत अलमोड़े में बनता है और इसका व्यवहार बहुत साधारण लोग करते हैं[१५]।

३—पोतग—ताड़ के पत्रों से बने कपड़े[१६]।

४—खोमिय—अलसी की छाल के रेशों से बना कपड़ा[१७]। निशीथ चूर्णि[१८] में

९—अ० को०, २, ६, १११

१०—अनुयोगद्वार, ३७

११—वुड, ए जर्नी टु आक्सस, लंदन, १८९२, यूल द्वारा इन्ट्रोडक्शन सहित, पृ० ५७

१२—महाभारत, २, २४५, ६

१३—आचारांग सूत्र, २, ५, १, ३६८, ३६९, आचारांग सूत्र, १७०, निशीथ चूर्णि (स्पासर्टीकृत,) भा० ७, पृ० ४६७

१४-१७—आचारांग, २, ५, १, १

१८—निशीथ, भा० ७, पृ० ८८७

क्षौम की व्याख्या है—पोण्डमया खोम्मा अण्णे भणंति रुक्खेहिंतो निग्गच्छन्ति तहा वडेहिंतो पादगा साहा। इस व्याख्या के अनुसार क्षौम रुई अथवा वट शाखाओं की छाल के रेशे से वनता था। टीका में जो दुविधा देख पड़ती है उससे पता चलता है कि ७वीं सदी में क्षौम का वनना कम हो गया था।

५—तूलकड—सेंमल के सूत से वने वस्त्र।

ये पांचों तरह के कपड़े कीमती नहीं होते थे और इसलिए जैन साधु इनका व्यवहार कर सकते थे।

कीमती कपड़े

६—आइणगाणि—चमड़े से वने वस्त्र[१९]। निशीथ मे[२०] इसकी व्याख्या है 'अजिनं चम्मं तम्मि जे किरंति', अर्थात् अजिन मृगचर्म से वने वस्त्र होते थे। गुप्तकाल में लगता है शीतप्रधान प्रान्तों में पोस्तीन जैसा कोई कपड़ा पहना जाता था।

७—सहिणाणि—महीन सूत के वने वस्त्र[२१]। निशीथ[२२] में यह वस्त्र सूक्ष्म कहा गया है।

८—सहिणकल्लण—आचारांग की टीका में इस वस्त्र की व्याख्या 'वर्णछ्यादिभिश्च कल्याणानि, शोभनानि वा' अर्थात् रंग और अलंकारों से युक्त वस्त्र किया गया है[२३]। निशीथ[२४] में इसकी व्याख्या इस तरह से है, 'कल्लाणं स्निग्धं लक्षणयुक्तं वा किञ्चि सहिणं कल्लणं चोभयो' अर्थात् कल्याण का अर्थ चिकना अथवा नकाशीदार कपड़ा होता है, कहीं कहीं वस्त्र में चिकनाई और नकाशी दोनों होती है!

९—आयाणि—वकरे के रोएं से वने वस्त्र। आचारांग[२५] में इस कपड़े की व्याख्या है—'क्वचिद्देश विशेषेऽजाः सूक्ष्म रोमवत्यो भवन्ति, तत् पक्ष्मनिष्पन्नानि आजकानि भवन्ति' अर्थात् किसी देश विशेष में वकरियां कोमल रोएं वाली होती हैं, उनके पश्म से वनें कपड़े आजक कहलाते है। यहां आजक से पश्मीने का मतलव है और लगता है कि रांकव और आजक एक ही वस्त्र के पर्यायवाची है। निशीथ[२६] में इस वस्त्र की अजीव व्याख्या है—'आयं णाम तोसलि विसये सीयतलाए अयाणां खुरेसु सेवालतरीया लग्गति तया

१९—आचारांग, २, ५, १, ३
२०—निशीय, ७, पृ० ४६७
२१—आचारांग, २, ५, १, ३
२२—निशीय, ७, पृ० ४६७
२३—आचारांग, २, ५, १, ३
२४—निशीय, ७, पृ० ४६७
२५—आचारांग, २, ५, १, ३
२६—निशीय, ७, पृ० ४६७

वत्य कीरति' अर्थात् तोसलिविषय में ऋषितडाग के पास वकरियों के खुरों में एक तरह की सेवार फस जाती है उसी से आजक वनता है। मतलव यह है कि ओडीसा में एक ऐसी सेवार होती थी जिससे आजक वनता था। वास्तव में चूर्णिकार को आजक के ठीक अर्थ का पता नहीं था, पर अर्थ करना जरूरी था और इसीलिए उसने, कोरी कल्पना कर दी।

१०—कायाणि—नीली रुई के सूत से वना कपडा। आचाराग की टीका[२७] में इसकी व्याख्या है—'तथा क्वचिद्देशे इन्द्रनीलवर्ण कर्पासो भवति तेन निष्पन्नानि' अर्थात् किसी देश में इद्रनील वर्ण की कपास होती है, उससे वना वस्त्र। यहा कोकटी जैसी किसी कपास से मतलव है। निशीथ[२८] में इसकी व्याख्या है 'काकविसए काकजघस्स जही मणी पडितो तटागे तत्थ रत्तानि जाणि ताणि काय भणति, द्रुते वा काए रत्त।' काक विषय में काकजघ की मणि जिस तालाव में मिलती है उससे रगा वस्त्र अथवा रक्त की द्रुति से रगा वस्त्र। इस व्याख्या का ठीक ठीक अर्थ समझ में नहीं आता।

११—दुगुलाणि—दुकूल की व्याख्या आचाराग की टीका[२९] में है 'गौड विषय विशिष्ट कार्पासिक', अर्थात् गौड देश (वगाल) में उत्पन्न एक विशेष तरह की कपास से वना वस्त्र। लेकिन निशीथ[३०] में दुकूल की कुछ और ही व्याख्या है—'दुगुल्लो रुक्खो तस्स वागो घेत्तु उदूखले कुट्टिज्जति पाणिएण ताव जाव भूसी भूतो ताहे कच्चति दुगुल्लो' अर्थात् दुकूल वृक्ष की छाल ले कर पानी के साथ तव तक ओखली में कूटते है जब तक उसके रेशे अलग नहीं हो जाते। वाद में वे रेशे कात लिए जाते है। निशीथ की यह व्याख्या ठीक मालूम पडती है। अमरकोश में दुकूल क्षौम का पर्यायवाची है[३१] और उसके आवरणो को निवीत और प्रावृत कहते थे। ऐसा लगता है कि लोग जब दुकूल के अर्थ भूल गए तव सभी महीन घुले वस्त्रो को दुकूल कहा जाने लगा[३२]।

हस दुकूल गुप्तयुग के वस्त्र निर्माण कला का एक उत्कृष्ट नमूना था। आचाराग[३३] में एक जगह कहा गया है कि शक्र ने महावीर को जो हस दुकूल का जोडा पहनाया था वह इतना हलका था कि हवा का मामूली झटका उसे उडा ले जा सकता था। इसकी वनावट की तारीफ कारीगर भी करते थे। वह कलावत्तू के तार से मिला कर वना था और उसमें हस के अलकार थे। नायाधम्म कहाओ[३४] के अनुसार यह जोडा वर्ण स्पर्श से युक्त,

---

२७—आचाराग, २, ५, १, ३
२९—आचारांग, २, ५, १, ३
३०—निशीथ, ७, पृ० ४६७
३१—अ० को०, २, ६, ११२
३२—देखिए रघुवंश पर मल्लिनाथ की टीका, १, ६५
३३—आचाराग, २, १५, २०
३४—नायाधम्म, १, १३

स्फटिक के समान निर्मल और बहुत ही कोमल होता था । दहेज में और व
साथ दुकूल के जोड़े भी दिये जाते थे[३५] ।

१२—पट्ट—रेशमी कपड़ा—आचारांग की टीका[३६] में इस
'पट्टसूत्र निष्पन्नानि' अर्थात् पट्टसूत्र से बने वस्त्र । वृहद् कल्पसूत्र भाष्य
इसकी यही व्याख्या है ।

कपड़ों के भेद में जैसा हम ऊपर देख आये हैं अनुयोग द्वार[३७] मे
है। इसके निम्नलिखित भेद गिनाये गए हैं, (क) मलय, (ख) अंशुक,
और (घ) कृमिराग। वृहत् कल्पसूत्र भाष्य[३८] मे उपरोक्त रेशमी कपड़ों
पट्ट और सुवर्ण नामक रेशमी वस्त्रों के और उल्लेख है।

क—मलय—आचारांग[३९] में इसकी टीका 'मलयज सूत्रो नि
मलय सूत्र से बना वस्त्र किया गया है, लेकिन वृहत् कल्पसूत्रभाष्य के अनु
कपड़ा था । हो सकता है इस रेशम का नाम दक्षिण विहार में जिसे म
पैदा होने से पड़ा ।

ख—अंशुक—वृहत् कल्पसूत्र भाष्य[४०] की टीका में इसे कोम
रेशमी कपड़ा कहा गया है । निशीथ[४१] में इस शब्द की लंबी चौड़ी व्याख्
कणगकंतानि, कणगखसियानि, कणगचित्ताणि, कणग विचित्ताणि' अ
तारबाने का काम होता था, अलंकारों में जरदोजी (खचितानि) का काम
के तार से चित्र विचित्र नकाशियां बनी होती थीं । उपरोक्त वर्णन से
अंशुक किमखाब अथवा पोत जैसा कोई कपड़ा था । आचारांग मे भी इसक

ग—चीनांशुक—वृहद् कल्पसूत्र भाष्य[४३] में इसकी व्याख्
कृमिः तस्माज्जातं' अथवा 'चीनानामजनपदः तत्र यः श्लक्षणतरपटः तस्
कोशकार नामक कीड़े के रेशम से बना वस्त्र अथवा चीन जनपद के व
से बना कपड़ा है। निशीथ[४४] में इसकी व्याख्या है 'सुहुमतरं चीणंसुयं चीण

३५—अंतगडदसाओ, पृ० ३२
३६—आचाराग, २, ५, १, ३
३७—अनुयोगद्वार, सू० ३७
३८—वृ० क० भा० ३, ३६६१
३९—आचारांग, ३, ५, १, ३
४०—वृ० क० भा०, ४, ३६६१
४१—निशीथ, ४, पृ० ४६७
४२—आचाराग सूत्र, २, ५, १, ३

चीणंसुयम्' अर्थात् बहुत पतले रेशमी कपड़े अथवा चीन के बने रेशमी कपड़े को चीनांशुक कहते हैं । उपरोक्त व्याख्याओं से पता चलता है कि बहुत पतले रेशमी कपड़े और चीन के रेशमी कपड़े दोनों को ही चीनांशुक कहते थे ।

घ—कृमिराग—किरमि दाना से बने गुलाली रंग में रंगा हुआ रेशमी कपड़ा।

ङ—सुवर्ण—बृहद्कल्पसूत्र भाष्य[45] की टीका में इसे सुनहरे रंग वाला रेशमी वस्त्र कहा गया है । यह रेशम के खास तरह के कीड़ों से बनाये कोशों से निकलता था। लगता है यहाँ आसाम के मूंगा रेशम से जिसका रंग सुनहला होता है तात्पर्य है ।

१३—पत्रोर्ण—इसे आचारांग सूत्र[46] में पत्तुन्न कहा गया है और यह छाल के रेशे से बना एक विशेष प्रकार का वस्त्र था । अमरकोश[47] में पत्रोर्ण एक तरह का रेशम कहा गया है । शायद यह किसी किस्म का जंगली रेशम रहा हो। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी का कहना है इस रेशम को बड़ और लकुच की पत्तियाँ खाने वाले कीड़े पैदा करते थे ।

उपरोक्त रेशमी कपड़ों में जो बेशकीमती होते थे उन्हें अमरकोश[48] ने महाधन की संज्ञा दी है ।

१४—देसराग—आचारांगसूत्र[49] में इसे केवल रंगीन कपड़ा कहा गया है पर निशीथ चूर्णि[50] में इसका निम्नलिखित वर्णन है —'जत्थविसए या रंग विधिताए देसा रत्ता देसराग', जिस विषय में जो रंग विधि है उसके अनुसार रंगा हुआ वस्त्र। इससे यह पता लगता है कि जाटों के देश अर्थात् पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी युक्त प्रदेश में कपड़े रंगने की कोई ऐसी विशेष प्रथा थी जो सारे देश में मशहूर थी। हो सकता है देसराग का चुनरी रंगने से संबंध हो ।

१५—अमिला—आचारांगसूत्र[51] में तो इसे बकरे के चमड़े से बना कपड़ा कहा गया है पर यह अर्थ कोई संगत नहीं मालूम पड़ता। निशीथ चूर्णि[52] में इसका निम्नलिखित अर्थ दिया है, 'रोमेसुकता अमिला अथवा णिम्मला अमिला घट्टिणी सुघट्टिता ते परिभुज्जमाणा मडे वहेति', रोम से बना वस्त्र अमिला कहलाता है अथवा अमिला वह निर्मल वस्त्र

४५—बृह० क० सू० ४, ३६६१
४६—आचारांग, २, ५, १, ३
४७—अमरकोश, डा० हरदत्त शर्मा द्वारा सम्पादित, पृ० १९७
४८—अमरकोश, २, ६, ११३
४९—आचारांग सूत्र, २, ५, १, ३
५०—निशीथ, ७, ४६७
५१—आचारांग २, ५, १, ५—८
५२—निशीथ, ७, ४६७

है जिस पर घोटे की कुंदी से कलफ आ गया है । उपरोक्त अर्थों को देखने से तो यही पता चलता है कि कुंदी किए हुए किसी विशेष तरह के वस्त्र से अमिला का तात्पर्य है ।

१६—गज्जफल—आचारांग[५३] में इसे फड़फड़ाता कपड़ा कहा गया है । निशीथ चूर्णि में[५४] इसी तरह का अर्थ है—'समणं सद्दं करंति ते गज्जला'—सुनने में जो शब्द करे। लगता है कि वह लंकिलाट की तरह कोई कड़ा कपड़ा रहा होगा ।

१७—फालिय—आचारांग के[५५] अनुसार यह स्फटिक के समान साफ और पारदर्शी कपड़ा था । निशीथ चूर्णि[५६] में भी इसका यही अर्थ है और इसे फाडिग कहा है, 'फडिगपहाणनिभा फडिगा अच्छा' इत्यर्थ:' स्फटिकशिलाके समान स्वच्छ । लगता है यह कोई बहुत ही महीन मलमल, जिसके लिए यह देश प्रसिद्ध था, रही होगी।

१८—काय—इस शब्द के अर्थ का पता नही है पर शायद यह काक विषय (पूर्वी मालवा) में बना कपड़ा हो[५७] ।

१९—कोयवाणि—रोएंदार कंबल अथवा ऊनी वस्त्र[५८] । निशीथ चूर्णि[५९] इसे कोतव कहा गया है । आधुनिक थुल्मे की तरह यह कोई वस्त्र था ।

१९—कंबलगाणि—इसमें सभी तरह के ऊनी वस्त्रों, चादरों इत्यादि का समावेश हो जाता है[६०] ।

२०—पावराणि[६१]— चादरें। यहां ओढ़ने और बिछाने दोनों तरह की चादरों से मतलब हैं, पर निशीथ के अनुसार[६२] यहां पावर के अर्थ नील गाय के चमड़े से बनी चादर है ।

उपरोक्त कपड़े कीमती होते थे इसीलिए जैन छेद सूत्रों में साधुओं के लिए इन्हें वर्ज्य माना है । जैन साधु निम्नलिखित खालें और लोइयां (आइण्णे पावराणि) भी बेशकीमत होने से नहीं खरीद सकते थे ।

५३—आचारांग, २, ५, १, ३—८
५४—निशीथ, ७, ४६७
५५—आचारांग, २, ५, १, ३—८
५६—निशीथ, ७, ४६७
५७—आचारांग, २, ५, १, ३—८
५८—वही
५९—निशीथ, ७, ४६७
६०—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६१—वही
६२—निशीथ, ७, ४६७

शाल और चादरें

१—उद्रा—ऊदविलाव के चमडे के बने रूमाल। आचारांग[६३] की टीका के अनुसार उद्र 'सिंधुविषयमत्स्या तत्सूक्ष्मचर्मनिष्पन्नानि' अर्थात् यह वस्त्र सिंध में ऊद विलाव के चमडे से बनता था। निशीथ में[६४] इसकी व्याख्या है 'सुसुणागिती जलचरासत्ता तेसिं अजिणा उद्दा, अण्णे भणति उद्दे चम्म गोरमिगाण अजिणा' अर्थात् जल में रहने वाली सूस का चपडा, दूसरे कहते हैं कि उद्र किसी सफेद पशु का चमडा होता था। समुद्री ऊद-विलाव का चमडा तो बहुत महीन और पतला होता है। हो सकता है कि प्राचीन काल में इन समुद्री ऊदो के चमडो से ओढने बनाये जाते रहे हो।

२—पेस—आचारांग[६५] में पेस की व्याख्या है 'पेसाणीत्ति सिंधुविषय एव सूक्ष्म चर्माण पशवस्तच्चर्म निष्पन्नानीति', अर्थात् सिंधु देश के एक पशु विशेष महीन चमडे से बना हुआ। निशीथ[६६] में इसके अर्थ हैं 'पसवातेसिं अइण्ण, अण्णे भणति पेसा लेसा य मच्छादियाए', अर्थात् पशु का चमडा, दूसरो के अनुसार पेसा मछलियो का चमडा था। इन व्याख्याओ से तो यह सिद्ध होता है कि पेस किसी पशु विशेष का चमडा था, लेकिन वैदिक और बौद्ध साहित्य में पेस सदा कसीदे के काम के लिए आया है। यहा पर भी सुदर कसीदे के काम से बने शाल से ही मतलब है कि जिसका ज्ञान टीकाकारो को न था।

३—पेसलाणि—आचारांग में[६७] इसका अर्थ है 'तच्चर्म-सूक्ष्म-पक्ष्म-निष्पन्नानि, उस चर्म के महीन पश्म से बनी चादर। हो सकता है यहा पक्ष्म से कसीदे वाली पश्मीने की चादर से मतलब हो।

४—नीलमिगाईणग—नीलगाय के चमडे से बनी चादर[६८]।

५—गोरमिगाईणग—सफेद जानवर के चमडे से बनी चादर[६९]।

६—कणगाणि—सुनहरे काम की चादर[७०]। निशीथ में[७१] इसके दो अर्थ दिये गए हैं, 'वरडगपारिगादिपावरगा ते सुवण्णे, सुवण्णे द्रुते सुत्त रज्जति तेन ज वूत कणगम्' अर्थात् वट इत्यादि की छाल के रेशे से बनी चादर सुवर्ण कहलाती थी, अथवा सुवर्ण की

६३—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६४—निशीथ, ७, ४६७
६५—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६६—निशीथ, ७, ४६७
६७—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६८—वही
६९—वही
७०—वही
७१—निशीथ, ७, ४६७

द्रुति (घोल) में रंग कर जिस सूत से कपड़ा बुना जाय उसे सुवर्ण कहते हैं। सुवर्ण की आखीरी व्याख्या बड़े काम की है क्योंकि इसमे सोने के घोल मे रग कर कलावत्तू बनाने की क्रिया की ओर संकेत है। जहां तक हमे पता है मुगल युग मे विटाई से कलावत्तू बनता था, अर्थात् चांदी सोना मिला कर तारकश तार खीचते थे। बेटरी की सहायता से कलावत्तू रंगने की त्रिया तो फ्रांस से इस देश में हाल ही में आयी। लेकिन इस उल्लेख से तो यह सिद्ध होता है कि सोने के घोल मे कलावत्तू रंगने की प्रक्रिया गुप्त युग मे भी लोग जानते थे। सोने की द्रुति बनाने की क्रिया वैद्यक शास्त्रों में दी हुई है पर अब वह काम मे नहीं आती।

७—कणगकंतिय—आचारांग[७२] की टीका में इसे 'कनकरयेव कांतिर्येपा' अर्थात् सोने की कान्तिवाला कहा गया है लगता है इस दुशाले पर सोने का भरावदार काम होता था।

८—कणग पट्ट—आचारांग[७३] मे इसे 'कृतकनकरसपट्टानि' कहा है जिसके अर्थ होते हैं तरल सुवर्ण से बना हुआ वस्त्र। लगता है यह कपड़ा अथवा चादर पूरी सुनहरे कलावत्तू से विनी जाती थी। निशीथ[७४] मे कनक पट्ट के दो अर्थ दिये गए है यथा 'कणगेण जस्स पट्टाकता, अहवा कणग-पट्टा मिगा' अर्थात् जिस वस्त्र का किनारा सुनहरे काम वाला होता था अथवा कनक पट्ट मृग की खाल से बना वस्त्र।

९—कणगखइयाणि—कनक खचित प्रावार की व्याख्या आचारांग[७५] में है 'कनकरसस्तवकांचितानि' जिसके ठीक ठीक अर्थ समझ मे नही आते पर यहां जरदोजी के काम से मतलब है।

१०—कणगफुसियाणि[७६]—यहां शायद हलके सुनहले काम वाली चादर से तात्पर्य है।

११—कणगयक—निशीथ[७७] मे इसकी व्याख्या यो है 'अंता जस्स कणगेणकता' अर्थात् वह चादर जिसके किनारों पर सुनहरा काम हो।

१२—कणगफुल्लिय—निशीथ[७८] में इस प्रावार का निम्नलिखित अर्थ दिया गया है, 'कणगसुत्तेन फुल्लिया जस्स फुल्लिताउ दिण्णाउ तं कणग फुल्लियं जहा कद्दमेण उड्डेडिज्जति' कनक सूत्र अर्थात् कलावत्तू से जो फूले फूल काढ़े गए हों। बाद का

७२—आचारांग, २, ५, १, ३—८
७३—वही
७४—निशीथ, ७, ४६७
७५—आचारांग, २, ५, १, ३—८
७६—वही
७७—निशीथ, ७, ४६७
७८—वही

अर्थ ठीक समझ मे नही आता लेकिन उससे कलमदारी के काम की ओर सकेत मिलता है । कर्दम के अर्थ यहाँ मसाला या मोम से है जिसका कलमदारी में काफी काम पडता था।

१३-१५—उट्टाणि, वग्घानि, विवग्घानि—ऊट, बाघ और चीते के चमडो से बनी चादरें[७९]।

१६—आभरणानि—पत्ती जैसे एक अलकार से सुसज्जित–'पत्रिकादि एकाभरणेन मडिता'। आभरण—विचित्त[८१] भरी नकाशीदार चादर थी जिसकी नकाशियो में पत्तिया चन्द्रलेखा, स्वस्तिक, घटिका और मोती आते थे ।

इन वस्त्रो और चादरो के सिवाय निशीथ और दूसरे जैन ग्रथो में निम्नलिखित वस्त्रो के उल्लेख है—

१—पत्तगाणि[८२]—निश्चय ही इससे पशमीने का उद्देश्य है ।

२—पाणालाणि[८३]—आवरण के लिए कपडे ।

३—तिरीड पट्ट—तिरीट वृक्ष (सिम्प्लिकोस रेसीमोसा) की छाल के रेशो से बना कपडा । निशीथ[८४] में इसकी चौडी व्याख्या की गयी है—'तिरीटरुक्खस्स वागो, तस्सा ततुपट्टवरिसो सो तिरीडपट्टो तम्मि कयाणि तिरीडपट्टाणि अहवा कीडयलाला मलय विसये मलयाणि पत्राणि कोविज्जति तसु वालेसु पत्तुण्णाणि दुगुल्ल्लातो अभतरहिरे ज ज उपज्जति त असुयम्' अर्थात् तिरीट वृक्ष की छाल की रेशो से बना पट्ट और उससे बना तिरीट पट्ट अथवा मलय देश में मलय वृक्ष के पत्तो पर कीडे अपनी लार इकट्ठे करते है इसकी ऊपरी छाल से तो पत्रोर्ण और दुकूल बनते है और भीतरी हीर से अशुक । निशीथ की यह दूसरी व्याख्या दतकथा सी मालूम पडती है ।

४—वडग—अतगडदसाओ[८५] में राजकुमार गौतम के विवाह पर दहेज में मिले वस्त्रो में वडग के भी आठ जोडे थे । वडग का मतलब यहा टसर से है ।

५—रल्लक—अमरकोश में इसे एक तरह का कबल कहा गया है[८६]। युवान च्वाग ने भी होलाली अर्थात् रल्लक का उल्लेख किया है[८७]। उसके यात्रा विवरण के अनुसार यह ऊनी कपडा किसी जगली जानवर के ऊन से बनता था। यह ऊन आसानी से कत सकता था और इससे बने कपडे का काफी मूल्य होता था ।

७९, ८१—वही

८२—निशीथ ७, ४६७

८३-८४—वही

८५—अतगडदसाओ, पृ० ३२

८६—अमरकोश, २, ६, ११६

८७—वाटर्स, युआन च्वाग्स ट्रैवल्स इन इंडिया भा० १, पृ० १४८, लदन, १९०४

६—शाणक—एक जगह युवान च्वांग[८८] का कहना है कि भिक्षु सन (शणक) के बने गहरे लाल कपड़े पहनते थे। शायद किसान और मजदूर भी सन से बने सस्ते कपड़े पहनते थे।

कपास के बने वस्त्र

गुप्त युग में प्रायः जितनी तरह के कपड़े बनते थे उनके उल्लेख हमें संस्कृत और प्राकृत साहित्यों से मिलता है। पर आश्चर्य की बात है कि इस युग में सूती कपड़ों के बारे में हमें अधिक जानकारी नहीं मिलती। इसका कारण यही हो सकता है कि सूती कपड़े इतने प्रचलित थे कि उनके बारे में कुछ अधिक कहना उचित नहीं समझा गया। इसमें शक नहीं कि इस युग में बनारस, बंगाल तथा दक्षिण में अच्छे से अच्छे कपड़े बनते थे। लगता है आचारांग मे आये गर्जभ, स्फटिक इत्यादि सूती वस्त्र थे। बृहद् कल्पसूत्र भाष्य[८९] में एक जगह रुई कातने की विधि दी हुई है। पहले 'सेडुग' नामक रुई से बिनौले निकाल लिए जाते थे और बाद में वह धुन ली (पिञ्जितम) जाती थी। अंत में इस साफ रुई की पूलियां (पेलु) कातने के लिए बना ली जाती थीं।

कपड़े बनाने की प्रक्रिया

अमरकोश में कपड़े बिनने में करघे पर से ले कर माड़ी देने और कुंदी करने तक की क्रियाओं का वर्णन है। करघे पर से तुरन्त कपड़े को अनाहत (बिना कुंदी किया हुआ), निष्प्रवाणि (तुरन्त करघे से उतरा) या तंत्रक (करघे पर बुना) कहते थे[९०]।

कपड़ों के नाम—कपड़े के छोरों को दशा या वसति, लंबाई को दैर्घ्य, आयाम और आरोह और चौड़ाई को परिणाह या विशालता कहते थे[९१]।

कपड़ों के भिन्न भिन्न नाम और दाम—कपड़ों के छ पर्यायवाची यथा वस्त्र, आच्छादन, वास, चैल, वसन और अंशुक थे[९२]। कीमती वस्त्रों के लिए सुचेलक और पट शब्द आए हैं और मामूली कपड़ों के लिए वराशि और स्थूल शाटक[९३]। यहां यह बात गौर करने की है कि हलके और नकली कलाबत्तू की बनी साड़ी को आज दिन भी बनारस में रासी माल कहते हैं जो संस्कृत बराशि का का रूपांतर मात्र है। लेकिन वैदिक साहित्य में बरासि के अर्थ बरस की छाल के रेशे से बना एक घटिया कपड़ा होता है[९४]।

८८—वही, भा० १, पृ० १२०
८९—बृहद्, ३, २९९६
९०—अ० को०, २, ६, ११२
९१—अ० को०, २, ६, ११४
९२—अ० को०, २, ६, ११५
९३—अ० को०, २, ६, ११५
९४—भारतीय विद्या, १, १, पृ० ३४

चादरें—अमरकोश में ओढने विछाने की चादरो के भी कई नाम कहे गए है। ओढने की चादर को निचोल और प्रच्छदपट और कालीन के लिए रल्लक और कवल शब्द आए है [९५]।

कपडे की धुलाई—नायाधम्म[९६] के अनुसार कपडे पहने सज्जी के घोल में डाल दिये जाते थे । फिर इन्हें उवाल लिया जाता था और वाद में साफ पानी से धो लिया जाता था । आज दिन भी धोवी अक्सर कपडे इसी तरह धोते है ।

कपडे वनाने के प्रसिद्ध स्थान

मथुरा की डोरिया—युवान च्वाङ का कहना है कि उसके समय में मथुरा की डोरिया प्रसिद्ध थी[९७]। इस सवध में यह ध्यान देने योग्य वात है कि अजटा के भित्तिचित्रो में स्त्री-पुरुष दोनो धारीदार कपडे पहनते है ।

मदसोर के रेशमी वुनकर—कुमारगुप्त के काल के मदसोर से मिले एक शिलालेख से पता चलता है कि लाट अर्थात् गुजरात से कुछ रेशमी कपडे वुनने वाले मदसोर में आ कर वस गए थे। इनमें से कुछ तो दूसरे व्यवसायो में लग गए पर वाकी ने एक अपनी अलग श्रेणी वना ली। इस श्रेणी ने स० ४३७-३८ में एक सूर्य का मन्दिर वनवाया जिसकी मरम्मत ४७३-७४ ई० में हुई और इसी अवसर पर उपरोक्त शिलालेख प्रस्तुत किया गया[९८] । इस लेख में कारीगरो ने अपने व्यवसाय और कारीगरी के प्रति अपना स्वाभालिक अभिमान प्रकट किया है। वे कहते है कि तारुण्य और काति से युक्त होने पर भी, सुवर्णहार तावूल और फूलो से सजे होने पर भी तव तक स्त्रिया प्रिय नहीं वनती जव तक वे रेशमी वस्त्र न पहने । ये वस्त्र छूने में कोमल (स्पर्शवता) तथा वर्णान्तर विभाग से अलकृत होते थे[९९] ।

ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि गुप्तयुग में मदसोर के वने रेशमी जोडे स्त्रियो को वहुत प्रिय थे । ये वस्त्र छूने में कोमल होते थे और इनमें रगो का अपूर्व समतुलन होता था। वर्णन से ऐसा मालूम पडता है कि यहा पटोले से प्रयोजन है ।

आसाम के रेशमी कपडे

आसाम की अडी और मूगा आज दिन भी अपनी मजवूती के लिए प्रसिद्ध है। गुप्त-युग में आसाम में नकाशीदार रेशमी कपडे वनते थे । आसाम के राजा ने श्री हर्ष के पास जो उपायन भेजे[१००] उनमें भोजपत्र जैसी कोमल जातीपट्टिका और कोमल चित्रपट के टुकडे

९५—अ० को०, २।६।११६
९६—नायधम्म, ३, ६०
९७—वाटस, वही, भा० १, पृ० ३०१
९८—इडि० एटि०, १५, पृ० १७६
९९—वही, पं० १७७
१००—हर्षचरित, पृ० २१४, (कावेल का अनुवाद)

भी थे । कावेल ने जाती पट्टिका का अर्थ यहां धोती अथवा साड़ी किया है पर यह ठीक नहीं है। वास्तव में इसके शाब्दिक अर्थ के अनुसार इसका अर्थ होता है रेशमी वस्त्र के लंबे थान जिनमें चमेली के फूलों की नकाशी बनी हो (जाती=चमेली, पट्टिका=पट्टियां) । भोजपत्र से इसकी तुलना से पता लगता है की जातीपट्ट किसी तरह का मूंगा था क्योंकि आज दिन भी इसका रंग भोजपत्र जैसा ही होता है । चित्रपट मे लगता है भरी नकाशी होती थी ।

बंगाल के धोती दुपट्टे

गुप्तयुग में भी बंगाल अपने कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था । हर्षचरित में पौड्र (उत्तरी बंगाल) के बने धोती दुपट्टे की तारीफ की गयी है।

गुजरात की बांधणी

गुजरात और राजपुताने की बांधणी या चूनरी आज दिन भी प्रसिद्ध है[१०१] । हर्षचरित में [१०२] इसे पुलकबंध कहा गया है और इससे कभी कभी स्त्रियों के कंचुक बनते थे ।

व्यवहारसूत्र में कपड़े बनने के प्रसिद्ध स्थल

व्यवहारसूत्र भाष्य मे[१०३] एक जगह उन जगहों की सूची दी हुई है जहां कपड़े बनते थे। समुद्र पार (पारावतादि) विदेशों से भी लगता है कपड़े आते थे । टीकाकार के अनुसार यहां आदि से पौंड्र का मतलब है । व्यवहारसूत्र के भाष्य में जो शायद गुप्तयुग मे लिखा गया था कोटंब, ताम्रलिप्ति और सिंधु कपड़े बनाने के बड़े केन्द्र थे । टीकाकार ने कोटंब की व्याख्या गौड़ देश के अर्थात् बंगाली कपड़े से की है पर शायद यह ठीक नही है। जैसा बौद्ध साहित्य से पता चलता है कोटुंबर[१०४] औदुंबर देश (पठान कोट) में बनता था। ऐसा पता चलता है कि ग्यारहवीं सदी में जब व्यवहार भाष्य की टीका लिखी गयी कोटुंबर की याद इतनी हलकी पड़ गयी थी कि टीकाकार ने उसे पंजाब से उठा कर बंगाल मे रख दिया । ताम्रलिप्ति अर्थात् कलकत्ते के पास आधुनिक तामलुक भी उस युग मे कपड़े बनाने का प्रसिद्ध केन्द्र था । सिंधु प्रदेश भी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था ।

काशी के बने वस्त्र

इस युग में काशी के बने वस्त्रों का तो कोई साहित्य में उल्लेख नही मिलता पर लगता है कि पुष्पपट्ट[१०५] यानी किखाब यहीं बनता था।

१०१—वही, पृ० ७२
१०२—वही, पृ० २६१
१०३—व्यवहारसूत्र भाष्य, ७, ३
१०४—भारतीय विद्या, १, १, पृ० ४०
१०५—हर्षचरित, पृ० ८५

विवाह में कपडे देने की प्रथा

शान-शौकत और लेन-देन की प्रथा इस देश में विवाह की एक खास बात है। इस अवसर पर बराती और घराती दोनों दिखाव बनाव में एक दूसरे से होड लगाते है। इस प्रथा की प्राचीनता हमें हर्षचरित से लगता है। हर्ष की बहन राज्यश्री के विवाह के समय राज महल में अच्छे से अच्छे कपडे दहेज मे देने के लिए सजाये गए थे। क्षौम, सूती कपडे (बादर), दुकूल, लालातंतुज, नेत्र और अंशुक इन कपडो में मुख्य थे।[१०६] यह ठीक पता नही लगता कि नेत्र क्या था। कावेल के अनुसार यह कलाबत्तू और रेशम से बिना एक तरह का वस्त्र होता था। अमरकोश[१०७] के टीकाकार क्षीरस्वामी के मत से नेत्र एक वृक्ष विशेष की छाल के रेशे से बनता था। १४ वी सदी तक बंगाल में नेत्र अथवा नेत एक मजबूत रेशमी कपडे को कहते थे। नेत की पाचूडी पहनी और बिछाई जाती थी[१०८]। श्री कावेल ने लालातंतुज का अर्थ स्पाइडर्स सिल्क अर्थात् बहुत महीन रेशमी कपडा किया है। इस संबंध मे हम निशीथ चूर्णि की तिरीटपट्ट की व्याख्या की ओर ध्यान दिला देना चाहते है। यह तिरीटपट्ट कीडो के लार से बना माना गया है। ये कीडे मलय वृक्ष के पत्तो पर अपनी लार इकट्ठा करते थे और उसके ऊपरी भाग से तिरीटपट्ट बनता था। जो भी हो पता ऐसा लगता है कि लालातंतुज किसी बहुत पतले रेशमी पारदर्शी कपडे का नाम था।

संस्कृत साहित्य में सिले और बेसिले कपडे

यह कहा जा चुका है कि अधिकतर भारतीय सिले कपडे नही पहनते थे। पुरुष धोती और दुपट्टे पहिनते थे और स्त्रिया साडी। हमारे देश की जलवायु को देखते हुए जो वर्ष मे अधिकतर गरम और खुश्क रहती है, धोती, दुपट्टा, चादर और साडी उपयुक्त और स्वास्थ्यकर पहरावे है। लेकिन इसके यह माने नही है कि भारतीयो को सिले कपडे पहनने से कोई रुकावट थी। बिना सिले कपडे सादे होते थे इसलिए धोती, दुपट्टा और चादर ऐसे कलात्मक ढंग से पहने जाते थे कि जिससे पहनने वाले के सौंदर्य मे अभिवृद्धि होती थी और कपडे भी बडे सुहावने लगते थे।

अमरकोश में सिले और बेसिले कपडो के बारे मे बहुत कम कहा गया है। इसमें धोती के लिए चार शब्द है यथा, अंतरीय, उपसव्यान, परिधान और अधोशुक,[१०८] तथा दुपट्टे और चादर के लिए पाच यथा, प्रावार, उत्तरासंग, बृहतिका, सव्यान और उत्तरीय[१०९]।

१०६—वही, पृ० १२५

१०७—अ० को०, वही, प० ३१३

१०८—तमोनाशचंद्र दास, आसपेक्ट्स ऑफ बंगाली सोसाइटी फ्रोम बेंगाली लिटरेचर, पृ० १८० १८१, कलकत्ता, १९३५

१०८—अमरकोश, २, ६, ११७

१०९—वही, २, ६, ११७ ११८

धोती और दुपट्टे के लिए भिन्न समानार्थक शब्दों में, उनके नाम और बनावट के अनुसार क्या क्या भेद थे, यह कहना कठिन है ।

चोली

स्त्रियों की चोली के लिए चोल और कूर्पासक शब्द आये हैं [११०], पर यह नहीं बतलाया गया है कि इन दोनों में क्या भेद था । चोली अथवा कंचुक के अर्थ में कालिदास ने कूर्पासक शब्द का कई बार व्यवहार किया है [१११] । जैसा कि ऋतुसंहार से पता चलता है कूर्पासक एक तरह की चोली थी जो स्तनों पर कस के बैठती थीं।

लहँगा

आधे जंघों तक पहुंचते हुए घाघरे को चंडातक कहते थे [११२] । आगे चल कर हम देखेंगे कि चंडातक का अर्थ घाघरे तक ही सीमित न रह कर स्त्रियों और पुरुषों की एक तरह की कमीज के लिए भी होने लगा था ।

लबादा

जाड़े में पहनने के लबादे को नीशार [११३] कहते थे । और अंगरखे की तरह एक पैरों तक लटकते हुए सिले वस्त्र को प्रपदीन [११४] ।

गुप्तयुग में स्त्रियों के वस्त्र पहनने के ढंग

गुप्तयुग के साहित्य में विशेषतः कालिदास के नाटकों और बाण भट्ट की आख्यायिकाओं से तत्कालीन वेशभूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है । स्त्रियां साड़ी और चादर के सिवाय वैकक्ष्य भी पहिनती थीं। सावित्री के पहिरावे का वर्णन करते हुए बाण भट्ट कहते हैं कि उनके अंग पर एक शाल (गात्रिका) था, जिसकी गट्ठी स्तनों के बीच बंधी थी, [११५] और उसका वैकक्ष्य बाएं कंधे से होता हुआ दाहिने हाथ के नीचे से जाता हुआ यज्ञोपवीत की तरह एक योगपट्ट (योग साधना के समय शरीर को बांधने वाली एक पट्टी) से बना था । स्त्रियां कभी कभी कंचुक भी पहनती थीं। मालती का पहिरावा बतलाते हुए बाण कहते हैं कि वह सांप के केंचुल से भी हलका और पैर के अंगूठों तक लहराता हुआ (प्रपदीन) धुले हुए सफेद नेत्र का बना

११०—वही, २, ६, ११८

१११—ऋतुसंहार, ४, १६, कूर्पासकं परिदधाति नखक्षतांगी; वही, ५, ८, मनोज्ञकूर्पासक पीड़ितस्तना.।

११२—अमरकोश, २, ६, ११६

११३—वही, २, ६, ११८

११४—वही, २, ६, ११६

११५—स्तनमध्य-गात्रिका-ग्रन्थि; योगपट्टेन विरचित वैकक्ष्य, हर्षचरित, पृ० ६,

हुआ कचुक पहने थी [११६]। उस कचुक के नीचे रग बिरगे चूनरो से सुसज्जित केसरिया चडातक था। यहा पुलकवध से गुजरात और राजपूताने की बाधणी अथवा चूनरी से मतलब है। बाण के अनुसार थानेश्वर की स्त्रिया चोली पहनती थी [११७]।

स्त्रिया कभी कभी सुदर नक्काशीदार कपडे पहनती थी। बाण भट्ट ने एक जगह एक देवी को एक मलमल की चादर पहने दिखलाया है जिसमें सैकडो तरह के तरह तरह के पुष्प और चिडियो के नकशे बने थे और जो मद वायु के धीमें झोको से तरगित हो रही थी[११८]।

ऋतुओ के अनुसार स्त्रियो के कपडे

स्त्रिया ऋतुओ के अनुकूल अपने कपडो में हेर फेर कर लेती थी। ग्रीष्म में वे दुकूल की बनी एक हल्की साडी पहिनती थी[११९] और बसन में केसरिया साडी और केसरिया और लाल स्तनपट्ट [१२०]।

राजा का पहरावा

राजे सादे पर रोबदार कपडे पहनते थे। हर्षचरित में [१२१] हर्ष को नेत्र सूत्र से मिश्रित धोती और सितारे टका हुआ दुपट्टा पहने दिखलाया गया है। राजा की सफेद धोती हस मिथुन की नक्काशी से सुशोभित होती थी और उसके सिरे चमर से निकली हवा में फडफडाया करते थे[१२२]। युद्धक्षेत्र को जाते हुए हर्ष को धोती और हस मिथुन से अलकृत दुपट्टा पहने बताया गया है[१२३]। नायाधम्म कहाओ[१२४] में राजकुमार गौतम को अशुक की धोती और दुपट्टा जो रगीन, महीन, और मुलायम थे और जिनके किनारो पर सुनहरा काम था, पहरे बतलाया गया है। अतगडदसाओ[१२५] में राजकुमार गौतम को हस लक्षण दुकूल पहने बताया गया है।

११९—तिरोहिततनुलता, वृत अनुसुराग-पाटल, पुलकबध चित्र-चण्डातमभ तस्फुटम्, हर्षचरित, पृ० २६१, धौत-धवल-नेत्र निर्मितेन निर्मोक-लघुतरेण प्रपदीनेन कचुकेन

११७—हर्षचरित, पृ० ८३

११८—बहुविध कुसुम शकुनिशत-शोभितातिपवन-चलितस्तनुतरगादतिस्वच्छादशुकात्, हर्षचरित, पृ० ९६

११९—ऋतुसहार, १, ४

१२०—ऋतुसहार, ६, ४, कुसुभरागारुणितैर्दुकूलैर्नितबबिबानिविलासिनीनाम् रक्ताशुकै कुकुम रागगौरैरलकृयते स्तनमण्डलानि

१२१—सतारागणेनोपहितेन द्वितीयाम्बरेण विमलपयधौतेन नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा, हर्षचरित, पृ० ५९

१२२—अमृतफेनधवले गोरोचनालिखित-हसमिथुन-सनाथ-पर्यन्ते चारुचमर-प्रनर्तित-दशे, 'कादबरी (काले द्वारा सपादित), पृ० १९

१२३—परिधाय राजहस-मिथुन-लक्ष्मणि सदृशे दुकूले, हर्षचरित, पृ० १९८

१२४—नायाधम्म, १, १३

१२५—अतगड, पृ० ४६

उच्च वर्ण के लोगों के कपड़े

उच्च वर्ण के लोग समाज मे अपनी मान मर्यादा के अनुकूल कपड़े पहनते थे । बाण ने इसी श्रेणी के एक नवयुवक के धोती पहनने के ढंग का वर्णन किया है । "सरस्वती ने जिस युवक को देखा उसकी कमर हरे रंग की उस धोती से जिसका छोर जरा नाभि के नीचे था, जिसका सिरा कमरबंद के पीछे था और जिसके दोनों पक्ष इस तरह बंधे थे कि जांघ का एक तिहाई भाग देख पड़े, कसी थी[१२६] ।"

पदाति और अश्वारोहियों के पहरावे

बाण भट्ट को तत्कालीन सिपाहियों के पहिरावों का अच्छा ज्ञान था । उस युग में पैदल सिपाही कृष्णागरुचर्चित कंचुक पहनते थे । उनके सिर रुमाल से ढंके रहते थे और कटार दोहरे कमरबंद के फेटे में खुसी रहती थी[१२७] । घुडसवार कभी कभी वारबाण पहनते थे[१२८] । सिपाही कभी कभी बाघंबरनुमा कपड़े से बने कंचुक और रंग बिरंगी पट्टियों में बनी पगड़ियां पहनते थे[१२९] । युद्धक्षेत्र मे जानें वाले योद्धाओं का निम्नलिखित वर्णन हर्ष-चरित मे दिया है—"उनकी जंघाएं चित्रित और सुकुमार नेत्रपट से ढकी थीं । उनके ताम्र वर्ण पैर कीचड़ से सने वस्त्र से चित्रित थे और उनके पाजामे भौंरे से काले थे । उनके कंचुक लाजवर्दी रंग के थे । उनके ऊपर उन्होंने चीन-चोलक तथा तारमुक्ता वाले स्तवरक पहन रक्खे थे । उनके कूर्पासिक रंग बिरंगे और उनकी चादरें हरी थी । उनकी पगड़ियों में कर्णोत्पल की नालें खुसी थी । बहुधा उनके सिर केसरिया उत्तरीय से भी ढंके थे[१३०] ।

ऊपर के वर्णन मे बहुत से शब्द वस्त्र और वेश भूषा के संबंध में आए है जिनके विषय मे कुछ कहना आवश्यक है ।

(१) नेत्र—इस रेशमी कपड़े के बारे में हम कुछ पहले ही कह आए हैं यहां नेत्र के वर्णन से पता लगता है कि वह कोमल नक्काशीदार रेशमी कपड़ा (उच्चित्रसुकुमार) रेशमी वस्त्र होता था ।

१२६—पुरस्तादीषदधोनाभि-निहितैककोण-कमनीयेन, पृष्ठतः कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेनोभयतः गन्ट्वलनप्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरितानिविडनिपीडितेनाधरवाससा विभज्यमान-तनुतरमध्यभागम् हर्षचरित, पृ० १७-१८।

१२७—पिनद्ध-कृष्णागुरु-पङ्ककलकच्छुरण-कृष्ण-शबल-कपाय-कञ्चुकेन उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन, द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रंथिग्रंथितासिधेनुना, वही, पृ० १९

१२८—धवलवारबाणधारिणं, धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिम्, वही, पृ० १९

१२९—शरद्व्याघ्रचर्म-शबल-वसन-कंचुकधारिभि., अनेकपट्टचीरकोद्बद्धमौलिभिः, कादंबरी, पृ० १६१।

१३०—उच्चित्रनेत्र-सुकुमार-स्वस्थगण-स्थगितजंघाकांडैश्च, कर्दमिक-पट-कल्मषितपिशंगपिंगैः अलिनील मसृणसतुल-समुत्पादितकंचुकैः उपचितचीनचोलकैश्च, तारमुक्तास्तवकित-स्तवरक-वारबाणैश्च उष्णीषि पट्टोदग्रथ-कर्णोत्पलनालैश्च, कुंकुमराग-कोमलोत्तरीयान्तरितोत्तमांगैश्च, हर्षचरित, पृ० २०२।

(२) कचुक—अमरकोश के अनुसार[१३१] कचुक और वारवाण शरीर के बख्तर को कहते थे। लेकिन योद्धाओ के कचुक को लगता है कुरतानुमा होते थे। एक जगह तो यह बुदकीदार कपडे का और दूसरी जगह यह नीले कपडे का बना बतलाया गया है।

(३) वारवाण—वारवाण वह स्तवरक कपडे का बना होता था जिसके चमकीले मोती के गुच्छे टके होते थे। स्तवरक शब्द सस्कृत का न हो कर पहलवी भाषा का है। कुरान शरीफ में भी इसका जन्नत के प्रकरण मे उल्लेख है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह काफी कीमती कपडा होता था। स्तवरक के उल्लेख से यह भी पता चलता है कि सासानी, ईरान और भारत से काफी व्यापारिक सबध था[१३२]। स्तवरक के उल्लेख में यह भी साफ हो जाता है कि वारवाण लोहे का बना जिरह बख्तर नही था। हो सकता है कि वारवाण मुगल कालीन चिलटे की तरह एक भरा हुआ कोट हो जिसे तलवार के वार से शरीर को बचाने के लिए पहना जाता था।

(४) चीन चोलक—शायेद चीन चोलक को जिरह बख्तर का चहार आइना समझत है। इसके वर्णन मे एक वात तो पक्की हो जाती है कि यह कचुक के ऊपर पहना जाता था और इसलिए शायद यह किसी तरह का चहार-आईना रहा हो। यह रुई भरा हुआ पूरी बाह का लबा कोट भी हो सकता है जो मध्य एशिया मे सवत्र पहना जाता है। जो भी हो प्राय यह तो निश्चय है कि मध्य एशिया में आया हुआ कोई बख्तरनुमा वस्त्र था जिसे सातवी शताब्दी मे भारतीय योद्धा पहनते थे।

कूर्पासक—अमरकोश और ऋतु सहार मे तो यह शब्द स्त्रियो की चोली के लिये आया है पर यहा तो उसे योद्धा पहनते थे। लगता है कूर्पासक आधे बाह वाली मिर्जई अथवा कोई गजीनुमा वस्त्र रहा हो। अजटा के भित्ति चित्रो में सिपाही ऐसा वस्त्र पहने बहुधा दिखलाए गए हैं।

राज कर्मचारी, दूत, लेखक इत्यादि की पोशाके

वाण ने बहुत सी जगहो मे राज्य कर्मचारियो, दूतो, भिक्षुको, लेखको इत्यादि के पहरावे का वर्णन किया है। वाण की वर्णनात्मक शैली इतनी प्रौढ थी कि वे जरा में ही एक व्यक्ति या घटना का सजीव चित्र खडा कर देते थे। उदाहरणार्थ, हर्ष के भाई कृष्ण द्वारा बाण के पास भेजे हुए इनकी वेश भूषा का चित्र एक पक्ति में ही मिल जाता है। "उसका चडातक कमरबद से बधा था और उसके खुले बाल पीछे की ओर एक कपटे से बधे

१३१—अ० को०, २, ८ ६४

१३२—रिचार्ड जेफरी, ए वोकाबुलरी ऑफ फारेन वर्ड्स इन कुरान, गायक्वाड ओरियटल सीरीज १९३८, कुरान में इस्तब्रक, ८, ३०, ४४, ५३, ७६, २१ का व्यवहार रेशमी किमखाब के अर्थ में हुआ है। अधिकतर टीकाकारो ने इसे फारसी से उधार लिया शब्द माना है। यह शब्द पहलवी स्तोर से निकला है जिसका अर्थ मोटा और सुदर कपडा होना है।

थे[१३३] "। दूत का यह छोटा सा वर्णन हमारे सामने धावा मार कर आये धूल धूसरित दूत की वेश भूषा का चित्र एक पंक्ति मे मिल जाता है। ऐसा लगता है कि प्रतिहारी और महा प्रतिहारी सफेद कंचुक पहनते थे[१३४] और कमरवंद वांधते थे[१३५]।

सन्यासी भैरवाचार्य की वेशभूषा की तुलना अगर हम आज कल के सन्यासी की वेशभूषा से करें तो हमे बाण की दृष्टि की सत्यता का पता चल जायगा। एक जगह उन्हें वैकक्ष्य की तरह गेरुआ उत्तरीय तथा छाती तक पहुंचता गेरुआ कौपीन पहने दिखलाया गया है[१३६]। एक दूसरी जगह जव उनकी श्रीहर्ष से मुलाकात हुई तब वे काला कंबल[१३७] एक क्षौम का कोपीन पहने थे तथा रेशमी पर्यङ्क बंध से उनका शरीर बंधा था। वे पादुका भी पहने थे[१३८]।

पगड़ियाँ

अजंटा के भित्ति चित्रों में वहुत कम लोग पगड़ी पहने दिखलाये गए हैं लेकिन गुप्त सिक्कों पर अंकित मूर्तियों के सिरों पर तो अक्सर पगड़ियां देख पड़ती हैं। गुप्तकालीन साहित्य में वहुत जगह पगड़ी के उल्लेख है। हर्ष चरित में[१३९] एक जगह पगड़ी वांधने के लिए मलमल की पट्टियों का उल्लेख है। एक दूसरी जगह पगड़ी के बीच के बड़े लट्टुओं का जिक्र है[१४०]। अजंटा के भित्ति चित्रों में पगड़ियों का कम आना किसी स्थानिक विशेषता का द्योतक है, अथवा शायद पगड़ियां चित्रकारों ने इसलिए नहीं बनायीं क्योंकि उन्हें स्त्री पुरुषों के सुन्दर केश रचना से दिखलाता था, पगड़ियां रख कर वे ऐसा नही कर सकते थे।

४

जैन छेद सूत्रों मे जिनका अभी वहुत कम अध्ययन हुआ है भारतीय वेश भूषा और कपड़ों के इतिहास के लिए वहुत सामग्री सुरक्षित है। इनसे हमें जैन साधुओं और गुप्त युग के नागरिकों की वेश भूषा का पूरा पता चलता है। छेद सूत्रों का विजय साधुओं का आचार विचार है। कुल मिला कर छ छेद सूत्र है जिनमे वृहत् कल्पसूत्र भाष्य का वड़ा स्थान है। सूत्रों मे तो वस्त्र संबधी सामग्री कम है पर बाद के लिखे भाष्यों और-टीकाओं में काफी सामग्री है।

१३३—कार्दमिक-चेलचीरिकानियतोच्चण्डचण्डातकं, पृष्ठ-प्रेङ्खत-पटच्चरघटितगलित-ग्रन्थिम्, हर्षचरित, पृ० ४१।

१३४—नीध्रकञ्चुकाच्छिन्नवपुषा, हर्षचरित, पृ० ४६; कञ्चुकावच्छन्नवपुषा, कादंवरी, पृ० ३५।

१३५—हर्षचरित, पृ० ४६।

१३६—धातुरसारुणेन कर्पटेन कृतोत्तरासंग, हर्षचरित पृ० ८६।

१३७—कृष्णकंवल-प्रावरण, हर्षचरित, पृ० २६३

१३८—पाण्डर-पवित्रक्षौमावृत-कौपीनं, सावष्टंभ-पर्यंकवंध-मण्डिलतेनामृतफेन-श्वेतारुचायोग पट्टकेन, हर्षचरित पृ० २६५।

१३६—अंशुकोष्णीष-पट्टिकामिव, हर्षचरित, पृ० १४।

१४०—उष्णीषपट्टकल्ललाट-मध्यघटित-विकट-स्वस्तिक-ग्रंथि, हर्षचरित, पृ० ६०-८१।

वृहत् कल्पसूत्र भाष्य के, जो भारत के सामाजिक इतिहास के लिए एक अभूत पूर्व ग्रन्थ है, एक खड में साधुओ के वस्त्र पर तथा अविहित वस्त्रो के पहनने से पाप और उसके दूर करने प्रायश्चित्त सबधी नियम है । आनुषगिक रूप से इस खड मे नागरिको की वेश भूषा का भी वर्णन आ गया है । इस ग्रथ का सूत्र भाग निश्चय ही बहुत प्राचीन है और इसके रचयिता भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन माने जाते है । इसका भाष्य जिनदास ने शायद छठी सदी में लिखा । इसमें ईसा की आरभिक शताब्दियो के सामाजिक इतिहास का मसाला है पर अधिकतर मसाला गुप्त युग का है ।

कपडे बदलने के समय

वृहत् कल्पसूत्र[१४१] में चार समय कपडे बदलने की बात है यथा (१) नित्य निवसन, (२) नहाने के बाद का कपडा (निमज्जनिक), (३) उत्सवो पर पहने जाने वाले कपडे (क्षणोत्सविक) तथा (४) राजाओ , सभासदो इत्यादि से मिलने के समय के कपडे (राजद्वारिक) । उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि ऊपरी वर्ग के भारतीय अपने कपडे समय के अनुसार बदलते थे। आधुनिक समय में तरह तरह के कपडे पहनने की प्रथा इस देश में छूटती जाती है फिर भी लोग कुछ कपडे उत्सवो के लिए रख छोडते है।

कपडे वासने की प्रथा

गुप्त युग में कपडो की धुलाई और तैयारी का बहुत ख्याल रक्खा जाता था । छेद सूत्रो में कपडे धोने , कलफ करने और वासने की प्रथाओ का उल्लेख है । पहले कपडा धो लिया जाता था (धौत) फिर उस पर कुदी कर के (घृष्ट) माडी (मृष्ट) दी जाती थी और अत में धूप से वह वास (सप्रधूमित) दिया जाता था[१४२] ।

कपडे पर देवो का आवास

कपडो के भिन्न भिन्न भागो में देवताओ या राक्षसो का निवास माना जाताथा[१४३] । कपडो के चारो कोनो पर देवता किनारो और मध्य भाग में पितृ, कान के पास असुर और ठीक मध्य विन्दु में राक्षस निवास करते थे । कपडो के साथ देवताओ और असुरो का साथ दिखाने से शायद तात्पर्य यह था कि लोग धार्मिक अवसरो पर ठीक नाप के कपडे व्यवहार में लावें जिससे देवता प्रसन्न रहें ।

जैन साधुओ के विहित वस्त्र

वहुत प्राचीन प्रथा[१४४] के अनुसार इस युग में भी जैन साधुओ को जगिम, भगिम, शाणक, और पोत्तक कपडे पहनने की अनुमति थी । जगिम ऊट के बाल से वना कपडा था।

१४१—वृहत् कल्पसूत्र भाष्य, १, ६४४
[१४२—वही, ३, ३००१
१४३—वही, ३, २८८३

ऊनी कपड़ो का जिक्र करते हुए भाष्य भेंड़ के ऊन से बने कपड़े को औणिक, ऊंट के बाल से बने कपडे को औष्ट्रिक और हिरन के रोएं से बने कपड़े को मृग रोम कहता है। कुतप को जीर्ण कहा गया है। किट्ट ऊन अथवा बाल से बनता था। किट्ट ऊन और बाल के उस बचे अंश को कहते थे जो अच्छे कपडे बनाने के बाद बच जाता था[१४५]। बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[१४६] की एक पाद टिप्पणी मे संपादक ने उपरोक्त ऊनी कपड़ों के सम्बन्ध मे दो चूर्णियों की राय दी है। एक चूर्णि के अनुसार मृग लोम की व्याख्या सलोममूषकलोमंवा की गयी है सलोम का अर्थ यहां समूर हो सकता है। मूषक लोम का अर्थ साधारणतः मूसे के बाल है। पर यहां मूषक से ठंडे प्रदेशों मे रहने वाले ऊन बिलवासी पशुओं से जिनके समूर कपड़े बनाने के काम मे आते थे-प्रयोजन है। विशेष चूर्णि में मृगलोम की व्याख्या पव्वए यानं रोम याने बकरे का बटा हुआ रोआं है। कुतप भी बकरे के रोएं के किसी भाग से बनता था। इसका शायद यह तात्पर्य है कि कुतप तो बकरे के लंबे बाल से बनता था और पश्मीना पेट के नीचे के बालों से। किट्टिम चूर्णि के अनुसार बकरे के रोएं से बनता था। भांगिक-यानी भंगेला, शाण यानी सनी और तिरीट की छाल के रेशे के कपड़े भी जैन साधु पहन सकते थे।

जैन साधु ठीक नाप वाले (प्रमाणवत्), सम तल (समं), मजबूत (स्थिर) और सुंदर (रुचिकारक)[१४७] वस्त्र पहरते थे।

जैन साधुओं को शरीर स्पर्शी ऊनी कपड़े की इसलिए मनाही थी कि उनमे जूं पैदा हो जाती थी और गर्द भी इकट्ठा हो जाती थी। लेकिन वे ऐसी ऊनी चादरे जिनके गंदे होने का भय नही था और जो शरीर को ठंडक से बचाती थीं पहन सकते थे[१४८]। सूती धोती न मिलने पर जैन साधु तिरीट पट्ट और रेशम (कौशिकार) की बनी धोतियां पहन सकते थे। ऊनी चादर न मिलने पर छालटी की चादर ओढने का आदेश है। उसके भी न मिलने पर रेशमी चादर और उसके भी न मिलने पर तिरीट पट्ट की चादर ओढ़ी जा सकती थी[१४९]।

उपरोक्त पांच तरह के विहित वस्त्रों में से जैन साधु एक साथ केवल दो तरह के वस्त्र ग्रहण कर सकते थे जैसे सूती और ऊनी-एक साथ, अथवा तिरीट पट्ट और छालटी एक-साथ[१५०]। ऐसा न करने वाला दोष का भागी होता था।

बृहत् कल्पसूत्र भाष्य मे कपड़े की कटाई संबंधी अनेक शब्द आये हैं। बिना काट जोड़ वाले अनसिले कपड़े प्राकृतिक (यथाकृतं) कहलाते थे। जिस वस्त्र के केवल किनारे

१४५—वही, ४, ३६६१
१४६—वही, ४, पृ० १०१८, पा० टि० २
१४७—वही, ३, २८३५
१४८—वही, ४, ३६६७
१५०—वही, ४, ३६७०

(दशिका) कटे होते थे अथवा जो वस्त्र दो कपडे जोड कर बनाया जाता था अथवा जो वस्त्र मिला होता था (तुन्न) उसे अल्पपरिकर्म यानी कम काम किया हुआ वस्त्र कहते थे। वस्त्र मे अनेक काट और जोड अथवा उसके शरीर के नाप से बनने पर और उसमें काफी सिलाई होने पर उसे बहु परिकर्म अर्थात् बहुत काम वाला कपडा कहते थे[१५१]।

उपरोक्त सब तरह के कपडे नागरिक पहन सकते थे लेकिन जैन साधुओ को केवल यथाकृत वस्त्र ही विहित था, उसके न मिलने पर कुछ प्रायश्चित करने के बाद वे अल्प परिकर्म और बहु परिकर्म वस्त्र भी पहन सकते थे। लेकिन बीमारी अथवा यात्रा इस साधारण नियम के अपवाद थे[१५२]।

नागरिको के वे वस्त्र जिन्हे पहनने का जैन साधुओ को अधिकार न था —

नागरिको द्वारा व्यवहार मे लाये जाने वाले पूरे कृत्स्न कपडे जैन साधु व्यवहार मे नही ला सकते थे[१५३]। ये कृत्स्नवस्त्र, नाम, स्थापना, श्रेणी, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार छ श्रेणियो में बटे थे[१५४]।

द्रव्य वस्त्र दो विभाग मे बटे थे यथा सकल और प्रमाण। सकल वस्त्र गझिन बिना हुआ (घन तन्तुभि सान्द्र), चिकना (मसृण), बिना छोर का (निरुपहत, अञ्जनखञ्जनादि दोषरहित) और किनारदार होता था। गुण के अनुसार पुन सकल वस्त्र जघन्य उत्तम और उत्कृष्ट श्रेणियो मे बट जाता था। भाष्य की टीका के अनुसार जघन्य वस्त्र मुह पोछने का रूमाल इत्यादि (मुखपोतिकादि), उत्तम-वस्त्र सुगध लिप्त (पटलकादि) और उत्कृष्ट-वस्त्र माडी किया हुआ (कलपमादि, हिंदी कलफ) होता था। प्रमाण कृत्स्न वस्त्र की लबाई चौडाइ (विस्तारायाम) साधुओ के वस्त्रो से अधिक होती थी[१५५]।

क्षत्र कृत्स्न उन कपडो को कहते थे जो या तो देश के एक खास भाग में मिलते ही नही थे और अगर मिलते भी थे तो उनका दाम बहुत अधिक होता था। टीकाकार उदाहरण के लिए कहता है कि पूर्वी भारत के कपडे लाट में बहुत महगे पडते थे[१५६]।

काल कृत्स्न वस्त्र साल के कुछ महीनो में बहुत महगे पडते थे और बहुत मुश्किल से मिलते थे। टीकाकार कहता है, जैसे गरमी मे रक्त वस्त्र, जाडे मे चादरें (शिशिर प्रावरकादि) और वर्षा में केसरिया वस्त्र (वर्षासु कुकुमखचितादि)[१५७]।

१५१—वही, ४, ३६७१
१५२—वही, ४, ३६७२
१५३—वही, ४ पृ० १०६७
१५४—वही, ४, ३८८०
१५५—वही, ४, ३८८१–८३
१५६—वही, ४, ३८८४
१५७—वही' ४, ३८८५

भाव कृत्स्न कपड़ों के दो भेद होते थे 'वर्णयुत' रंग के अनुसार और 'मूल्ययुत' मूल्य के अनुसार[१५८]। जघन्य, उत्तम और निकृष्ट श्रेणी के कपड़ों के अलग अलग मूल्य होते थे। जघन्य श्रेणी के कपड़े का दाम अट्ठारह कार्षापण होता था और उत्तम श्रेणी के कपड़े का मूल्य एक लाख। उत्तम श्रेणी के कपड़ों के दाम अट्ठारह और एक लाख कार्षापण के बीच मे होते थे[१५९]। कीमती कपड़े पहनने वाले साधुओं के प्रायश्चित्त के संबंध मे कपड़ों के दाम, १८, २०, ४९, ५००, ९९९, १००००, ५०००० और १००००० कार्षापण दिया है[१६०]। उपरोक्त दामों से यह पता नहीं चलता कि यह दाम एक गज के लिए अथवा पूरे थान के लिए होता था। शायद यह पूरे थान का दाम था। यह भी पता नही चलता कि यहां तांबे के कार्षापण से मतलब है अथवा चांदी के। जो भी हो यह तो निश्चित है कि इस देश में गुप्त काल में काफी कीमत के कपड़े बनते थे।

विदेशों में उनकी प्रथा के अनुसार वस्त्र पहिनने की साधुओं को आज्ञा

जैन साधुओं द्वारा कीमती वस्त्र पहिनने पर प्रायश्चित्त का विधान था। कपड़े पहनने में यह रोक टोक समझदारी की द्योतक थी, क्योंकि कीमती वस्त्र पहिन कर विहार यात्रा में जाने पर साधु को चोरों का डर था[१६१]। यही नहीं, कीमती कपड़े पहने हुए साधुओं को अक्सर चुंगी वाले भी गिरफ्तार कर लेते थे और इस संदेह पर कि कपड़े चोरी के होंगे, उन्हे दंड देते थे[१६२]। इस संबंध में एक जैन आचार्य की कथा दी है। एक समय किसी ने एक आचार्य को एक कीमती शाल (कंबल रत्न) भेंट में दिया। शाल ओढ़े आचार्य को किसी चोर ने रास्ते में देख लिया। आवास में पहुंच कर आचार्य ने शाल के दो टुकड़े कर डाले। रात में चोर आया और छुरी दिखला कर आचार्य से कम्बल मांगा। उन्होंने शाल के टुकड़े कर देने की बात कही पर चोर ने न माना, इस पर आचार्य ने उसे शाल के टुकड़े दिखला दिए। चोर क्रोधित हुआ पर टुकड़ों को जोड़ कर वह जैसे तैसे शाल को ले कर चम्पत हो गया[१६३]।

स्थूण देश में जैन साधुओं को कपड़े के बारे मे कुछ स्वतत्रता थी। इस देश मे न तो चोरों का भय था न अच्छे कपड़े पहनने से किसी को कोई आश्चर्य ही होता था। ऐसी अवस्था मे जैन साधुओं को कीमती कपड़ों के किनारे हटा कर पहिनने की आज्ञा

१५८—वही, ३८८७
१५९—वही, ४, ३८९०
१६०—वही, ४, ३८९३
१६१—वही' ४, ३८९९, ३९००
१६२—वही, ४, ३९०१
१६३—वही, ४, ३९०३-४

थी[१६४] । पर कुछ अवस्थाओ में इन वस्त्रो के किनारे (दशिका) रखे जा सकते थे । कुछ कमजोर किनारो वाले वस्त्रो में छोरो पर इसलिए किनारे जोड दिये जाते थे कि वे अधिक टिकाऊ बन सकें। ऐसे वस्त्रो मे साधु किनारे रख सकते थे। कुछ देशो में वस्त्रो के किनारे पतले होते थे इनको भी ज्यो की त्यो रखने की आज्ञा थी[१६५] । इस सबध में टीकाकार सिंधु का दृष्टात देता है ।

उकवत से पीडित जैन साधुओ को विहित नाप वाले वस्त्रो से बढ घट कर नाप वाले वस्त्रो को भी पहनने की आज्ञा थी[१६६] । वैद्य को दक्षिणा देने के लिए भी साधु किनारे वाले वस्त्र रख सकते थे।

नेपाल, ताम्रलिप्ति और सिंधु-सौवीर (सिंध सागर दोआव और सिंध) बहुत कीमती कपडे बनाने के प्रसिद्ध केन्द्र थे । इन देशो में साधुओ सहित सब लोग कृत्स्न वस्त्र पहनते थे[१६७] । नेपाल इत्यादि देशो मे न तो चोरो का डर था और न कीमती कपडे पहनने मे कोई विशेष मान था । सिंधु-सौवीर में गदे और भद्दे कपडे पहनना बुरा माना जाता था । इस अवस्था में जैन साधु भी कीमती कपडे पहन सकते थे[१६८]

कुछ देशो मे (टीकाकार महाराष्ट्र का नाम देता है) नील कवल की काफी कीमत होती थी । लेकिन जैन साधुओ को इसे सरदी मे इसलिए ओढना पडता था क्योकि और कोई दूसरा वस्त्र इतनी गरमी नही देता था[१६९] ।

ऐसा लगता है कि जैन सघ खास कर अपने मध्य कालीन इतिहास म साधु व्रत धारण करने वाले राजकुमारो इत्यादि के आराम का ध्यान रखता था । उन्हे तब तक कोमल वस्त्र पहनने की आज्ञा थी जब तक वे साधुओ के खुरदरे वस्त्र पहनने के आदी न हो जाय[१७०]

साधुओ की वेश-भूषा

धोती और चादर के अलावा साधुओ को सूती कमरबद (पर्यस्तक) जिनमें न तो रग होता था न कोई नक्काशी (अचित्रा) पहनने की आज्ञा थी यह बिना जोड का कमरबद केवल चार अगुल चौडा होता था[१७१] । इस उल्लेख से यह भी पता चलता है कि उस युग के नागरिक रगीन और नकाशीदार कमरबद पहनते थे ।

१६४—वही, ४, ३९०५
१६५—वही, ४, ३९०६
१६६—वही, ४, ३९०७
१६७—वही, ४, ३९१२
१६८—वही, ४, ३९१३
१६९—वही, ४, ३९१४
१७०—वही, ४, ३९१४
१७१—वही, ४, ५९९८

बीमार साध्वी की परिचर्या करते समय जब उसकी सफाई के लिए करवट बदलवाने की जरूरत पड़ती थी, तब साधुओं को गोपाल्कंचुक नाम का एक वस्त्र विशेष पहिनने की आज्ञा थी[१७२]। इस वस्त्र के आकार का पता नहीं लगता पर यह घोघीनुमा अथवा पूरी बांहों वाला कंचुक था जिसे छूत से बचने के लिए पहरा जाता था। हो सकता है यह 'एप्रन' जैसा कोई वस्त्र रहा हो।

चादरें

भिन्न भिन्न तरह के पांच पांच दूष्यों के दो जोड़ नागरिक व्यवहार में लाते थे। पहले जोड़ में कोयव, प्रावारक, दाढ़िकालि, पूरिका और विरलिका आये हैं। जिनके निम्नलिखित अर्थ दिये गये है[१७३]।

१—कोयव—इसे रूई भरी दुलाई बतलाया गया है गो कि इसका प्राचीन अर्थ रोंएदार कंबल था।

२—प्रावारक—इसे नेपाल का थुलमे जैसा बड़ा कंबल (नेपालदि, उत्वण रोमा बृहत् कंबला:) कहा गया है। लगता है टीका में तालिका के नंबर बदल जाने से कोयव और प्रावार के अर्थो मे गड़बड़ी पड़ गई है क्योंकि साधारणत. कोयव का अर्थ रोएंदार कम्बल और प्रावार का अर्थ रूई भरी दुलाई होती है।

३—दाढ़िकालि—यह बहुत सफेद धुली हुई चादर होती थी जिसके किनारों पर दांत जैसे अलंकार बने होते थे।

४—पूरिका—इसकी बिनावट झिल्लड़ होती थी। इसका दूसरा अर्थ पाट की बनी चादर भी होता था।

५—विरलिका—दोसूती

दूसरे जोड़ मे उपधान, तूलि, आलिंगिका, गंडोपधान और मसूरिका नाम की तकियों का वर्णन है[१७४]।

(१) उपधान——परों से भरी तकिया।

(२) तूलि—साफ रूई (संस्कृत रूत) अथवा मदार की रुई से भरी तकिया।

(३) आलिगणिका—गाव तकिया। यह तकिया शरीर की लंबाई जितनी होती थी, और सोते समय पैरों के बीच रख ली जाती थी।

(४) गंडोपधान—सिर के नीचे एक तरफ रक्खी जाने वाली तकिया। लगता है यह तकिया गोल होती थी।

१७२—वही, ४, ३७९५

१७३—वही, ४, ३८२३

१७४—वही, ४, ३८२४

(५) मसूरक—यह गोल गद्दी (चक्कल गद्दिकादि) कपडे अथवा चमडे की वनी होती थी और रूई से वनी होती थी ।

जैन साध्वियो की वेश भूषा

जैन साध्वियो की वेश-भूषा लवी चौडी होतीथी । उनके पहरावे में इस वात का प्रयत्न रक्खा जाता था कि उससे उनका शरीर पूरी तरह से ढक जाय । वृहत् कल्पसूत्र भाष्य में उनके पहरावे के ग्यारह वस्त्र गिनाये गए हैं—यथा अवग्रह, पट्ट, अर्धोरुक, चलनिका। अभ्यतरनिवसनी, वहिर्निवसनी, कचुक, औपकक्षिकी, वैकक्षिकी, सघाटी और स्कध-कारिणी[१७५] ।

(१) अवग्रह—शरीर के गुप्त भाग को ढाकने के लिए वस्त्र । यह वीच में चौडा और वगल मे सकरा एक गज्झिन विना हुआ मुलायम कपडा होता था[१७६] ।

(२) पट्ट—यह वस्त्र वदों से कमरके वगल में वधारहता था । इसकी चौडाई चार अगुल होती थी और लवाई साध्वी के कमर की नाप के अनुसार। यह वस्त्र अवग्रह के छोरो को ढकता था और इसका रूप जाघिया (मल्लकक्षावद्ध) सा होता था । यह मध्य-कालीन नीवीवध का ही एक प्राचीन रूप था[१७७] ।

(३) अर्धोरुक—अवग्रह और पट्ट के ऊपर का यह वस्त्र पूरी कमर ढाकता था। इसका रुप तहमत (मल्लचलनाकृति) की तरह होता था, केवल फरक इतना था कि इसका चौडा सिरा दोनो जाघो के वीच कस कर वाध दिया जाता था (उरुद्वये च कसावद्ध)[१७८] ।

(४) चलनिका—यह अर्धोरुक जैसा ही वस्त्र था केवल फरक इतना ही था कि यह आधी जाघो तक पहुचता था । यह वेसिला वस्त्र होता था और इसके आकार की तुलना वांस पर नाचने वाले नट (लाङ्खिक) की कछाडेदार धोती से की जा सकती थी[१७९] ।

(५) अतर्निवसनी—कमर से ले कर यह वस्त्र आधी जाघो तक पहुचता था । यह कपडे पहनने के समय नगा दीखने से वचने के लिए पहना जाता था[१८०] ।

(६) वहिर्निवसनी—कमर से ले कर यह वस्त्र एडी तक पहुचता था । यह कमर से डोरी से वधा रहता था[१८१] । यहा शायद साडी से अभिप्राय है ।

१७५—वही, ४, ४०८२-८३
१७६—वही, ४, ४०८८
१७७—वही, ४, ४०८५
१७८—वही
१७९—वही
१८०—वही
१८१—वही

(७) कंचुक—साध्वियों का कंचुक साढ़े तीन हाथ लंबा और एक हाथ चौड़ा वेसिला वस्त्र जो कमर के दोनों ओर बांध लिया जाता था। इससे कठोर स्तन भी जिनका उभार कसे वस्त्रों के पहनने से हो उठता था ढक जाते थे[१८२] । यहां गृहस्थ स्त्रियों की तरह साध्वियों के लिए कंचुक न पहन सकने के कारण वेसिले कंचुक का विधान है ।

(८) औपकक्षिकी—यह कंचुक के ही समान डेढ़ हाथ मुरब्बे का एक चौखूटा वस्त्र था। यह छाती का एक भाग ढकते हुए दाहिने कंधे पर बांध दिया जाता था[१८३] ।

(९) वैकक्षिकी—यह वस्त्र औपकक्षकी के प्रतिकल बायीं ओर पहना जाता था। यह पट्ट, कंचुक और औपकक्षी को ढक लेता था[१८४] ।

(१०) संघाटी—संघाटियां चार होती थी । एक दो हाथ चौड़ी, दो तीन हाथ और एक चार हाथ । लंबाई मे ये चारों संघाटियां साढ़े तीन हाथ से चार हाथ तक होती थीं। दो हाथ चौड़ी एक संघाटी साध्वियां आवसथ में पहनती थीं तीन हाथ चौड़ी दो संघाटियों मे से एक तो साध्वियां भिक्षा मांगने के अवसर पर पहनती थी और दूसरी शौच जाने के समय । चार हाथ चौड़ी संघाटी धर्मोपदेश सुनते समय इसलिए पहनी जाती थी कि साध्वियों के सीधे खड़े होने पर उनका पूरा अंग ढक जाय[१८५] ।

(११) स्कंधकरणी—यह एक चार हाथ मुरब्बे का चौखूटा कपड़ा होता था जो चार तह करके कंधे पर तेज हवा से वचने के लिए रक्खा जाता था। इस वस्त्र का उपयोग औपकक्षिकी और वैकक्षिकी से बांध कर सुंदर स्त्रियों साध्वियों को वौनी दिखलाने के लिए किया जाता था[१८६] । इसका मतलव यह था कि प्रसाधन के लिए साध्वियां वस्त्र न पहने ।

साड़ी—साड़ी पहनते समय साध्वियां उसका एक हिस्सा चुन कर आगे या पीछे जैसा गृहस्थ स्त्रियां करती थीं, नही खोंस सकती थी। साड़ी की चूनन को उक्ख कहते थे। निशीथ मे उसकी व्याख्या है ,अधो वस्त्र के वीच का चुना हिस्सा नाभि के पास गोल उभार मे दिखाना[१८७] ।

कमरवंद—साधारण स्त्रियों की तरह साध्वियां कमरवंद (पर्यस्तक) नहीं पहन सकती थी । वीमारी मे वे ऐसा कर सकती थीं पर शर्त यह थी कि कमरवंद जालदार (अजालिक) न हो[१८८] । इससे यह पता चलता है कि इस युग की स्त्रियां जालीदार कमरवंद पसंद करती थी ।

१८२—वही, ४, ४०८८

१८३—वही,

१८४—वही, ४, ४०८९

१८५—वही, ४, ४०८९-९०

१८६—वही, ४, ४०९१

१८७—वही, २, पृ० १०६७

१८८—वही, ५, ५९६६

साध्वियों के वस्त्रों की तालिका से यह स्पष्ट है कि उसमें से सब नहीं तो अधिकतर वस्त्र गुप्त युग की स्त्रियां पहनती थीं। अजंटा और बाग के भित्ति चित्रों में अर्धोरुक, चलनिका, वहिर्निवसनी, संघाटी और स्कंधकरणी जैसे वस्त्र आये हैं और इन सब का व्यवहार साधारण स्त्रियां करती दिखायी गयी हैं। ऐसा लगता है कि गुप्त युग में जैन साध्वियों का पहरावा साधारण स्त्रियों के पहरावे को ले कर बना। केवल उसमें कुछ और वस्त्र शरीर के नंगापन को, जो उस युग के पहिरावे में लज्जाजनक न मान कर प्रसाधन और सौंदर्य प्रकाशन का एक अंग माना था, दूर करने के लिए जोड़ दिये गये।

नर्तक और नर्तकियों के पहरावे

यह आश्चर्य की बात है कि आराम पसंद गुप्त कालीन समाज जिसमें सुसंस्कृत यौनाकर्षण को कला मानते थे नर्तक और नर्तकियां अपने शरीर को पूरी तरह ढक लेते थे। अजंटा के भित्ति चित्रों में आये नर्तकों ने लगता कंचुक और पाजामे पहनते हैं। वृहत् कल्पसूत्र भाष्य[१८९] में कहा गया है कि अच्छी तरह से कपड़े पहने हुए नर्तकी को नृत्य में अपने पैर ऊपर उठाते हुए लज्जा का बोध नहीं होता। रंग मंच पर सैकड़ों तरह के खेल दिखलाती हुई नटी (लखिका) को इसलिए लज्जा का बोध नहीं होता था कि वह पूरे कपड़े पहने होती थी। रायपसेणिय[१९०] में नर्तक और नर्तकियों की वेश भूषा का पूरा वर्णन बच गया है। इस वेश भूषा का वर्णन हमें उस समय मिलता है जब सूर्याभदेव की आज्ञानुसार नर्तक और नर्तकियों ने भगवान महावीर के सामने बत्तीस तरह के नाच रंग मंच पर दिखलाये। इन युवा और सुन्दर नर्तकों ने दोनों ओर लटकते हुए उत्तरीय, कसे हुए नकाशीदार कपड़ों से बने कमरबंद (उप्पीलिय-चित्र-पट्ट-परियर), दुपट्टे[१९१] और रंग बिरंगे वस्त्र (चित्त-चित्त-चिल्लगनियसणाम्) पहन रक्खे थे। वे एकावलियों और दूसरे आभूषणों से भी सुसज्जित थे उनके मस्तकों पर तिलक थे और जूड़ों में शेखरक (तिलयआमेलण), उनके गले में तौके थीं और उन्होंने कंचुक पहन रक्खे थे (पिनद्धगेवज्जकंचुकीण)[१९२]।

जैन छेद्र सूत्रों में आए अनेक तरह के जूते

जैन छेद सूत्रों से पता चलता है कि उस युग में चमड़े के तरह तरह के जूते बनते

१८९—वही, ४, ४१२७

१९०—रायपसेणिय, प० बेचरदास द्वारा संपादित, पृ० १२३-२४

१९१—इस वर्णन में दुपट्टे का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है पर जिस वस्त्र का उल्लेख है उसका वर्णन यह है—संफेणग-वसरइय-संगय-पलंब-वत्थ ता—अर्थात वस्त्र के लटकते भाग फेनयुक्त लहरियों की तरह घूमते थे और उसकी काट नाट्यानुरूप थी। टीकाकार ने संगय की व्याख्या नाट्यविधी उपपन्ना की है। इस वर्णन के आशय से यह पता लगता है कि यह वस्त्र दुपट्टे अथवा एप्रन की तरह रहा होगा। नृत्य में गति दिखलाने के लिए दुपट्टा पहना जाता था।

१९२—वही, पृ० १५५

थे । जूते बनाने के लिए बृहत् कल्पसूत्र में गाय, भैंसे, बकरे, भेड़ और दूसरे वन्यपशुओं के चमड़े गिनाये गये है[१९३] । जैन साधु और साध्वियां किसी तरह के नापदार अथवा रंगीन चमड़े की वस्तुओं का व्यवहार नही कर सकते थे[१९४] । इस उल्लेख से यह आशय निकाला जा सकता है कि उस युग में तरह तरह के नाप और शकल के तथा रंगीन चमड़ों से जूते बनते थे जिनकी जन साधारण में काफी मांग थी । प्रमाण और वर्ण के अनुसार इन्हें चार भागों में; यथा सकल कृत्स्न, प्रमाण कृत्स्न, वर्ण कृत्स्न और बंध कृत्स्न में बांट दिया गया है[१९५] ।

सकल कृत्स्न—ये एक तल्ले जूते (एकपुटं या एकतलं) होते थे[१९६] । इस एक तल्ले जूते को जिसे तलिका कहते थे जैन साधु रात में कांटों से बचने के लिए पहन सकते थे । दिन में ये जूते तब पहने जा सकते थे जब सार्थवाह जिसके साथ जैन साधु चल रहे हों पगदंडी का रास्ता पकड़े क्योंकि ऐसे समय जूते पहनने से चलने में आसानी होती थी[१९७] ।

प्रमाण कृत्स्न—इन जूतों मे दो तीन अथवा इनसे भी अधिकतर तल्ले होते थे[१९८] ।

खल्लका—टीका के अनुसार इसके अर्ध खल्लक और समस्त खल्लक दो भेद होते थे । अर्ध खल्लक जूते आधे पैर ढंकते थे और समस्त खल्लक पूरे पैर[१९९] ।

खपुसा—ये जूते घुटनों तक पहुंचते थे[२००] । इनके संबंध में हम आगे चल कर कुछ और कहेगे ।

वागुर—इन जूतों से पैर और अंगुलियां ढंक जाती थीं।

कोशा—इससे चलने में अंगूठों के नखों की पत्थरों की ठोकरों से रक्षा होती थी

जंघा और अर्धजंघा—जंघा पूरे जंघे को और अर्ध जंघा आधे जांघ को ढंक लेता था[२०१] ।

पुटक—यह जूते तसमों से बने होते थे और इनके पहनने से जाड़े में पैरों की फटने से रक्षा होती थी[२०२] ।

कोशक और खपुसा नाम के जूते, सरदी, बरफ, सांप और कांटों से बचने के लिए

१९३—बृहत् कल्पसूत्र, ४, ३८२४
१९४—वही, पृ० १०५९
१९५—वही, ४, ३८४६
१९६—वही, ४, ३८४७
१९७—वही, २, २८८४
१९८—वही, ४, ३८४७
१९९-२००—वही
२०१—वही, ४, ३८४७
२०२—वही, ३, २८८४

पहने जाते थे । यह साफ है कि ये जूते ठडे देशो मे पहने जाते थे । जैन साधुओ को भी इन देशो में विना प्रायश्चित्त के ऐसे जूते पहनने की आज्ञा थी[२०३] ।

सकल कृत्स्न जूतो की निम्नलिखित व्याख्या दी गयी है । ये जूते (क्रमणिका) परो के नाप के अनुसार वनाये जाते थे और मध्य या और किसी भाग में ये कटे जुडे नही होते थे[२०४] । तात्पर्य यह है कि ये जूते एक पूरे चमडे से वनते थे ।

वर्ण कृत्स्न जूते सफेद अयवा रगीन चमडो से वनते थे[२०५] ।

वधन कृत्स्न—इन जूतो में तीन से अधिक वद होते थे[२०६] । एक दूसरी जगह[२०७] इस जूते में सन अथवा सूत की दो या उससे अधिक पक्तियो में सिलाइया अथवा वद होने की वात आयी है ।

जूतो के वद—जूतो अयवा वूटो में दो वद होते थे, सन का वना एक वद घुटने पर होता था दूसरा पैर की अगुलियो पर । कुछ जूतो में तीन वद होते पर एक घुटने पर होता था दूसरा पैर के अगुठे पर और तीसरा पैरो की शेप चार अगुलियो पर[२०८] ।

जूतो की उपरोक्त किस्मो मे खल्लक और खपुसा अजटा के भित्ति चित्रो और गुप्त सिक्को में आते हैं ।

जैसा हम पहले कह आए है उपरोक्त किस्मो के जूते जो शोभाजनक समझे जाते थे जैन साधु नही पहन सकते थे । उनके जूते अट्ठारह टुकडो में कटे और सिले होते थे। रगीन चमडो से उनके जूते नही वन सकते थे और उनमें केवल एक तल्ला और एक ही वद (एकवध) विहित था[२०९] ।

जैन साधुओ को भिन्न भिन्न तरह के जूते न पहनने देने के निम्नलिखित कारण थें, (१) चमडे के व्यवहार के माने, गाय और दूसरे पशुओ के प्रति क्रूरता थी[२१०] ।(२)जूतो कडाई से चलने में छोटे छोटे जतुओ की हत्या होती थी[२११] । (३) विना जूता पहन कर चलने में लोग सावधानी से काटे इत्यादि देख कर चलते थे। ऐसा करने से उन्हें क्षुद्र कीटादि

२०३—वही, ३, २३८५
२०४—वही, ४, ३८४८
२०५—वही, ८, ३८५१
२०६—वही
२०७—वही, ४, ३८६६
२०८—वही, ८, ३८७०
२०९—वही, ४, ३८७३
२१०—वही, ४, ३८५६
२११—वही, ४, ३८५७

भी दीख जाते थे और उन्हें बचा कर वे आगे बढ़ते थे, लेकिन जूते पहन कर चलने से मनुष्य कांटों और जीवों की कम परवाह करता था[२१२]। जूते पहनते ही हम पशुओं के प्रति क्रूरता स्वीकार कर लेते है[२१३]। क्षुद्र जीव स्वभाव से ही कोमल होते हैं इसलिए वे जूते की चाप सह नही सकते[२१४]।

धार्मिक दृष्टि से जूते न पहनना चाहे जितना पुण्य कार्य रहा हो दैनिक जीवन में यह संभव नहीं था कि जैन साधु जूते पहनने से बच सके, और इसीलिए हम इनके जूते न पहनने के साधारण नियम में कुछ अपवाद पाते है। विहार करते समय, बीमारी में, प्राकृतिक रूप से कोमल पैर वालों को, चोरों और वन्य पशुओं से सर्वदा ग्रस्त साधुओं को, कुष्ठ, अर्श से पीड़ित तथा कम देखने वाले साधुओं को, तथा विहार में निकले छुल्लकों और साध्वियों को जूते पहनने की आज्ञा थी। पारिवारिक विपत्ति तथा संघ और देश पर आयी विपत्तियों के समय भी अविहित जूते बिना किसी संकोच के पहने जा सकते थे[२१५]। विहार यात्रा में साधुओं को कोश तथा खपुसा नाम के जूते पहिनने का आदेश था[२१६]। अगर साधुओं को अविहित जूते पहनने ही पड़ते थे तो उन्हें काले रंग के जूते पहनने का आदेश था, उनके न मिलने पर लाल अथवा किसी दूसरे रंग के जूते पहने जा सकते थे पर ऐसा करने के पहले यह आवश्यक था कि उनके रंग विकृत कर दिये जावें[२१७]।

जैन साधुओं और साध्वियों की उपरोक्त वेश भूषा में हम एक सामाजिक विकास की क्रिया का दर्शन कर सकते हैं। हमें आचारांग सूत्र के पहले भाग से पता लगता है कि घोर कष्टमय तपस्या ही जैन धर्म का चरम लक्ष्य था। सामाजिक बंधनों को ख्याल में रख कर दो चार मोटे वस्त्र वे अपने अंग ढांकने के लिए रख सकते थे पर इन वस्त्रों का उदेश्य होता था केवल शरीर रक्षा और सामाजिक नियमों का पालन। गुप्त काल में सामाजिक व्यवस्था बदल गयी थी अच्छी और सुसंस्कृत वेश भूषा लोगों को अत्यंत रुचिकर हो गयी थी। बौद्ध भिक्षुओं को तो इस समय कपड़ों के विषय में विशेषकर विदेशों में जाने पर काफी स्वतंत्रता थी। जैन साधुओं को भी झखमार कर यह स्वतंत्रता कुछ अंशों में देनी ही पड़ी और प्राचीन वस्त्र संबंधी कठोर नियम ढीले करने पड़े। वस्त्र संबंधी इन्हीं नये आदेशों को बृहत् कल्प सूत्र मे पाया जाता है। अगर जैन धर्म को सजीव होकर आगे बढ़ना था तो उन्हें जैसा देस वैसा भेस स्वीकार करने की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य की कहानी छेद सूत्रों में है।

२१२—वही, ४, ३८५८
२१३—वही, ४, ३८५९
२१४—वही, ४, ३८६१
२१५—वही, ४, ३८६२
२१६—वही, ४, ३८६३
२१७—वही, ४, ३८६७

५

युवानच्वाङ् द्वारा वर्णित भारतीयो की वेश-भूषा

हम ऊपर जैन छेद सूत्रो में वर्णित वेश भूषा का वर्णन कर आए है। इस खड में हम चीनी यात्रियो द्वारा भारतीय वेश भूषा पर जो प्रकाश पडता है उसका वर्णन करेंगे। युवानच्वाङ, जिनका भारतीय वेश-भूषा का ज्ञान शास्त्रीय आधार पर अवलवित जान पडता है, का कहना है कि भारतीय बिना सिले सफेद कपडे पसद करते थे। पुरुष कमर में एक कपडा जो काख तक पहुचता था लपेट लेते थे और दाहिना कधा खुला छोड देते थे। स्त्रिया एक लवा वस्त्र जो दोनो कधो को ढकता हुआ ढीले तौर से नीचे लटका करता था पहनती थी[218]। युवानच्वाङ द्वारा वर्णित स्त्रियो के पहिरावे का वर्णन साफ नही है और हम यह निश्चित करने में असमर्थ है कि लवे ढीले कपडे से उनका उद्देश्य, साडी, चादर या कचुक इन तीन वस्त्रो में से किससे है। इन साधारण वस्त्रो के सिवाय, युवानच्वाङ के अनुसार, उत्तर भारत में जहा काफी सरदी पडती थी लोग तातारियो की तरह चपके जाकेट पहनते थे[219]। शायद यह जाकेट वाद की रुईदार पूरी वाहो वाली और वायी ओर वधने वाली बगलवदी की तरह कोई वस्त्र रहा हो।

इत्सिग द्वारा वर्णित बौद्ध भिक्षुओ का पहरावा

इत्सिग नाम के एक दूसरे चीनी यात्री ने बौद्ध भिक्षुओ और नागरिको के पहिरावे का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। मूल सर्वास्तिवादी बौद्ध भिक्षुओ के पहिरावे का वर्णन करते हुए इत्सिग कहता है कि उनके पहिरावे में निम्नलिखित वस्त्र होते थे। सघाटी (दोहरी चादर), उत्तरासग (चादर) और अन्तरवास (धोती)[220]। इन वस्त्रो के अलावा निम्नलिखित वस्तुओ का व्यवहार भी विहित था, (१) निषीदन (बैठने या सोने की चटाई), निवसन (अधो वस्त्र), (३) प्रति निवसन (एक दूसरा अधो वस्त्र), (४) सकक्षिका (वगल ढकने का वस्त्र), (५) कायप्रोछन (वदन पोछने का गमछा), (६) मुखप्रोन्छन (मुह पोछने का रूमाल), (७) केश प्रतिग्रह (हजामत के समय बाल गिराने के लिए वस्त्र), (८) भैष परिष्कार चीवर (दवाई का दाम देने के लिए वस्त्र)। उपरोक्त वस्तुओ के सिवाय और दूसरे वस्त्र ग्रहण करने की सर्वास्तिवादी भिक्षुओ को आज्ञा न थी लेकिन वह ऊनी कपडो के व्यवहार के लिए स्वतत्र था

रेशमी कपडो की अनुमति

ऐसा प्रतीत होता है कि सपूर्ण भारतवर्ष में बौद्ध भिक्षु वढिया घटिया दोनो तरह के

२१८—वाटर्स, वही, भा० १, पृ० १४८

२१९—वही

२२०—ए रेकर्ड ऑफ दि बुधिस्ट रिलिजन एज प्रैक्टिस्ड इन इन्डिया एन्ड दी मलाया आर्किपेलेगो पृ० ५४, जे० तकाकुसु द्वारा अनूदित, आक्सफोर्ड १८९६।

रेशमी वस्त्र पहन सकते थे और इस संबंध में किसी प्रतिषेधात्मक आज्ञा को इत्सिंग ठीक नहीं समझते थे। उनकी राय में यह बात हास्यास्पद थी कि कठिनता से मिलने वाला क्षौम तो विहित था पर आसानी से मिलने वाला रेशमी वस्त्र अविहित। इत्सिंग उस मत की आलोचना करता है जिसके अनुसार रेशमी वस्त्र इसलिए नहीं पहिनना चाहिए क्योंकि वह जीवों को मार कर बनता था। इत्सिंग इस तर्क की हंसी करता हुआ कहता है कि जीव हिंसा का यह सिद्धान्त अगर अपनी चरम सीमा पर पहुंचा दिया जाय तो भिक्षुओं को प्रायः सब चीजें छोड़ देनी होंगी[२२२]। रेशमी वस्त्रों के प्रति इत्सिंग का यह प्रेम शायद इसलिए है कि वह उस देश का वासी था जहां रेशम तो वहुत होता था पर क्षौम कठिनाई से मिलता था। इस तर्क से इत्सिंग के वैज्ञानिक विचार का भी पता चलता है।

बौद्ध निकाय के चारों भेद के अनंतर उनके मानने वाले भिक्षुओं के निवसन पहनने के ढंग के अंतरों से मिलता है। मूल सर्वास्तिवादी भिक्षु अपने निवसन के छोर कमरबंद के वाहर निकाल देते थे। महासांघिक भिक्षु निवसन का दाहिना छोर वायीं ओर ले जाकर कमरबंद में कस कर खोंस लेते थे। स्थविर निकायवादी और सम्मित निकायवादी भिक्षु अपने निवसन महासांघिक भिक्षुओं की तरह पहनते थे, सिवाय इसके कि पहले दोनों अपने निवसनों के छोर वाहर छोड़ देते थे और महासांघिक उनको कस कर कमर में खोंस लेते थे। इन चारों निकाय के भिक्षुओं के कमरबंद भी भिन्न भिन्न तरह के होते थे[२२३]।

भिक्षुणियों के वस्त्र

भिन्न भिन्न निकाय की भिक्षुणियों के वस्त्र पहनने की रीति उन निकायों के भिक्षुओं के वस्त्र पहिरने की रीतियों के अनुसार होती थी[२२४]। वे उत्तरासंग, अन्तरवास और संकक्षिका तो अपने निकाय के भिक्षुओं के तरह की पहनती थीं पर उनके निवसन पहनने का तरीका भिन्न था। निवसन के लिए कुसूलक शब्द का प्रयोग होता था क्योंकि इसका आकार कुसूल की तरह होता था। यह घाघरेनुमा वस्त्र एक वस्त्र के दोनों सिरों को सीकर वनाया जाता था। कपड़ा चार हाथ लंवा और दो हाथ चौड़ा होता था। घाघरा नाभि से ले कर एंडी के चार अंगुल ऊपर तक पहुंचता था। पहिनने में पहले घाघरे के अंदर खड़े हो कर फिर उसे ऊपर खींच लिया जाता था। घाघरे का सिरा कमर पर संकुचित कर के पीछे वांध लिया जाता था[२२५]। साधारणत. भिक्षुणियां अपनी छाती और बगलें नहीं ढांकती थी, पर युवावस्था स्तनों के उभार होने पर वे उन्हें ढंक सकती थीं[२२६]।

२२१—वही, पृ० ५५
२२२—वही
२२३—वही, पृ० ६६-६७
२२४—वही, पृ० ६७
२२५—वही, पृ० ७८
२२६—वही, पृ० ७८

भिक्षुओ के वस्त्र रगने के रग

कपडे रगवे के लिए रग काड (रहमानिया ग्लूटिनोसा, पीतचूर्ण (प्टेरोकार्पस इडिकस) को गेरू और लाल पत्थर के चूरे से मिला कर वनाते थे । कपडे रगने के सस्ते रग खजूर, लाल मिट्टी, लाल पत्थर के चूरे, हुरमुजी मट्टी और जगली नाशपाती से तैयार कर लिए जाते थे[२२७] ।

नागरिको के वस्त्र

इत्सिग के अनुसार उच्च वर्ण के भारतीय जिनमें राज कर्मचारी भी होते थे सफेद कपडो का एक जोड पहनते थे । पर गरीव केवल एक ही वस्त्र पहनते थे । धोती आठ फुट लवी होती थी और वह केवल कमर में लपेट ली जाती थी[२२८] ।

ठडे प्रदेशो की वेश-भूषा

कश्मीर से ले कर मगोल प्रदेशो तक जिनमे सूली (रूसी तुर्किस्तान), तिब्वती और तुर्की नस्ल की जातिया आ जाती थी लोग चमडे के कपडे पहनते थे । सूती वस्त्रो का व्यवहार तो यहा के लोग यदा कदा ही करते थे। शीत की वजह से लोग कमीज और पाजामे पहनते थे । भिक्षु और साधारण जन लि-प नाम का एक विशेष वस्त्र पहिनते थे[२२९] । यह लि-प शाब्द सस्कृत रेफ से निकला है और इसके वनाने का निम्नलिखित तरीका दिया गया है—रेफ वनाने के लिए कपडा इस तरह काटा जाता था कि उसमें पीछा न पडे और एक कधा भी न ढके । इसमें वाहे भी नही होती थी और वाया कधा ढकने वाला भाग सकरा होता था । ठडी हवा से वचने के लिए इसे दाहिनी वगल में वाध लिया जाता था। मोटा और गरम वनाने के लिए इस वस्त्र में रूई भर दी जाती थी । कभी कभी यह वस्त्र दाहिनी ओर सिला होता था और उसके सिरे पर वद जोड दिये जाते थे । इत्सिग ने पश्चिमी भारत में उत्तरापथ से आये भिक्षुओ को रेफ पहने देखा था। विहार की गरम जलवायु की वजह से नालदा में यह वस्त्र नही पहना जाता था। कुछ लोग कमीज भी पहनते थे, गो कि भिक्षुओ के लिए यह वस्त्र अविहित था[२३०]

बौद्ध भिक्षुओ के वस्त्रो के नाम

ताकाकुसु द्वारा इत्सिग की यात्रा विवरण के उस भाग का अनुवाद, जहा भिक्षुओ के वस्त्र पहनने की विधि दी गयी है, ठीक तरह से समझ में नही आता । सघाटी चार हाथ चौडी होती थी जिसमें गले से पाच अगुल हट कर एक चार अगुल चौखूटा कपडा जोड

२२७—वही, पृ० ७७

२२८—वही, पृ० ६७ ६८

२२९—वही

२३०—वही, पृ० ६७ ७०

दिया जाता था । इसके वीच में एक छेद होता था जिसके वीच से रेशमी अथवा सूती फीते वाहर निकाल कर छाती पर वांध दिये जाते थे[२३१] । उपवसन में भी इसलिए फीते लगे रहते थे कि वह जरा ऊपर खीच कर वांधा जा सके[२३२] । एकहरा अथवा दुहरा निवसन पांच हाथ लंवा और दो हाथ चौड़ा होता था और वह नाभि को ढंकते हुए पहना जाता था । इसके दोनों छोरों में तीन गांठे लगा दी जाती थीं और वे पीछे इस तरह खोंस ली जाती थीं कि वे आंखों से छिपी रहे । निवसन के ऊपर कमरवंद भी पहना जाता था[२३३] ।

कुरता

इस युग में आजकल का सर्व साधारण वस्त्र कुरते का पता भारतीय साहित्य से नहीं चलता, पर इसका उल्लेख लि-येन (मृत्यु ७८५-७९४ के वीच में) के संस्कृत चीनी कोश में हुआ है । चीनी शव्द चान् का जिसका अर्थ कमीज होता है संस्कृत पर्यायवाची कुरतउ दिया गया है[२३४] । कुरता की समानता पुर्तगाली कुरता-कवाया से की गयी है । पर यह निश्चित है कि पुर्तगालियों ने यह शव्द भारतीय भाषा से ही ग्रहण किया है । पुर्तगाली में कुरता कवाया के संयोग से यह पता लगता है कि कुरता और कवाया का वहुत नजदीक संवंध था । कुरता कवा, जो फारसी में एक लंवे गाउन जैसे वस्त्र का द्योतक है, के नीचे पहरा जाता था और यह दोनों वस्त्र मुगल पहरावे मे अपना विशेप स्थान रखते थे । लेकिन लि-येन के कोश में उल्लिखित कुरतउ किस भापा का शव्द था इसका अभी तक पता नही चला है । क्या यह तुर्की का शव्द है ? आशा है कि विद्वान् इस पर प्रकाश डालेगे ।

जूते

गुप्त-युग मे प्रचलित जूतों पर भी चीनी साहित्य से कुछ प्रकाश पड़ता है । फान-यु-त्सा-मिग में चीनी शव्द हियु का जिसके माने वूट होते हैं पर्यायवाची शव्द कवशि दिया है पर यह शव्द संस्कृत साहित्य में नहीं आता । पेलियो के अनुसार यह शव्द जूते के लिए फारसी कफ्स से वहुत कुछ मिलता है जो मध्य एशिया की तुर्की भापाओं में कापिश तथा किपिश शव्दों में जिनके माने जूते होते हैं वच गया है । इस शव्द की तुलना तिव्वती कव-श, जिसके माने धनी तिव्वतियों का भारतीय ढंग का जूता होता है, की जा सकती है। ले-फान-तांग्-सियाओ-सी (व्रम्ह-चीन-वर्तमुख) में जो इत्सिंग के चीनी कोश का एक उपोद्घात है, दो चीनी शव्द हियु और हिआइ जिनके अर्थ वूट और जूते होते हैं पर्यायवाची संस्कृत शव्द शवनस और पूल दिये गये हैं । महाव्युत्पत्ति में वूट और जूतों के लिए उपानह, पादुका,

---

२३१—वही, पृ० ७२-७३
२३२—वही, पृ० ७३
२३३—वही, पृ० ७५-७६
२३४—वागची, द्व लेक्सीक संस्कृत-शिनुआ, टोम, २ पृ० ३५७, पैरिस १९२७।

पारिवारिक पुत्र और मजदूर (मृत्यु) [illegible] आए हैं। [illegible]-बांध निवासियों और [illegible] के पुत्र [illegible] है [illegible] और पुत्र की [illegible] का ठीक ठीक पता नहीं चलता[15]। [illegible] है कि [illegible] के लिए [illegible] [illegible] [illegible] की ऐसी [illegible] में [illegible]। [illegible] पुत्र का जो पता नहीं [illegible] [illegible] के पुत्र का [illegible] के पुत्र [illegible] हो जाता है, [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] प्रदेश में [illegible] भी [illegible] [illegible] जाता है। [illegible] [illegible] [illegible][15] के [illegible] [illegible] में [illegible] है। इस [illegible] [illegible] [illegible] हूँ कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] इस देश में [illegible]।


२७५


२७६


२७७


२७८


२७९


२८०


२८१


२८२


२८३


२८४


२८५ ए०


२८५ बी०


२८५ सी०


२८६


२८७


२८८


२८९


२९० ए०


२९० बी०


२९१


२९२


२९३


२९४

दसवां अध्याय

मूर्तियों और चित्रों में गुप्त-युग की वेश-भूषा

गोली के अर्धचित्रों मे दक्षिण भारतीयों के चौथी शताब्दी की वेश-भूषा का सुंदर चित्रण हुआ है । इस वेश-भूषा का वर्णन करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि दक्षिण भारत के लोगों की चौथी शताब्दी के वेश-भूषा में और नागार्जुनीकुण्ड और अमरावती के अर्ध चित्रों में चित्रित दक्षिण भारत की वेश-भूषा में वहुत अंतर नहीं है ।

उच्च पदस्थ लोगों की वेश-भूषा

धोती—राजकुमार और उच्चवर्ग के लोग कमरबंद से वंधी धोती और पगड़ी पहनते थे । नागराज की मूर्ति मे[1] तत्कालीन धोती पहनने का सुंदर चित्रण है (आ० २७१) जरा घुटनों के ऊपर तक पहुंचती धोती कमर के साथ एक फंदेदार कमरवंद से वंधी है । धोती का फंदेदार और छुट्टे सिरे एक चूड़ी से निकाल दिये गये हैं, एक दूसरी जगह एक राजकुमार की धोती का सिरा चुन कर आगे खुंसा है । कमर के साथ धोती एक फूंदनेदार उमेठी पेटी से वंधी है । पेटी के अंदर से कमरवंद निकाल कर पहना गया है । पगड़ी में पान के आकार का एक शीर्षपट्ट, जिस पर एक पक्षी वना है, लगा है (आ० २७२)[२] । अपने घर के एकान्त में दोनों सिरे आगे लटकते हुए कमरवंद के साथ लोग धोती पहनते थे (आ० २७३)[३] ।

सिपाहियों की वेश-भूषा

युद्ध यात्रा पर निकले सिपाही अपनी धोती का अगला हिस्सा मोड़ कर कमर में खोंस लेते थे, जिससे चलने मे धोती लपटे नहीं । धोती के वंधन में मजवूती लाने के लिए कमरवंद भी पहनते थे (आ० २७४)[४] । इस कमरवंद के सिरे नाभि के नीचे लगी दो चूड़ियों के बीच से निकाल दिये जाते थे । अक्सर उनकी धोती घुटनों तक ही पहुंचती थी (आ० २७५)[५] । सिपाही पगड़ी भरी वांह के कंचुक और धोती भी पहनते थे (आ० २७६)[६] ।

एक जगह भगवान वुद्ध की पूजा करते हुए एक भक्त की पीठ दिखलाई गयी है जिससे

१—रामचन्द्रन्, बुधिस्ट स्कल्पचर्स फ्राम ए स्तूप नियर गोली विलेज, गुंटूर डिसट्रिक्ट, प्ले० ४ जे मद्रास, १९२९।

२—वही, प्ले० ९, ६

४—वही, प्ले० ५, वी०

५—वही, प्ले० ४, ६

६—वही, प्ले० ४

पता लगता है कि लोग लाग खोसते थे। शीर्षपट्ट को यथास्थान स्थिर रखने के लिए पगड़ी के पीछे एक चौपतिया कोढा भी लगा दिखलाया गया है (आ० २७७)[७]।

ब्राह्मणो की वेश-भूषा

अधिकतर ब्राम्हण धोती जिसका एक सिरा कमर के बगल में खुसा होता था और वैकक्ष्य पहनते थे (आ० २७८)[८]।

प्रतिहारी की वेश-भूषा

प्रतिहारी भरी बाह का कचुक ऊची टोपी और वैकक्ष्य पहने दिखलाया गया है (आ० २७९)[९]।

स्त्रियो की वेश-भूषा

स्त्रिया पतली साड़ी पहने दिखलायी गयी है। एक जगह एक विदेशी स्त्री टोपी पहने दिखलायी गयी है (आ० २८०)[१०]।

२

गुप्त-युग की वेश-भूषा के जिन अगो पर साहित्य से कम प्रकाश पडता है, उनका पुरातत्व से समाधान हो जाता है। इस युग की मूर्ति-कला अमरावती के अर्ध चित्रो की तरह हमें तात्कालिक सामाजिक जीवन के चित्र नही देती और इसका कारण इस युग की कला के उद्देश्य में परिवर्तन है, जिसमें अनुप्राणित हो कर वह अध्यात्मचिंतन की ओर उन्मुख हो जाती है। इससे उसमें वर्णनात्मकता की तो कमी हो जाती है, पर रसभावना कही अधिक बढ जाती है। पर भाग्यवश यह चिंतनशीलता मूर्तियो तक ही सीमित रही। इस युग के भारतीय चित्रकार तो अपने पुरानो की तरह चित्रो को तत्कालीन समाज और सस्कृति के प्रतिबिंब मानते रहे। अजटा के भित्ति-चित्र गुप्त-युग के वस्त्रो के लिए कोश के समान हैं। नक्काशिया इन वस्त्रो पर कम मिलती है। चित्रो में सादे और सिले वस्त्र दोनो आते हैं।

गुप्त-युग के सिक्के भी हमें तत्कालीन राजकीय वेश-भूषा के बारे में काफी मसाला देते हैं। इनमें अकित राजाओ को छोटी शबीहो में भी वेश-भूषा का आकर्षक चित्रण हुआ है।

वेश-भूषा पर विदेशी प्रभाव

गुप्त-साम्राज्य के स्थापित होने के सैकडो वर्ष पहले तक उत्तर पश्चिमी भारत हिन्द-यूनानियो, शको और कुषाणो के आधीन रहा। देशी और विदेशी सस्कृतियो के पारस्परिक सबध और आदान-प्रदान से दोनो सस्कृतिया एक दूसरे का दृष्टिकोण समझ गयी। मध्य एशिया का विशाल सास्कृतिक क्षेत्र शको और कुषाणो ने खोल कर भारतीय और चीनी

७—वही, प्लें० ६, ५
८—वही, प्लें० ४, एफ
९—वही, प्लें० २, ई
१०—वही, प्लें० ३, जी

संस्कृतियों का संपर्क स्थापित किया । गुप्त युग में भारतीय संस्कृति का बृहत्तर भारत में प्रसार होने से यह देश एशिया की बहुत सी जातियों का तीर्थ क्षेत्र बन गया। अजंटा के भित्ति-चित्रों में अपने जातीय पहरावों से अलंकृत, भारतीय, अफगान, तथा मध्य एशिया वासी बुद्ध की पूजा करते दिखलाये गये हैं। यात्रियों की इस रंग बिरंगी भीड़ से और अपने जातीय पहरावे पहरे हुए व्यापारियों के वस्त्रों से इस देश की वेश-भूषा पर प्रभाव पड़ना कुछ असंभव न था। बाणभट्ट की आख्यायिकाओं से भी इस बात का पता चलता है कि सातवीं शताब्दी में यहां कुछ सिले विदेशी वस्त्रों का व्यवहार होता था । इसका कारण भारतीय संस्कृति का ईरानी, अफगानी और चीनी संस्कृतियों से व्यापारिक और धार्मिक संबंध था। इसी संबंध की वजह से हम अजंटा के भित्ति चित्रों में भारतीय पहरावों के सिवाय पड़ोसी देशों के पहरावों का भी अध्ययन कर सकते हैं ।

अजंटा के भित्ति-चित्रों में बोधिसत्वों की रूढ़िगत वेश-भूषा

गुप्त-युग के सिक्के और अजंटा के भित्ति-चित्र ही हमारे गुप्त कालीन वेश-भूषा की जानकारी के प्रधान साधन हैं । अजंटा के भित्ति-चित्रों में राजे और राज पुरुष धोती और गहरे काम वाले मुकुट पहने दिखलाये गये हैं । पगड़ी तो शायद ही कहीं आती है । लेकिन सिक्कों मे तो गुप्त राजे धोती, दुपट्टा, कंचुक और पायजामे पहने दिखलाये गये हैं। वे पगड़ी और कभी कभी टोपी भी पहनते थे, पर प्रायः वे अपने सिर नंगे रखते थे । अजंटा के भित्ति-चित्रों में और सिक्कों पर आये राजाओं की वेश-भूषाओं में जो फ़र्क आ जाता है, उसका कारण शायद भित्ति-चित्रों मे बोधिसत्वों के देवत्व की कल्पना है। इन बोधिसत्वों की वेश-भूषा में हम मूर्ति रचना के मध्यकालीन नियमों का आरम्भ देखते हैं। अजंटा के भड़कीले मुकुट उन्हीं मध्यकालीन नियमों की देन मालूम पड़ते हैं, क्योंकि तत्कालीन साहित्य मे तो ऐसे मुकुटों के वर्णन नहीं से हैं । भड़कीले मुकुट और गहने पहने हुए अजंटा के बोधिसत्वों को हम तत्कालीन ऐसी ही विष्णु की मूर्तियों की श्रेणी में रख सकते हैं और इसीलिए हम इनके वस्त्राभूषणों से उस युग के राजाओं के वस्त्राभूषणों की तुलना नहीं कर सकते । जैसा हम पहले देख चुके हैं, हर्षचरित के राजों का पहरावा कीमती कपड़ों का तो अवश्य होता था, पर वह चड़क भड़क से तो बहुत दूर रहता था । अजंटा के भित्ति-चित्रों और गुप्त सिक्कों पर राजाओं की वेश-भूषा मे अन्तर के कारण सिक्कों पर आई वेश-भूषा का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व बढ़ जाता है । नीचे के पृष्ठों मे सिक्कों और चित्रों मे आई राजाओं की वेश-भूषा का वर्णन दिया जाता है ।

सिक्कों पर अंकित गुप्त राजाओं की वेश-भूषा

समुद्रगुप्त

साधारण भांति के सिक्कों पर समुद्रगुप्त अधबंहिया कंचुक अथवा कोट जिसके चाकदार नुकीले कोने नीचे लटक रहे हैं तथा जिसके आगे पर दोनों घुंडीदार

कसीदे का काम है पहिने है (आ० २८१)[११]। अधिकतर सिक्को में तो कंचुक के दो ही नुकीले कोने होते है लेकिन एक सिक्के में[१२] चारो कोने दिखलाये गये है। इस कचुक की तुलना मथुरा से मिली हुई एक शक योद्धा की मूर्ति के कचुक से की जा सकती है[१३]। समुद्रगुप्त का पाजामा ढीला शलवार न हो कर चूडीदार है और इनके सिर पर सटकर बैठने वाली टोपी है । जूते अर्धजघा किस्म के है ।

साधारण भाति के कुछ दूसरे सिक्को में कचुक पूरी वाह का है वाहें चपकी न हो कर ढीली है और कलाइयो पर मोडी हुई है (आ० २८२)[१४]। बूट जघा किस्म का है और उसमें बटन लगे है ।

साधारण भाति के तीसरी किस्म के सिक्को में अधबहिया कचुक का सयोग जाघिये के साथ है । घुटनो के नीचे तक पहुचते जूतो के जोड पर फुदने लगे है (आ० २८३)[१५]। ये बूट साहित्य में आये खपुसा की तरह है ।

व्याघ्र-पराक्रम भाति के सिक्को में राजा मुडी आस्तीन वाला कसा हुआ कचुक, बटा हुआ कमरबद, घुटनो के ऊपर तक पहुचती जाघिया और कृपाण कालीन पगडी, जिस पर शीर्षपट्ट लगा हुआ है, पहने है (आ० २८४)[१६]।

चद्रगुप्त-कुमार देवी भाति के सिक्को में चन्द्रगुप्त चाकदार जामा, जिसके गले पर घुडीदार काम है और फूदने लटक रहे है, पहनता है । जामा के मध्य में तुक-मेक की पक्ति है (आ० २८५ ए० बी० सी०)[१७]। ब्रीचेस ऐसे पाजामे पर गरारीदार खपुसा किस्म के जूते है।

समुद्रगुप्त के वीणावादक भाति के सिक्को से पता चलता है कि राज के थकाने वाले कामो से छुट्टी पा कर आराम के समय अथवा सगीत का आनद लेते हुए गुप्त राजे सादी धोती और टोपी पहनते थे (आ० २८६)[१८]। अपने घरेलू जीवन में गुप्त राजे ऐसी सादी वेश-भूषा पसद करते थे, इसका पता हमें चन्द्रगुप्त द्वितीय के आसदिक सिक्को से लगता है[१९]। यहा आसदी पर बैठे राजा एक धोती पहने है।

११—एलन, कैटलाग ऑफ दि कॉयन्स ऑफ दि गुप्त डाइनेस्टी एण्ड शशाक किंग ऑफ गौड, प्ले० १, ११, लडन १९१४

१२—वही, प्ले० १, ५

१३—अग्रवाल, हैंड बुक ऑफ दि कर्जन म्यूजियम ऑफ आर्कियोलोजी, प्ले० २१ तथा जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४०, पृ० २०६।

१४—एलन, वही, प्ले० १, ११-१३

१५—वही, प्ले० १

१६—वही, प्ले० १, १४-१७

१७—वही, प्ले० २, १४

१८—वही, प्ले० ३, १

१९—वही, प्ले० ५

चन्द्रगुप्त द्वितीय की वेश-भूषा

चन्द्रगुप्त द्वितीय के धनुर्धारी भांति के सिक्कों में राजा एक सटा कंचुक पहनते हैं जो कभी कभी कमरबंद से बंधा होता है। इसका फंदा बायीं ओर होता था और उसी ओर इसके सिरे जमीन पर लहराते थे[२०] (आ० २८७)। धनुर्धारी भांति के दूसरे सिक्कों में राजा जांघिया और दाहिनी ओर फंदेदार कमरबंद पहनते हैं[२१]।

एक सिंह-पराक्रम भांति के सिक्के में राजा कंचुक, कमरबंद, धोती और चोटीदार फुल्ले वाला खोद पहने दिखाये गए हैं (आ० २८८)[२२]। एक दूसरी तरह के खोद में चोटी से ले कर पीछे तक घुंडियां बनी हैं (आ० २८९)[२३]।

अश्वारोही भांति के सिक्कों में चन्द्रगुप्त द्वितीय के पहरावे में धोती और कमरबंद, जिसके छोर पीछे फड़फड़ा रहे हैं, मुख्य हैं (आ० २९० ए० बी०)[२४]। पर कभी घोड़े पर सवार राजा कमरबंद से कसा कंचुक और धोती भी पहनते हैं (आ० २९१)[२५]।

एक तांबे के सिक्के में बरामदे में आराम से खड़े चन्द्रगुप्त द्वितीय को दोनों कंधों पर पड़ा दुपट्टा, जिसका एक छोर उनके बांयें हाथ में है, पहरे दिखलाया गया है (आ० २९२)[२६]।

कुमारगुप्त प्रथम

कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल में जब गुप्त-साम्राज्य अपनी चोटी पर पहुंच चुका था, हम उस जातीय पहरावे की चलन देखते हैं जिसमें से कुषाण युग के पाजामें और पूरे बूट निकाल दिये गये थे। साधारणतः कुमारगुप्त प्रथम चाकदार कंचुक और घुटनों तक की धोती पहने दिखलाये गये हैं (आ० २९३)[२७]। कभी कभी यह धोती एड़ी तक पहुंचती थी[२८]। पगड़ी की जगह चूर्ण कुंतल देख पड़ते हैं। कमरबंद का फंदा बायीं ओर होता है और उसके सिरे उसी ओर लटका करते थे[२९]।

कुमारगुप्त के चांदी के सिक्कों में वेश-भूषा की दृष्टि से आकर्षक वस्तु चपकी

२०—वही, प्लें० ६, ८-९
२१—वही, प्लें० ६, १०-११
२२—वही, प्लें० ७, १८
२३—वही, प्लें० ८, ११
२४—वही, प्लें० ८, १३
२५—वही, प्लें० ९-१०
२६—वही, प्लें० १०
२७—वही, प्लें० १०, ९
२८—वही, प्लें० ११, ११
२९—वही, प्लें० १२, ४

टोपी[३०] अथवा सजी पगडी[३१] है जिसका छज्जा ऊपर मुडा है (आ० २९४)[३२]।

अजटा के भित्ति-चित्र में राजाओ और उच्चपदस्थ राजकर्मचारियो की वेश-भूषा

अजटा के भित्ति-चित्रो में राजाओ का पहरावा बडा सादा यानी केवल धोती दुपट्टे का होता था, लेकिन वस्त्रो के इस सादेपन को वे अपने रत्न जटित मुकुटो की कारीगरी से पीछे डाल देते थे । इस बात में सदेह है कि पेचीदी कारीगरी वाले मुकुट यथार्थ में व्यवहार में लाये जाते थे अथवा नही, क्योकि तत्कालीन साहित्य इनकी ओर सकेत नही करता, तथा तत्कालीन गुप्त सिक्को की राजमूर्तियो की वेश भूषा में भी इनका पता नही चलता। सभव है सादी कारीगरी वाले मुकुट यथार्थ में राजाओ द्वारा पहने जाते हो, लेकिन बहुत पेचीदी कारीगरी वाले मुकुट तो देवताओ और बोधिसत्वो के लिए ही थे ।

अजटा के एक भित्ति-चित्र में राजा बिंबिसार एक लाल और नीली धारियो वाली धोती और झब्बेदार कमरबद पहने है । इनकी पगडी अथवा टोपी एक सरपेंच से, जिसके दोनो ओर टिकरे लगे है, सुसज्जित है (आ० २९५)[३३]।

अजटा में चित्रित काशिराज बारीक धोती जो कमर पर पेटी से बधी है पहने है । पटके का छोर जमीन पर लहरा रहा है । उनके बायें कधे पर एक सकरा धारीदार दुपट्टा है । उनकी ऊची टोपी फुल्लो और सितारो से सज्जित है (आ० २९६)[३४]।

एक दूसरी जगह राजा धारीदार धोती जिसका एक खाना मोटी धारियो से सज्जित है, पहरे है । उनकी धातु-निर्मित टोपी के चोटी और बगलो पर फुल्ले है (आ० २९७)[३५]।

विश्वतर जातक के चित्रण में राजकुमार विश्वतर राज महल के बाहर निकलते समय आधे बाह का कसा हुआ कचुक (कूर्पासक), कमरबद सहित धोती और कुलाहनुमा टोपी पहने दिखलाये गये है (आ० २९८)[३६]। उसी चित्र में राजमहल के अदर ब्राह्मणो को दक्षिणा बाटते हुए विश्वतर खूब कामदार मुकुट, छाती को ढकता हुआ आधे बाह का कसा कचुक (कूर्पासक) जो मोरियो पर गोट से सजा है, उमठे दुपट्टे से बना वैकक्ष्य, छोटी धोती तथा करधनी, जिसके फुदने नीचे लटक रहे है, पहरे है (आ० २९९) ।

एक दूसरे चित्र में घोडे पर सवार एक राजकुमार एक पूरे बाहो वाला कचुक,

---

३०—वही, प्ले० १२, ८
३१—वही, प्ले० १५, ६
३२—वही, प्ले० १६, ५
३३—हेरिंगम, अजटा फ्रेस्कोज, प्ले० १, १, पेज १७
३४—वही, प्ले० २५, २७
३५—वही, प्ले० २२, २४
३६—वही, प्ले० २२, २८



२९५



२९६



२९७



२९८



२९९



३००



३०१



३०३



३०२

छोटी धोती और कमरवंद, जिसमें कटार खुसी है, पहने दिखलाया गया है (आ० ३००)[३७]।

वाग गुफा के एक भित्ति- चित्र में एक राजा धारीदार धोती और जड़ाऊदार चौखूटा मुकुट पहने है (आ० ३०१)। उसी चित्र में एक दूसरा राजा तिकोना मुकुट पहने दिखाया गया है (आ० ३०२)[३८]।

राजाओं की रूढ़िगत वेश-भूषा का सुंदर चित्रण पद्मपाणि के चित्र मे हुआ है। इसमें आभूषणों की संख्या कम, पर आकर्षक है। धोती धारीदार है और उसके कुछ खानों में चार-खाने बने हैं (आ० ३०३)[३९]। एक दूसरी जगह अवलोकितेश्वर करधनी से वंधी लाल हरी धारियों वाली धोती और जड़ाऊदार त्रिकूट मुकुट पहने दिखलाये गये है[४०]। एक तीसरी जगह एक राजा धारी और चारखाने दार धोती और पैरों के वीच लटकता दुपट्टा पहरे हैं तथा दीवार मे लगे एक फदे में अपना वायां हाथ डाल कर सुखपूर्वक खड़े है (आ० ३०४)[४१]। एक नागराज वारीक काम का मुकुट, तथा क़मरवंद के कई फेटों से वंधी धोती पहने हैं[४२]। लेण १७ के एक भित्ति-चित्र मे एक राजा भरे काम वाला मुकुट, धोती और करधनी पहने है और उनके कमरवंद के छोर नीचे लटक रहे है[४३]।

ईरानी वादशाह की पोशाक

दीवान पर वैठा एक ईरानी राजा एक हलके नीले रंग का कोट, ज़िसके मोरियों, गले और वाजुओं पर काम है, पहने है। यह कसीदे का काम जरा हलके रंग का है। टोपी में फीते लगे है और उसके जूते या मोजे कोमल ऊन के वने मालूम पड़ते है (आ० ३०५)[४४]।

अजंटा में आये मुकुट

१—मुकुट का आकार लंवोतरा है। इसके अलंकारों में हम वृत्त, घुंडियां अथवा मनके और फूल देख सकते हैं (आ० ३०६)[४५]। लेण, १७

२—अनेक चोटियों वाला पगड़ी से लगा मुकुट (आ० ३०७)[४६]। लेण, १७

३—दो पुरुषों के राजमुकुट—एक लंवोतरे रत्न जटित मुकुट मे मोती की लड़े लगी

३७—वही, प्ले० ८, १०

३८—वही, प्ले० ८, १०

३९—मार्शल, दि वाग केव्स, प्ले० वी०

४०—हेरिंघम, वही, प्ले० १०, १२

४१—वही, प्ले० १०, १२

४२—ग्रिफिथ, अजंटा, भा० १

४३—हेरिंगम, वही

४४—याजदानी, अजंटा, भा० १, पृ० ५०, प्ले० ३९

४५—हेरिंगम, प्ले० १६, १८

४६—वही, प्ले० २९, ४८; २४, २६

हैं (आ० ३०८)[४७]। दूसरा मुकुट वृत्तो, अर्धचंद्रो और मोती की लडो से अलकृत है और उसके बगल के उभरे अश कटावदार हैं (आ० ३०९। लेण, १७

४—राजकुमार के त्रिभुजाकार मुकुट की नक्काशी में वृत्त, फुल्ले, खिले फूल इत्यादि देख सकते हैं । मुकुट फीतो से पीछे बधा है[४८]। लेण, १

५—इस मुकुट का आकार टिकरेदार पट्टी की तरह है। पट्टी में लगे कई कलगो में दो दिखलायी देते हैं । इनमें एक का आकार तीन आमलको से मडित कूट के समान है । फुल्ले से अलकृत बीच का कलगा त्रिभुजाकार है[४९]। लेण, १

६—त्रिभुज के दोनो पक्ष लहरियादार हैं । मुकुट पुष्पो और जडाऊ तख्तियो से सजा है और उसके दोनो ओर गोल तख्तिया हैं। मुकुट पीछे बदो से बधा है[५०]। लेण, १

७—मुकुट का आकार चिपकी टोपी जैसा है जिस पर एक पेचक और फूले कमल के आकार हैं (आ० ३१०)[५१]। लेण, २

८—ऊची टोपी जैसा मुकुट । यह घुडीदार वृत्तो और खिले पुष्पो से सुसज्जित है[५२]।

घुडसवारो की वेश-भूषा

अजटा की न० १ लेण में एक घुडसवार एक योगी से बातचीत करता हुआ बताया गया है (आ० ३११)[५३]। इसका पूरा बाहो वाला कचुक काली बुदकियो से सजा है। ये काली बुदकिया हमें अगरपक से लिप्त बाणभट्ट द्वारा वर्णित कचुक की याद दिलाती हैं[५४]। दुपट्टे के सिरे पीछे फडक रहे हैं और बाल एक फीते से बधे हैं ।

अजटा के सिंहल-युद्ध नामक चित्र में घुडसवार आधी बाहो वाले कूर्पासक और जाघिया पहने हैं । इस कूर्पासक के गले और मुहरियो पर गोटें लगी मालूम पडती हैं (आ० ३१२)[५५]।

१७ नबर की लेण के एक भित्ति-चित्र में दो घुडसवार नुकीले गले वाले कचुक पहरे दिखलाये गये हैं । गले पर छाया से पता लगता है कि शायद वह समूर का बना होगा । बायें ओर के अश्वारोही की टोपी का ऊपर मुडा छज्जा कटावदार है तथा उसके चोटी पर एक

४७—वही, प्लेट० २६, २८
४८—वही, प्लेट० ११, १३
४९—वही, प्लेट० १४, १६
५०—वही, प्लेट० १५, ७
५१—वही, प्लेट० ११, ४९
५२—ग्रिफिथ, अजटा
५३—हेरिंगम, वही, प्लेट० ६, ८
५४—हर्षचरित, पृ० १६
५५—हेरिंगम, प्लेट० १७, १९



३०४



३०५



३०६



३०७



३०८



३०९



३१०



३११



३१२



३१३



३१४



३१५

फूंदना है । अपनी वेश-भूषा और आकृति से ये अश्वारोही ईरानी अथवा हूण विदित होते हैं (आ० ३१३)[५६]।

१७ नं० की लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में आगे के दो घुड़सवारों में वायीं ओर का घुड़सवार पूरी वांहों वाला आगे से खुला कोट (वारवाण) पहने है । उसका साथी चाकदार कंचुक, पाजामा और पूरा वूट पहने है । इसके एक वस्त्र का जिसका कोना वाहर निकला है, क्या रूप था ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता (आ० ३१४)[५७]।

१७ नंबर की लेण के मातृपोषक जातक वाले भित्ति-चित्र मे वायी ओर एक घुड़सवार एक वहुत चौड़े कालर वाला हलके नीले रंग का पूरे वांह का कंचुक पहरे है । उसका फेंटा कसा हुआ और पैरों में वूट हैं (आ० ३१५)[५८]।

वाग के एक भित्ति-चित्र में सत्रह घुड़सवारों का एक समूह तरह तरह के कंचुक पहरे है (आ० ३१६)[५९]। घुड़सवारों का सरदार नीली वुंदकीदार पीला कंचुक पहने है, इसके दाहिने ओर एक दूसरा सवार फूलदार चारखाने का कंचुक पहने है । यह कहना कठिन है कि चारखानों का मतलव सकरपारेदार सीयनों से है अथवा अलंकार से । अगर इसका मतलव सीयन से है तो इस वस्त्र से शायद वारवाण का तात्पर्य हो सकता है । सरदार के बाये ओर दूसरा सवार एक गेरुए रंग का कोट और नीले रंग के सूक्ष्म अलंकारों से सज्जित पीली टोपी पहने है । आगे के तीन सवारों में एक सवार के कंचुक में रूढ़िगत पक्षियों जैसे अलंकार हैं । घुड़सवारों के तीसरी पंक्ति के चार सवारों में एक सवार कोणाकार गले वाला कंचुक और पाजामा पहरे है और इसका साथी चूंदरी का वना कंचुक (पुलकवंध) पहने है । पीछे के चार सवारों में एक सवार पूरी वांह का वारवाण पहने है । सवारों के सिर प्राय: नक्काशीदार रंगीन रुमालों से ढंके हैं । यह चित्र हमे वाणभट्ट द्वारा वर्णित श्रीहर्ष के घुडसवारों की याद दिलाता है[६०]।

फीलवानों की वेश-भूषा

फीलवान प्राय. अधवहिंया मिरजई (कूर्पासक), जिसमे कोणाकार गला और मोहरियों पर सादी गोटें लगी रहती थीं, पहनते थे (आ० ३१७)[६१]। पर कभी कभी वे पूरे वाहों वाला कंचुक भी पहनते थे (आ० ३१८)[६२]और उनके वाल एक रुमाल अथवा चपकी टोपी से ढंके

५६—वही, प्ले० २२, २४

५७—वही, प्ले० ८, १०

५८—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम में प्रतिकृति

५९—मार्शल, वही, प्ले० एफ०

६०—हर्षचरित, पृ० २०२

६१—याजदानी, अजंटा, भा० २, प्ले० १४

६२—हेरिंगम, वही, प्ले० १९, २१

होते थे । वाग के एक चित्र में फीलवान सुनहरे धारीदार कपडे से वनी जाधिया पहरे है[६३]।

१७ नं० कीलेण के एक भित्ति चित्र में सिपाही छोटी धोतिया पहने दिखलाये गये है (आ० ३१९)[६४] कभी कभी वे पट्टियो से अपने वाल वाध लेते थे (आ० ३२०) । १७ नं० की लेण में सिहलयुद्ध वाले भित्ति-चित्र में सिपाही धोती अधवहिया मिर्जई (कूर्पासक) जो छाती को ढाकती है और जिसके गले और मोहरियो पर गोट लगी है, पहनते है।। उनके सिर रूमाल से ढके होते है (आ० ३२१)[६५]।

पैदल सिपाहियो की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक असिवाहक अधवहिया, घुटनो तक पहुचता हुआ तथा कमरवद से वधा चाकदार कचुक पहने है (आ० ३२२)[६६]। उसी चित्र में एक कुतल-ग्राहक भी अधवहिया कचुक पहने है । इसका कमरवद दो फेंटो में वधा है (आ० ३२३) । १ नं० की लेण में एक सिपाही पत्रो की नकाशी से सज्जित कचुक पहने है[६७]। उसी चित्र में एक ढाल-ग्राहक ने एक कधो को ढाकती चादर, जिसमें एक गट्ठी लगी है, पहन रखा है ।

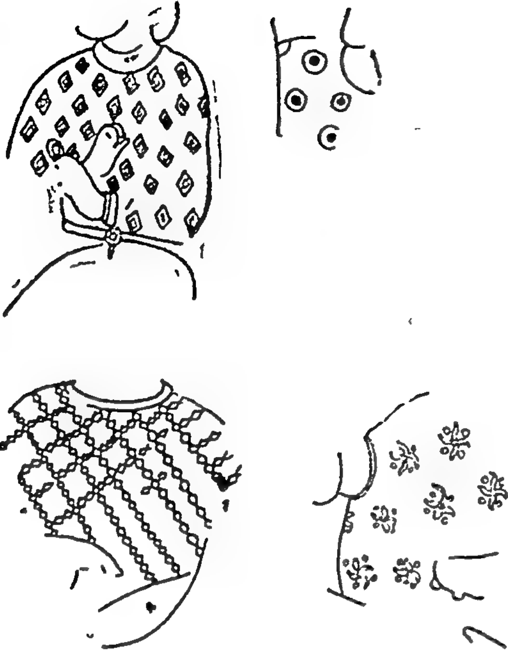
युद्धभूमि में राजाओ और सामतो की वेश-भूषा

युद्धभूमि में, जैसा कि सिहलयुद्ध नामक चित्र में दिखलाया गया है, राजे और राजकुमार अधवहिया मिर्जई (कूर्पासक) और सरपेंच से युक्त भारी भरकम पगडिया पहनते है[६८]।

शिकारी और वहेलियो की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण में मातृपोषक जातक नाम के भित्ति-चित्र में शिकारी और वद्धक छोटी धोती पहने दिखलाये गये है, और उनके वाल फीतो से वधे है[६९]। उसी लेण के षड्दत जातक नामक चित्र में वद्धक जो किसी जगली जाति के मालूम पडते है पेटीदार जाधिया जिसमें कटार खुसी है, पहनते है (आ० ३२४)[७०]। पकडे ग षड्दत गज को दडवत करते हुए एक वद्धक की चप्पल दर्शनीय है। यह चप्पल आधुनिक पठानी चप्पलो की तरह एडी पर एक तस्मे से वधी है (आ० ३२५) । लगोटी पहरे हुए तथा धनुपवाण और दड से युक्त

६३—मार्शल, वाग, प्ले० जी०
६४—हरिंगम, वही, प्ले० १७, १९
६५—वही, प्ले० १७, १८
६६—वही, प्ले० ३८, ४६
६७—याजदानी, अजटा, १, प्ले० १४
६८—हेरिंगम, वही, प्ले० १७-१९
६९—वही, प्ले० २०, २२
७०—प्ले० २७, २९



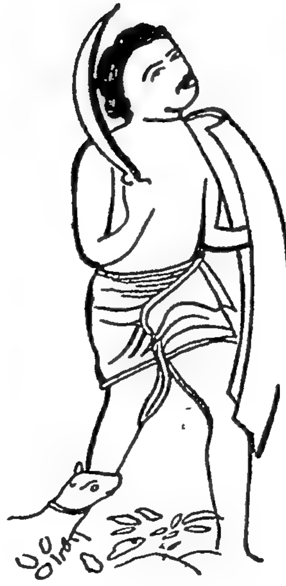
३१६



३१७



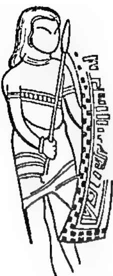
३१८



३१९



३२०



३२१



३२२



३२३



३२४



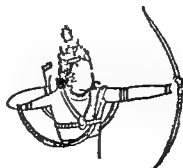
३२५



३२६



३२७



३२८



३२९

एक ठेठ जंगली आदमी भी उसी दृश्य में दिखलाया गया है (आ० ३२६)। शंखपाल जातक में दाहिनी ओर एक नाग को रस्सी से घसीटता हुआ शिकारी चारखानेदार लंगोटी पहने है (आ० ३२७)[७१]। इसी दृश्य में एक दूसरे शिकारी की धारीदार लंगोटी की धारियों पर तीर के फल अथवा उड़ती चिड़ियों के रूढ़िगत अलंकार बने हैं।

शिकारी की वेश-भूषा

उच्चपदस्थ मनुष्यों की शिकारी वेश-भूषा दूसरे ही तरह की होती थी। १७ नं० की लेग के एक भित्ति-चित्र में एक बाणसंधान करता हुआ जमीन पर खड़ा शिकारी कमर तक पहुंचता कंचुक जिसमें नीचे सुनहरी गोंट लगी है, सफेद पाजामा और बूट पहने है (आ० ३२८)। उसका साथी एक चाकदार कंचुक जिसके ऊपर किसी दूसरे वस्त्र का कोना देख पड़ता है पहने है।

कंचुकी की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में सांवले वदन का कंचुकी एक बटे कपड़े की चपटी पगड़ी पहने है। पूरे बांह वाले कंचुक के ऊपर तिरछे बल एक चादर, जिस पर सेहरे की तरह अलंकार बने हैं, पड़ी है (आ० ३२९)[७२]।

१ नं० की लेण में राजा का स्नान दिखलाते हुए एक भित्ति-चित्र में एक वृद्ध कंचुकी तिकोने गले वाला पूरे बांह का कंचुक, जिसका छोर इकट्ठा कर के कमरबंद में खोंस लिया गया है, और लाल धारी वाली धोती पहने है (आ० ३३०)[७३]।

मंत्रियों की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में राजमंत्री एक सफेद पूरी बांह का कंचुक और चादर पहरे दिखलाये गये हैं। उसका सिर अनावृत है और वह खल्लका किस्म का पूरा बूट पहने है (आ० ३३१)[७४]।

शिवि जातक के एक चित्र में जहां इन्द्र को अपनी आंखें देने के बाद राजा घोर कष्ट में है एक राज मंत्री का चित्रण हुआ है। मंत्री एक अधबहियां मिर्जई (कूर्पासक) जिसकी मुहरियों पर वृत्त और चारखाने के जाल बने हैं और जिनमें मोती की झालरे हैं तथा छाती पर तिरछी तरह से चादर डाले है। गले में एक वैकक्ष्य भी है जिसके दोनों सिरे एक कांटे से फंसे हैं। बालों के चारों तरफ एक फूलों से सुशोभित पट्टी है (आ० ३३२)[७५]।

७१—याजदानी, वही १, प्ले० ११
७२—हेरिंगम, वही, प्ले० २५, २८
७३—वही, प्ले० १२, १४
७४—वही, प्ले० २५, २७
७५—वही, प्ले० ३९, ४७

सामतो और उच्चवर्ण नागरिको की वेश-भूषा

राजाओ का पहरावा तो सादा होता था पर उनके मुकुट काफी कामदार और रत्न जटित होते थे । सामतो और उच्च पदस्थ नागरिको के पहरावे भी इसी तरह सादे होते थे, पर उनमें मुकुट का अभाव होता था । ऐसा लगता है कि मुकुट पहनने के अधिकारी केवल राजे ही थे । सादापन होते हुए भी सामत अपने कपडे खूब सजा कर पहनते थे । हम नीचे इन वस्त्रो के पहरने के भिन्न भिन्न तरीको की समीक्षा करेगे ।

मीरपुर खास (सिंध) से मिले एक मिट्टी के अर्ध चित्र में गुप्त-युग के एक समृद्ध नागरिक की मूर्ति है (आ० ३३३)[७६]। उसने जाधिया के ऊपर धोती इस तरह से पहन रक्खी है कि उसका सामना तो घुटनो तक पहुचता है पर पीछा एडियो के जरा ऊपर । ढीले तौर से बधे कमरबद के दोनो मुक्त छोर बायी ओर लटक रहे है । जाधिये के ऊपर धोती पहनने की इस युग में साधारण प्रथा थी । अजटा की १७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र में भी एक नागरिक जाधिया के ऊपर एक छोटी धोती पहरे दिखलाया गया है । बायी ओर सफाई से बधे पटके का छोर नीचे लटक रहा है । वैकक्ष्य के दोनो छोर छाती पर एक मोती के काटे से फसे है[७७]।

ईडर रियासत के सामलाजी पहाडी से मिली एक बेसिर वाली शिव की मूर्ति में एक उच्च गुप्त नागरिक की वेश-भूषा अकित है । धोती घुटनो के नीचे तक पहुचती है और उसका चुना हुआ छोर सामने लटकता है । कमर पर बटे हुए कमरबद के तीन फदे है। कमरबद के चुने हुए छोर दोनो ओर देख पडते है (आ० ३३४)[७८]। ईडर से मिली एक दूसरी शिव की मूर्ति एडी तक पहुचती कमर पेटी से बधी है तथा एक ढीला कमरबद जाघो को घेरे है (आ० ३३५)[७९]। जोधपुर रियासत के मडोर नामक स्थान से मिले एक स्तभ पर गोवर्धन-धारी कृष्ण एडी तक पहुचती धोती पहने है। कमरपेटी में एक घुमावदार कमरबद सकर मुद्धी लगा कर दाहिनी ओर बधा है (आ० ३३६)[८०]।

ग्वालियर रियासत के उदयगिरि के पाच नबर के लेण में वराह अवतार के अर्ध चित्र में समुद्र की वेश-भूषा तत्कालीन भद्रपुरुष की सी है[८१]। धोती और कधो को ढाकते दुपट्टे के सिवाय वह एक शीर्षपट्ट युक्त पगडी भी पहने है जो मथुरा की कुषाण मूर्तियो में आई पगडी का ध्यान दिलाती है । सारनाथ से मिली अवलोकितेश्वर की मूर्ति में हम धोती और

७६—ए० एस० आई० एन० रि०, १९०९-१०, प्ले० ३८, बी०

७७—हेरिंगम, वही, प्ले० ४१, ५५

७८—इनामदार, सम आर्कियोलोजिकल फाइडस् इन ईडर स्टेट, प्ले० १, १, अहमदाबाद, १९३६

७९—वही, प्ले० २, ५

८०—ए० एस० आई० एन० रि०, १९०५-०६, पृ० १३६

८१—एन० रि० आर० डि० ग्वालियर स्टेट, १९२८-२९, प्ले० ५



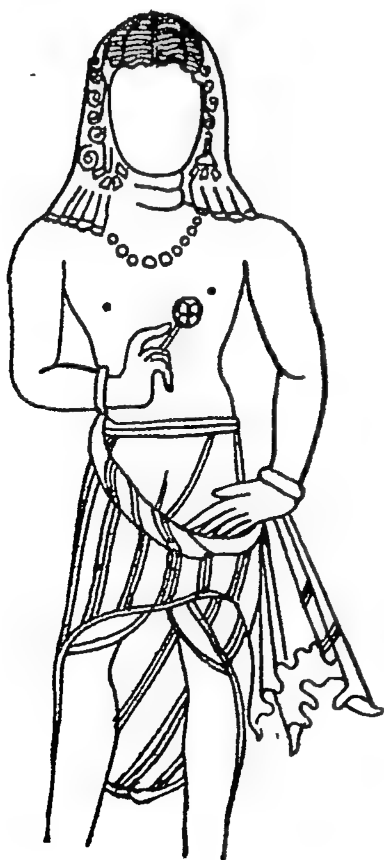
३३०



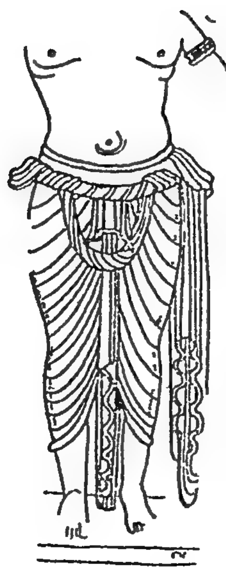
३३१



३३२



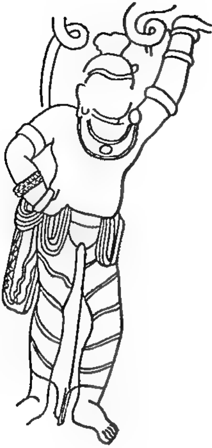
३३३



३३४



३३५



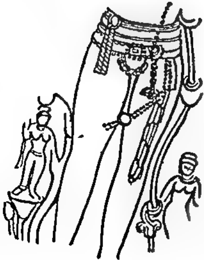
३३६



३३७



३३८



३३९



३४०



३४१

कमरवंद पहनने के आकर्षक ढंग को देख सकते हैं। अवलोकितेश्वर के शरीर का निचला भाग एक चुनी धोती से, जिसकी चूंदन पैरों के बीच में लटकती है, ढंका है। कमर से यह धोती एक रत्न जटित पेटी से बंधी है। कमर के ऊपर हम ढीले तरीके से बंधे एक रूमाल को देखते हैं जो दाहिनी बाहु के पास बंधा है और जिसके लहराते छोर दाहिने पैर के पास नीचे लटक रहे हैं (आ० ३३७)[८२]।

१७ नं० की लेण में सारिपुत्रप्रश्न नामक एक भित्ति-चित्र में एक सामंत या राजा का जो उच्च पदाधिकारी बायीं ओर दिखलाया गया है, खड़ी धारियों वाली धोती और छाती को ढंकती हुई चादर जो बायें कंधे पर डाल दी गयी है पहरे है। इसकी चक्करदार छोटी पगड़ी के एक तरफ सोने का फुल्ला लगा है (आ० ३३८)[८३]।

सारनाथ से मिली सातवी सदी के अंतकी मंजुश्री की मूर्ति घुटने के नीचे तक पहुंचती धोती, जिसका एक भाग चुन कर बायीं ओर खुसा है, पहरे है। एक भारी करधनी कमर में है। कमरबंद का एक बटा हिस्सा एक चूड़ी से निकाल कर दाहिनी जांघ पर लटका दिया गया है (आ० ३३९)[८४]।

वादकों की वेश-भूषा

गुप्तकालीन भूमरा के मंदिर में अर्ध चित्रों में एक नरसिंहा बजाने वाला कुलाहनुमा टोपी, जिसकी चोटी जरा आगे झुकी है, घुटनों के नीचे पहुंचता चाकदार कंचुक और पाजामा पहने है (आ० ३४०)[८५]। हुडुक्क बजाता हुआ एक दूसरा वादक चोटीदार टोपी, बगलमदार कोट और पाजामा पहने है (आ० ३४१)। एक गायक कूर्पासक और सकच्छ धोती पहने है (आ० ३४२)। एक शहनाई बजाने वाला हलकी चोटीदार टोपी पहने है (आ० ३४३)। ढोल बजाने वाले की टोपी गोल है (आ० ३४४) और नर्तक की टोपी झालरदार है (आ० ३४५)।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति चित्र में आकाशचारी एक गंधर्व सफेद और भूरी रंग की धारियों वाली धोती और भूरी और हरी धारियों से सज्जित कमरबंद, जो धोती से मिलान खाता है, पहरे है[८६]। उसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में एक दूसरा गवैया सफेद जमीन पर हरी लहरिया वाली धोती पहने है[८७]।

८२—साहनी, केटलाग ऑफ दि म्यूजियम ऑफ आर्कियोलोजी एट सारनाथ, प्ले० १३ बी०, पृ० ११८

८३—हेरिंगम, वही, प्ले० ४२, ५६

८४—साहनी, वही, पृ० १२०-१२१, प्ले० १३ सी०

८५—बेनर्जी, दि शिव टेंपिल एट भूमरा, प्ले० १०, कलकत्ता, १९२४

८६—हेरिंगम, प्ले० २, २

८७—वही, प्ले० २

एक वीणावादक का, जो अपनी वीणा कधे पर रक्खे है, पहरावा आकर्षक है । वह औरो की तरह धोती, कमरबद और पेटी पहने है । एक रूमाल गले से बधा है । कमरबद और रूमाल के छोर हवा में फडफडा रहे है । दो जूडो में बधे बालो में शेखरक लगे है (आ० ३४६)[८८]।

द्वारपालो की वेश-भूषा

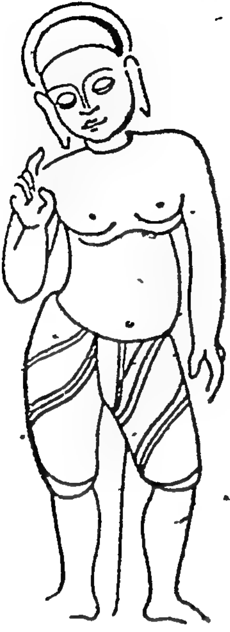
गुप्तयुग के द्वारपाल या तो सिले हुए कपडे अथवा अपने कपडो,को सवार सुधार कर पहिनते थे । उदयगिरि के ६ न० की लेण में द्वारपाल एक धोती, जिसका चुना हुआ भाग खुसा है और जो नाभि के नीचे कमरबद और सकर मुद्धी दार पेटी से बधी है, पहरे है। कमरबद के दोनो छोर कमर पर पखे के आकार में सुसज्जित है (आ० ३४७)[८९]।

अजटा के भित्ति-चित्रो में द्वारपाल प्राय सिले कपडे पहने दिखलाये गये है । न० १ की लेण के एक भित्ति-चित्र में द्वारपाल सफेद और काले चारखानों वाले कपडे से बना पूरे बाह का कचुक पहने है जो कमर से एक चौडी पेटी से बधा है (आ० ३४७)[९०]। उसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में एक द्वारपाल गोल टोपी (आ० ३४८)[९१] जिसका छज्जा उल्टा हुआ है और एक कसी भर बाहो वाला हलके रग का फूलदार कोट पहने है। याजदानी के मत से कोट का कपडा किमाव हो सकता है[९२]। दूसरे न० की लेण में एक भित्ति चित्र में द्वारपाल कमर के नीचे पहुचता पूरे बाह का कचुक, जिसके किनारो पर कसीदे का काम है, (आ० ३४९)[९३] पहने है ।

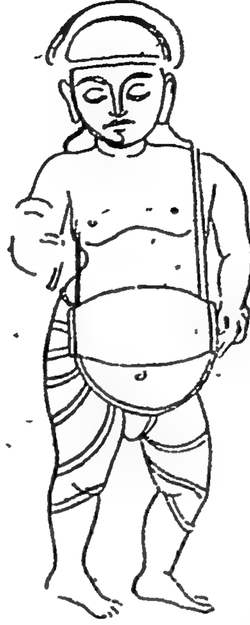
राजभृत्योकी वेश-भूषा

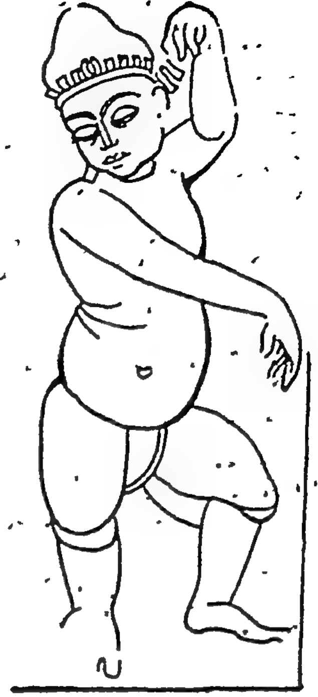
अजटा के भित्ति-चित्रो में राजभृत्य सिले कपडे अथवा सादी धोती पहने दिखलाये गये है। ७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र में बुद्ध के बायी ओर खडा एक सेवक एक चारखानेदार धोती पहरे है (आ० ३५०)[९४]। १ न० की लेण के अवलोकितेश्वर वाले प्रसिद्ध भित्ति-चित्र में फूलचगेर लिए हुए सेवक गहरे भूरे रग की धारियो वाला कचुक और एक सुदर मुकुट पहने है (आ० ३५१)[९५]। इसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में एक सेवक घुमावदार नक्काशी से सज्जित कचुक पहने है। अलकार पट्टियो में बने है और उनमें फुल्ला

८८—वही, प्ले० ३६, ४०
८९—एन० रि० आ० डि० ग्वालियर स्टट, १९२८-२९, पैब ६, प्ले० बी०
९०—याजदानी, अजटा, १, प्ले० १
९१—वही, प्ले० २५
९२—वही, पृ० ४२, पृ० नो० २
९३—याजदानी, अजटा, भा० २, प्ले० २५, पृ० २५
९४—हेरिगम, वही, प्ले० ४२, ५६
९५—वही, प्ले० १०, १२


३४२


३४३


३४४

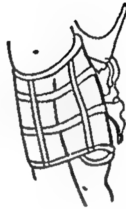

३४५


३४६


३४७



३४९



३५०



३४८



३५१



३५२

वृत्त और सिंघाड़े मुख्य हैं (आ० ३५२)[९६]। इसी लेण के एक तीसरे भित्ति-चित्र में फर्श पर बैठा हुआ सेवक एक रुपहले किमखाव, जिस पर गहरे मटमैले रंग से बना पुष्पालंकार है, से बना कंचुक पहने है (आ० ३५३)[९७]।

युद्ध अथवा यात्रा में अपने स्वामियों के पीछे चलते हुए सेवक समयानुकूल पहरावे पहरते थे। यथा सिंहलयुद्ध वाले चित्र में हाथी के पीछे बैठा हुआ एक सेवक, दुमचीदार खोद, कूर्पासक, और कमरबंद से बंधी एक छोटी धोती पहने है (आ० ३५४)[९८]।

स्नापकों की वेश-भूषा

१ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में स्नापक एक महीन वस्त्र की लाल धारियों वाली छोटी धोती पहरे है। उसका सिर एक रूमाल से ढंका है (आ० ३५५)[९९]।

साधारणजन की वेश-भूषा

अभी तक हम राजा, राव, सेवकों तथा सिपाहियों की वेश-भूषा का वर्णन करते आये हैं, हमने साधारण जनों की वेश-भूषा की ओर ध्यान भी नहीं दिया। यह मानने के काफी कारण है कि साधारणजन की वेश-भूषा आज की तरह धोती, दुपट्टा और पगड़ी वाली थी। १७ नं० की लेण के विश्वंतर जातक के एक भित्ति-चित्र में साधारण जन की वेश-भूषा का सुंदर चित्रण हुआ है[१००]। इस चित्र में साधारण जन की वेश-भूषा तीन भागों मे विभाजित की जा सकती है यथा—

(१) एक छोटी धोती और पूरे बदन को ढंकने वाली चादर (आ० ३५६)।

(२) पूरी धोती और किनारों पर गोंट लगा हुआ कमरबंद (आ० ३५७)।

(३) छोटी धोती और वैकक्ष्य (आ० ३५८)। इसी चित्र में विश्वंतर को प्रणाम करता हुआ एक दूकानदार धोती के ऊपर करधनी से लगा हुआ एक गमछा पहने है (आ० ३५९)। एक तेली जांघिया पहने है (आ० ३६०)।

ब्राह्मणों की वेश-भूषा

ब्राह्मण साधारणतः धोती और दुपट्टा पहनते थे (आ० ३६१)[१०१]। नं० १ की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक ब्राह्मण कंटोप पहने दिखलाया गया है[१०२]। एक दूसरी जगह छाता लिये हुए एक ब्राह्मण वैकक्ष्य पहने है (आ० ३६२)[१०३]।

९६—याजदानी, अजंटा, भा० १, प्ले० ७ बी०, पृ० ९
९७—वही, प्ले० २४, बी०, पृ० ४१
९८—हेरिंगम, वही, प्ले० ४२, ५; ३७, ४३
९९—वही, प्ले० १२, १४
१००—वही, प्ले० ३९, ४८
१०१—वही, प्ले० ३९
१०२—याजदानी, अजंटा, भा० १, प्ले० ३५
१०३—हेरिंगम, वही, १३, १५

. विदूपको की वेश-भूषा

प्राचीन भारत में, जैसा कि सस्कृत नाटको से पता लगता है, विदूपक राजाओ को अपना वातो और कामो से हसाने के लिए उनके साथ रहा करते थे । १ न० की लेण के एक भित्ति चित्र मे चेटी[१०४] से स्नेह प्रदर्शित करता हुआ विदूपक पूरे वाह का कचुक और पटका, जिसके दोनो सिरे जुटे है, पहरे है। २ न० की लेण के एक भित्ति चित्र मे विदूपक धोती और दुपट्टा पहरे है[१०५] । उसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में सावले रग का विदूपक सितारो से सजा एक लवा कचुक, जो कमर पर एक पेटी से वधा है, पहने है। उसका अधोवस्त्र धोती अथवा पाजामा हो सकता है। उसके पैरो में धारीदार वूट है (आ० ३६३)[१०६] । एक दूसरी जगह विदूपक कचुक और पीठ और कधों को ढाकता हुआ दुपट्टा पहने है। ये दोनो उसकी तोद को पूरी तरह से ढकने मे असमर्थ है[१०७] । कभी कभी विदूपक गाते वजाते अथवा एक दूसरे से लपट झपट करते दिखलाये गये है। १ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे[१०८] (आ० ३६४) दो विदूपक दिखलाये गये है । वायी ओर वाला विदूपक फूलो से सजी एक गोल टोपी और धोती पहरे है । अपने साथी के गले में एक दुपट्टा डाल कर खीच रहा है। दूसरा विदूपक जो खीचा जा रहा है चपकी टोपी और धोती पहरे है। डा० अग्रवाल[१०९] एक विचारात्मक प्रवध में वतलाते है कि वाणभट्ट के युग में वहुधा उत्सवो पर लोग वृद्ध प्रतिहारियो के गले में रेशमी दुपट्टे डाल कर और उन्हें आगे खीच कर विनोद करते थे । मथुरा से मिली हुई गुप्तयुग की एक मट्टी की तख्ती में उपरोक्त दृश्य दिखलाया गया है। इसमें एक स्त्री विदूपक के गले में दुपट्टा डाल कर उसे घसीट रही है[११०] । डा० अग्रवाल नागानद नाम के सातवी शताब्दी के एक नाटक से एक उद्धरण देते है, जिसमें एक चेट भागते हुए विदूपक के गले में दुपट्टा डाल कर खीचते हुए दिखलाया गया है । इस तरह के कौतुक का स्त्रोत डा० अग्रवाल के मत से पालि साहित्य के चेलुक्खेप से है जो खुशी के अवसरो पर वस्त्र हिला कर आनद प्रकट करने की क्रिया का नाम है । ऐसे अवसरो पर कधो से दुपट्टे उतार कर लोग उन्हे हिलाते थे । भरहुत के अर्थ चित्रो में भी एक जगह चेलुक्खेप का अकन हुआ है ।

गले में दुपट्टा डाल कर कौतुक करने की रीति का अकन मथुरा की कुषाण कालीन

१०४—वही, प्लेे० ४०, ५०

१०५—याजदानी, अजटा, भा० २, प्लेे० ११ वी०

१०६—वही, प्लेे० २४, पृ० २२

१०७—वही, प्लेे० ३५, पृ० २५

१०८—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की प्रतिकृति से

१०९—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ए पलेस सीन ऑन ए टेरानोटा प्लाक फ्रॉम मथुरा, जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४२, पृ० ६९-७४

११०—वही, पृ० ७३



३५३

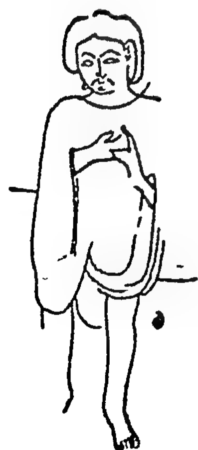


३५४



३५५



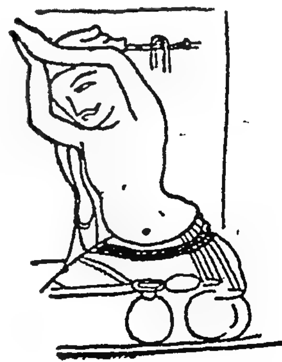


३५६



३५७

३५८



३५९



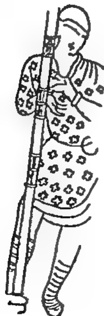
३६०



३६१



३६२



३६३



३६४

मूर्तियों में भी हुआ है । मथुरा म्यूजियम में एक स्तंभ पर उत्कीर्ण नंद और सुदंरी की कथा में एक स्त्री विदूपक के गले में दुपट्टा डाल कर खींचती दिखलायी गयी है ।

१ नं० की लेण के एक दूसरे चित्र में धोती और कंचुक पहने विदूपक वीणा वजा रहा है । एक फूलों से सजी गोल टोपी पहरे चेटी मजीरा वजा रही है (आ० ३६५) ।

मदारी की वेश-भूषा

१ नं० की लेण के एक भित्ति चित्र में एक मदारी नीली और हरी धारियों के चारखाने वाली छोटी धोती, और छाती पर वंधा चारखाने दार दुपट्टा पहने है (आ० ३६६)[१११] ।

विदेशियों की वेश-भूषा

जैसा हम पहले कह आये हैं गुप्त-युग में भारत और एशिया के और देशों से विशेपकर चीन और ईरान से सांस्कृतिक सम्वन्ध वढ़ा- जिसका उदाहरण हम अजटा के भित्ति-चित्रों में ईरानियों के चित्रों से पा सकते है । मध्य एशिया की भारतीय औपनिवेगिक संस्कृति का, जिस पर भारत और चीन दोनों देशों की स्पष्ट छाप है, अध्ययन हम मध्य एशिया के भित्ति-चित्रों और मंडल चित्रों से कर सकते हैं। इन चित्रों में अजंटा के चित्रों की स्पष्ट छाप है । यह स्पष्ट है कि भूस्थापकों और यात्रियों द्वारा इस देश की संस्कृति मध्य एगिया में पहुंची और वहां की संस्कृति यात्रियों , व्यापारियों तथा विजेताओं द्वारा इस देश में आयी। मध्य एशिया का प्रभाव हम इस युग में भारतीय वेश-भूपा पर साफ तरह से देखते हैं। यह प्रभाव कोई नगण्य नही था, क्योंकि अजंटा के भित्ति-चित्रों में वहुधा हम टोपियां, पाजामे, कंचुक और पूरे वूट देखते हैं जो इस देश में मध्य एशिया से आये ।

हम इस पुस्तक के आरंभिक अध्यायों में इस वात पर जोर देते आये है कि वैदिक युग में भी सिले वस्त्रों का व्यवहार होता था, पर इस देश की गरम आवहवा के अनुकूल साधारणत. लोग धोती, दुपट्टे और साड़ी जैसे सादे वस्त्र पहरते थे । हम यह भी कह आये हैं कि किस तरह ईसा पूर्व तीसरी सदी से ले कर चौथी सदी तक सिले कपड़े विशेषकर नौकर, चाकर, सिपाही, शिकारी और विदेशी इत्यादि ही पहनते थे । ऐसा लगता हैं कि ईसा की पहली शताव्दी में कुषाण राज्य की स्थापना के वाद मध्य एशिया के सिले वस्त्रों का प्रभाव इस देश में विशेष तरह से पड़ा और 'यथा राजा तथा प्रजा' की रीति के अनुसार लोग विदेशी वस्त्रों को भी अपनी वेश-भूषा में स्थान देने लगे । हमारे इस मत का पोषण गुप्त सिक्कों पर आयी राजाओं की वेश-भूपा से होता है । लेकिन अजंटा के भित्ति-चित्रों से पता लगता है कि दक्षिण भारत मे सिले कपड़े नौकर, चाकर, सिपाही और दासियों इत्यादि तक ही सीमित रहे । अजंटा के भित्ति-चित्रों मे कुछ विदेशियों की वेश-भूषा भी आई है, जिसका हम यहां प्रसंगवश वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं।

१११—याजदानी, वही, प्ले० १० बी०

मध्य एशिया वालो के वस्त्र

१७ वी लेण के सारिपुत्र प्रश्न नामक एक भित्ति-चित्र में[११२] ईरानी नस्ल के बहुत से विदेशी एक साथ दिखलाये गए हैं । चित्र के बायें ओर एक विदेशी हाथी पर सवार कचुक पहने है जिसके गले मुहरियो और आगे पर कसीदे का काम है । गले और मुहरियो पर गोटें लगी है, जिन पर दाते और चारखाने जैसे अलकार है (आ० ३६७) । उसी चित्र में एक घुड-सवार नुकीले गले वाला कचुक पहने है, जिसके दोनो ओर दतालकार से सजी पट्टिया लगी है। बाहो पर लगी पट्टिया सेहरे और पत्तियो से अलकृत हैं (आ० ३६८) । इसी चित्र में एक सिपाही तिकोने गले वाला कचुक पहने है जिसकी बाहो की पट्टिया शायद समूर की बनी थी। इसका साथी सिपाही एक गोल गले वाला कचुक पहने है (आ० ३६९) । एक मोटा ताजा विदेशी सेवक कुलाह और धारीदार पगडी पहने है। उसके कचुक का गला कोणाकार है जिसके दोनो ओर दातो और लहरियो से सुसज्जित पट्टिया लगी है। बाहो की पट्टिया भी दाते और बिंदुओ से सजी है । कमरबद कई फेंटो से बधा है (आ० ३७०) ।

२ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक विदेशी, जो शायद ईरानी नस्ल का है, फीतेदार गोल टोपी पहने है। उसके कचुक और पाजामे कसे है और मोजे धारीदार है । ऐसा प्रतीत होता है कि उसके गले मे रूमाल बधा था, क्योकि इसके किनारे पीछे फडफडाते दिखलायी देते है (आ० ३७१)[११३] । इसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक विदेशी का अधो-वस्त्र डोरिया और हस के अलकारो मे सुसज्जित है[११४] ।

अजटा के तथा कथित राजदूत वाले दृश्य में सीरियन लोगो की वेश-भूषा

विदेशियो की वेश-भूषा में सब से विचित्र वेश-भूषा हमें अजटा की पहली लेण के एक भित्ति चित्र से, जिसकी पहचान ईरानी प्रणिधि वर्ग कह कर की गयी है, मिलता है । विद्वानो में इस चित्र की पहचान में काफी मतभेद है । कुछ लोग तो इस चित्र में सातवी शदी के आरभ में ससानी बादशाह खुसरो द्वारा चालुक्य राज पुलकेशी के पास भेजे गए प्रणिधि वर्ग का चित्रण देखते है । दूसरो का विचार है कि अजटा के धार्मिक चित्रो में इस तरह के लौकिक चित्र का होना सभव नही है और इसलिए इस चित्र का सबध किसी जातक मे होना चाहिए। जो भी हो, इन दोनो विचार वालो ने यह माना ही है कि इस दृश्य में उपायन देते हुए लोगो की वेश-भूषा ठेठ विदेशी है । हमारी समझ में इस चित्र का एक जातक से सबध होने की राय ठीक है । एक इसी तरह का अर्ध चित्र अमरावती में आया है जिसकी पहचान श्री शिवराम-मूर्ति ने वेस्सन्तर जातक के राजा वन्धुम वाले प्रकरण मे की है[११५] । अमरावती के इस अर्ध चित्र

११२—हेरिंगम, वही, प्ले० २२, २४

११३—याजदानी, अजटा, भा० २, प्ले० ११, पृ० ९

११४—वही, प्ले० २०, पृ० १९

११५—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास म्यूजियम, प्ले० २५, पृ० २३४-२३५,



३६५



३६६



३६७



३६८



३६९





३७१



३७२ ए०



३७२ बी०



३७३



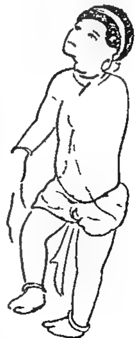
३७४



३७५



३७६



में राजा सिंहासन पर बैठे हैं और उनके अगल बगल दो चामर-ग्राहिणियां और पीछे एक पंखे वाला है। बायी ओर एक मोढ़े पर राजमहिषी दासियों से घिरी बैठी है। राजा के सामने कंचुक, पाजामा, कमरबंद और बूट पहने हुए चार विदेशी घुटने टेक कर उपायन भेंट कर रहे हैं; दाहिनी ओर सभासदों की भीड़ में हम इन विदेशियों के नेता द्वारा राजा को मोती की माला भेंट करते देख सकते हैं। राजद्वार के पास हम एक हाथी और घोड़ा तथा एक विदेशी को खड़े पाते हैं[११६]। अजंटा में भी तथाकथित ईरानी प्रणिधि वर्ग वाला चित्र अमरावती वाले अर्ध चित्र की प्रतिकृति है। अजंटा के भित्ति-चित्र में राजद्वार के पास एक विदेशियों का गिरोह है जिसमें से दो विदेशी उपायन लिए हुए राजसभा के अंदर दाखिल हो गए हैं। राजसभा सभासदों से भरी है और उनमें हम तीन विदेशियों को देख सकते हैं। सभा के बीच में सिंहासन पर राजा बैठे हैं और उनके पीछे पंखे और चमर लि हुए दासियां खड़ी हैं, बायी ओर और भी बहुत सी सेवक सेविकाएं हैं[११७]। अजंटा के इस चित्र का अमरावती के अर्ध चित्र से इतना मेल है कि हम यह कह सकते हैं कि दोनों दृश्य एक ही प्रकरण को व्यक्त करते हैं। यह संभव है कि इन दोनों दृश्यों की सजावट तत्कालीन राजसभाओं से ली गयी हो जिनमें समय समय पर विदेशी प्रणिधि वर्ग और व्यापारी उपायन ले कर आते थे। बहुत संभव है कि अमरावती के अर्ध चित्र के विदेशी सिकंदरिया के रहने वाले यूनानी व्यापारी हों जिनका दूसरी सदी में भारत के साथ घनिष्ट व्यापारिक संबंध था।

अजंटा के भित्ति-चित्र में[११८] सामने खड़ा हुआ विदेशी राजा को एक मोती की माला भेंट दे रहा है (आ० ३७२ ए० बी०)। याजदानी के कथनानुसार वह धारीदार कपड़े की बनी नुकीली टोपी और उसी कपड़े का बना कोट पहने है। लेकिन प्लेट से तो पता लगता है कि वह दो कपड़े यानी एक लंबी धारीदार कमीज और एक कोट, जिसका गला कोणाकार है, पहने है। इसके दाहिने हाथ के पास दो कबा बांधने के बंद हैं। उसके पहरावे में कमर पेटी नहीं है। कमर के नीचे की जमीन सफ़ेद है और कोट कमीज की धारियों का पता नहीं चलता। यह संभव है कि सफेद जमीन पाजामे की द्योतक है। इन विदेशियों के

११६—याजदानी, अजंटा, भा० १, पृ० ४६-४८

११७—राजा बंधुम और उनकी कन्याओं की कथा (जातक, ६, २४७) इस तरह दी गयी है। बुद्ध विपस्सी के युग में बंधुमती के राजा बंधुम के पास एक राजा ने उपायन भेजे जिनमें सोने की कीमती माला और चंदन थे। राजा ने चंदन तो अपनी बड़ी कन्या को दे दिया और छोटी को सोने का हार। राजा की अनुमति से इन दोनों ने चंदन और हार विपस्सी को भेंट कर दिया। विपस्सी से बड़ी कन्या ने तो दूसरे जन्म में बुद्ध-माता होने का वर मांगा और छोटी कन्या ने यह वर मांगा कि वह दूसरे जन्म में गले पर सोने के हार से सहित जन्म ले और वह उसके बुद्धत्व प्राप्त करने तक उसके गले में बना रहे। विपस्सी के आशीर्वाद से दोनों की मनोकामनाएं पूरी हुईं।

११८—याजदानी, वही, पृ० ४६-४७

कोट और कमीज पहनने का पता बीच में खड़े हुए एक विदेशी की वेश-भूषा से ठीक ठीक चल जाता है । वह खुले गले का एक हरा कबा पहने है । खुले गले के बीच से कमीज की धारियाँ साफ साफ देख पड़ती हैं । घुटनों तक पहुँचते हुए कोट में जहाँ उसमें चाक पड़ जाती है, उसके बीच से हम घुटनों को ढकते हुए नीचे जाते पाजामे को देख सकते हैं । टोपी की चोटी पर एक फूँदना है । उपायन की थाली लिए हुए तीसरे विदेशी के पहरावे में कोई खास बात नहीं है । दाहिनी ओर द्वार के भीतर घुसते हुए विदेशी दिखलाये गये हैं । सामने वाला विदेशी तो साधारण चोटीदार टोपी, घुटनों तक पहुँचता कबा, पाजामा और नोकदार चोटी वाले बूट पहने है । उसकी दोहरी पेटी से तलवार लटक रही है ।

अब प्रश्न उठता है कि उपरोक्त विदेशी किस देश के वासी हैं ? अजंटा के इस भित्ति-चित्र में ईरानी प्रणिधि-दल का अंकन मानने वालों की राय में तो ये ईरानी होने चाहिए। याजदानी इनको तुर्की नस्ल का मानते हैं[119] । लेकिन इन विदेशियों की शारीरिक गठन, जिसमें सीधी समुन्नत घोणा, सुविभाजित अंगकद और खरहरी दाढ़ी मुख्य है, मध्य एशिया के निवासियों के शारीरिक गठन से जिसका अजंटा के चित्रों में अनेक बार प्रदर्शन हुआ है, नहीं मिलती । ये ईरानी जरा भारी शरीर वाले होते थे और उनके बाल बड़े गझिन होते थे। उनके कपड़े भी मोटे ऊनी कपड़ों के बने होते थे । इन सब बातों को देखते हुए यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तथाकथित ईरानी प्रणिधिदर्श वाले चित्र में आये विदेशी ईरान अथवा मध्य एशिया के निवासी तो नहीं हैं । इनके नुकीले अंग शायद इनकी सामी नस्ल के द्योतक हैं । इन्हें जल्दी में हम अरब भी कह दे सकते हैं, क्योंकि पश्चिमी भारत के साथ अरबों का व्यापारिक संबंध बहुत प्राचीन काल से चला आया है । लेकिन ठीक तौर से विचार करने पर हमें पता लगता है कि यह संभव नहीं है क्योंकि अरब पहरावा जैसा कि हमें प्राचीन अरब सिक्कों और मूर्तियों से पता लगता है एक ढीली कमीज और सिर पर बँधे रूमाल का था, और प्राचीन अरब चोटीदार टोपी कभी नहीं पहनते थे । इन विदेशियों के नस्ल पर प्रकाश डूयरा यूरोपास से मिले एक भित्ति-चित्र में कोनोन और उसके परिवार की पोशाक से पड़ता है । डूयरा यूरोपास मध्य अफ़ात नदी के दाहिने किनारे पर, अंतिओक और सेल्यूसिया के बीच में सिल्यूकस द्वारा २८० ई० पू० में निर्मित मेसीडोनियन उपनिवेश था जो बाद में क्रमशः रोमनों, पार्थियनों और ईरानियों के अधिकार में आता रहा[120] । कोनोन और उसके परिवार की पोशाक में चोटीदार टोपी पूरे बाँह की लंबी कमीज और जूते हैं । कोनोन की दाढ़ी खरहरी है और उसके शरीर के अवयव सामियों की तरह नुकीले । श्री रोस्तोवत्ज़ेफ़[121]

११९—वही, पृ० ४७

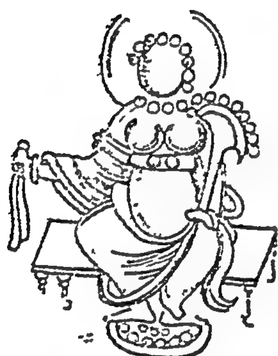
१२०—प्रोसीडिंग्स ऑफ दी ब्रिटिश एकेडमी, भा० १९, पृ० ३१०

१२१—दि सोशियल एंड एकानामिक हिस्ट्री ऑफ दी हेलेनिस्टिक वर्ल्ड, भा० ३ ... ७०७ ऑक्सफोर्ड, १९४१


३७८


३७९

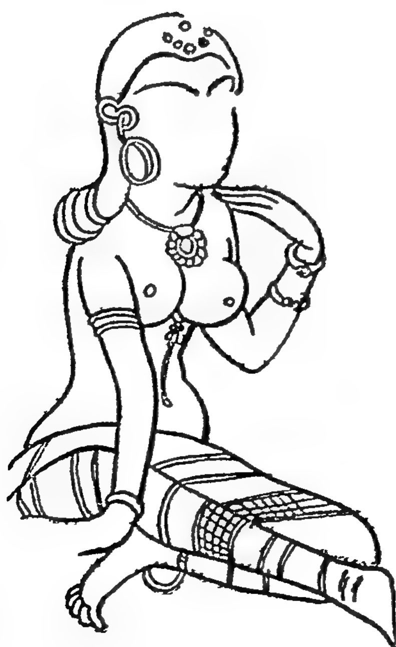

३८०


३८१


३८२


३८३


३८४


३८५


३८६

इस पोशाक को यूनानी-सीरिया (शायद कुछ ईरानी पुट के साथ) का मेल मानते हैं। अजंटा के तथाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग वाले चित्र में विदेशियों की पोशाक कोनोन की उपरोक्त पोशाक से बहुत कुछ मिलती है। लेकिन डूचरा यूरोपास के भित्ति-चित्र पहली शताब्दी ई० स० के हैं और अजंटा के लेण नं० १ के चित्र सातवीं शताब्दी ईस्वी सन् के। समय के इस बड़े अंतर के कारण हम दृढ़तापूर्वक किसी राय पर नहीं पहुंच सकते। फिर भी यह तो निश्चित है कि पूर्वी देशों में पांच सौ वर्षों के बीच पहरावे में कोई गहरे फेरफार होने की संभावना कम है। इसलिए हमें यह कहने में कोई झिझक न होनी चाहिए कि अजंटा में तथाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग वाले चित्र में सीरिया अथवा शाम के व्यापारी थे।

विदेशी टोपियों का वर्णन हम विदेशी वेश-भूषाओं के साथ साथ करते आये हैं, फिर भी कुछ खास तरह की टोपियों का वर्णन हम नीचे कर देते हैं, यथा —

(१) एक कुलाहनुमा टोपी जिसकी चोनी आगे झुकी है और जिसके दोनों फटके ऊपर उठे हैं (आ० ३७३)[१२२], (२) लट्टूदार चोटी और लहरियेदार किनारे वाला खोद (आ० ३७४), (३) दुमचीदार कुलाह (आ० ३७५)।

बच्चों का पहरावा

अजंटा के भित्ति-चित्रों में राजा रानियों की सेवा करते और खेलते हुए बच्चे दिखलाये गये हैं। १७ नं० की लेण के माता पुत्र नाम के प्रसिद्ध भित्ति-चित्र में पुत्र धारीदार धोती और छन्नवीर पहने है। बालों को यथा स्थान रखने के लिए फीतों का उपयोग हुआ है (आ० ३७६)[१२३]। उसी लेण में एक दूसरी जगह एक लड़का धोती और पटका पहने दिखलाया गया है और उसके बाल फीते से बंधे हैं (आ० ३७७)[१२४]।

उसी लेण के एक दूसरे चित्र में (आ० ३७८)[१२५] एक हाथ में पीकदान लिए हुए लड़का जांघिया और कचुक पहरे है और उसके बाल फीते से बंधे हैं। नं० १ की लेण के एक गुफा चित्र में एक बालक कभी जांघिया, पूरे पैर के बूट और फूलों से सजी टोपी पहरे है (आ० ३७९)[१२६]। उसी चित्र में एक लड़का छन्नवीर और कमरपेटी पहने है (आ० ३८०)।

प्रतीत होता है कि बच्चे बड़े चाव से टोपी पहरते थे। एक भित्ति चित्र में लड़का

१२२—ग्रिफिथ, अजटा, भाग १

१२३—हेरिंगम, वही, प्ले० ६, ७

१२४—वही, प्ले० ५, ६

१२५—वही, प्ले० ३, ४

१२६—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की एक प्रतिकृति से

चक्करदार टोपी पहने दिखलाया गया है[127]। लड़के धारीदार बूट अथवा मोजे भी पहनते थे[128]।

गुप्त-युग में रानियों और दूसरी स्त्रियों की वेश-भूषा

समुद्रगुप्त के साधारण भाँति के सिक्कों के पट पर लक्ष्मी देवी एड़ी तक पहुँचती साड़ी और घुटने तक पहुँचता पूरे बाहु का कंचुक पहनती हैं, स्तनों के नीचे एक पट्ट बंधा है जिसकी मुद्धी बायीं ओर दिखलाई गयी है। उनके कंधे चादर से ढके हैं (आ० ३८१)[129]। धनुर्धारी भाँति के सिक्कों में लक्ष्मी धोती और अधबहियाँ कूर्पासक पहने दिखलायी गयी है (आ० ३८२)[130]। कोसम से मिली एक गुप्तकालीन शिवपार्वती की मूर्ति में एक जालीदार टोपी, जिसके दोनों ओर फुल्ले हैं, पहने दिखलायी गयी है (आ० ३८३)[131]

देवगढ़ से मिली नंद-यशोदा की मूर्ति में यशोदा का पहरावा आजकल के बंजारों की पोशाक जैसा है। वह सिर को ढकती हुई एक चादर, भरी बाहु का कुरता जिसके बायीं ओर घुंडी है और लहँगा पहने दिखलायी गयी है (आ० ३८४)[132]। यह वेश-भूषा भारतीय कला में सर्व-प्रथम प्रदर्शित की गयी है और बहुत सम्भव है कि जाट इस पहिरावे को पाँचवीं या छठी शताब्दी में मध्य एशिया से यहाँ लाये। इतने दिन बीत जाने पर भी जाट, बंजारे लमाटी इत्यादि इस पहिरावे को अपनाये हुए हैं।

अजंटा के भित्ति-चित्रों में रानियाँ एड़ी तक पहुँचती साड़ी या धारीदार घघरा पहनती हैं (आ० ३८५)[133]। दर्पण में अपना मुख देखती हुई एक राजकुमारी तीनलड़ी करधनी और सुनहरे किनारों वाले कमरबंद से बंधी साड़ी पहने है (आ० ३८६)[134]। उसकी एक सेविका पेटी से बंधी साड़ी पहने हुए है और उसके कमरबंद के छोर पीछे लटक रहे हैं। इसी चित्र में एक चामरग्राहिणी की साड़ी की सिलवटें बड़ी सुंदरता से बतायी गयी हैं। उसमें कमरबंद की मुद्धी पीठ पर बंधी है। एक दूसरी जगह एक रानी धारीदार घघरी और टोपी अथवा पगड़ी पहने है (आ० ३८७)[135]।

कभी कभी अजंटा के भित्ति-चित्रों में रानियाँ और कुलीन स्त्रियाँ सिले कपड़े भी

१२७—हरिंगम, वही, फ० २, ७
१२८—याजदानी, वही, आ० १, फ० २८बी०, पृ० ८१
१२९—एलेन, वही, फ० १, १-४
१३०—वही, फ० ७, १
१३१—आ० स० आई० एन० रि०, १९१३-१४ फ० ३०, ६
१३२—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, गुप्त आर्ट, फ० १, २, लखनऊ १९४७।
१३३—हेरिंगम, वही, फ० ३, ४
१३४—वही, फ० ५, ६
१३५—वही, फ० २३, २९, चित्र १३

पहने दिखलायी गयी है । १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक रानी महीन कपड़े की बनी बुंदकीदार चोली पहनती है[१३६] । उसी लेण के पद्मपाणि वाले चित्र में एक राजकुमारी झीनी मलमल की चोली और[१३७] एक छोटी घघरी जिसके खानों में पक्षी और सीढ़ियां बनी हैं और जिसके एक मध्य के खाने में लहरिया बनी है, पहने है। रानी के सिर पर कामदार टोपी अथवा मुकुट है (आ० ३८८)[१३८] । एक दूसरी जगह एक रानी हल्के रंग का कंचुक, जिसके किनारेपर जवाहिर बने हैं, पहने है (आ० ३८९)[१३९] । १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक चौकी पर बैठी रानी धारीदार घघरी स्तनपट्ट और चादर पहने है (आ० ३९०)[१४०] । उसी लेण के एक दूसरे चित्र मे एक स्त्री धारीदार घघरी, जिसके ठीक बीच में फुल्लों से सजी एक गोट लगी है, पहने है (आ० ३९१)[१४१] । २ नं० की लेण के एक भित्ति चित्र में एक स्त्री महीन कपड़े की चोली और किनारेदार चंडातक पहने है (आ० ३९२)[१४२] ।

दासियों की वेश-भूषा

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं रानियों और उच्चकोटि की स्त्रियों की वेश-भूषा गहनों को छोड़ कर काफी सादी होती थी, पर आश्चर्य की बात तो यह है कि दासियों की वेश-भूषा में हम काफी चड़क भड़क पाते हैं । दासियां मामूली तौर से साड़ी कमरबंद और कमरपेटी पहनती है[१४३] , पर अनेक दासियां कसीदे के काम की हुई घघरियां और कंचुक भी पहनती हैं।

अजंटा के चित्रों में दासियां अक्सर घुटनों तक पहुंचता पूरे बांह का सफेद कंचुक पहनती हैं (आ० ३९३)[१४४] । वे कभी कभी दुहरे जाकेट भी पहनती हैं[१४५] । १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री कंचुक के ऊपर जाकेट पहने है जो चूंदरी से बना है और सामने से खुला है, पूरे बांह का हरा कंचुक आगे से बंद है (आ० ३९४) । उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक दासी बुंदकीदार छोटे बांह की चोली पहरे है जिसका आगा घुटनों तक पहुंचता है और जिसके ऊपर एक चूंदरी का टुकड़ा पीठ पर बंधा है । इसका सिर रूमाल से ढका है (आ० ३९५)[१४६] । उसी लेण के एक चित्र में एक चामरग्राहिणी नीचे गले का

१३६—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० १७, पृ० २१

१३७—वही, प्ले० २४; हेरिंगम, वही, प्ले० ११, १३, चित्र में चोली नहीं दिखाई देती।

१३८—वही

१३९—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० ६ बी०

१४०—हेरिंगम, वही, प्ले० १४, १६

१४१—वही, प्ले० १५, १७

१४२—याजदानी, वही, भा० २, प्ले० २१, पृ० २०

१४३—हेरिंगम, वही, प्ले० ५, ६, लेण १७

१४४—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० ६ को

१४५—वही, प्ले० १४

१४६—वही, प्ले० १७

डोरीदार फ्राक की तरह कपड़ा पहने हैं (आ० ३९६)[१४७] । उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक चामरग्राहिणी हंस दुकूल का बना कपड़ा पहने हुए है (आ० ३९७)[१४८] । पद्मपाणि वाले चित्र में बोधिसत्व के पीछे खड़ी हुई दासी जो विदेशी नस्ल की मालूम पड़ती है, लंबा कंचुक और विचित्र तरह की कुलाहनुमा टोपी जिसके चार कसीदेदार फटके ऊपर मुड़े हुए हैं, पहने है (आ० ३९८)[१४९] । चामरग्राहिणियाँ साड़ी भी पहनती थीं। १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में राजसिंहासन के नीचे एक चामरग्राहिणी साड़ी, जिसका एक हिस्सा मोड़ कर उसने कंधे पर चादर की तरह डाल रक्खा है, पहने है[१५०] । नं० १७की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक चामरग्राहिणी गले में रूमाल, धारीदार जाँघिया और दुपट्टा, जिसके छोर फहरा रहे हैं, पहने है[१५१] । अजंटा के काशिराज की सभा वाले चित्र में राजा के पीछे खड़ी चामर-ग्राहिणी एक फूल से सुशोभित ऊँची टोपी पहने है (आ० ३९९)[१५२] । उसी चित्र में दायीं ओर मंत्री के पीछे एक चामरग्राहिणी कुलाहनुमा टोपी और छाती ढकती हुई एक पतली चादर पहने है (आ० ४००) ।

मध्यवर्ग की स्त्रियों की वेश-भूषा

चामरग्राहिणियों की वेश-भूषा के उपरोक्त वर्णन से यह न समझ लेना चाहिए कि यह वेश एक खास तरह की सेविकाओं तक ही सीमित था। यह वेश-भूषा हर तरह की राज सेविकाओं में प्रचलित था और विचार करने पर यह पता चलता है कि गुप्त-युग में यही मध्य वर्ग के स्त्रियों की वेश-भूषा थी । राजमहल से सम्बन्धित स्त्रियों की वेश-भूषा नीचे दी जाती है —

। नं० २ की लेण में चंपेय जातक के एक चित्र की पृष्ठिका में खड़ी एक स्त्री पतले नयनों फूलदार कपड़े का बना कंचुक पहने है । दुपट्टे पर के अलंकार तो प्रतिकृति में तो पता नहीं चलता पर मूल चित्र में बिलकुल स्पष्ट है[१५३] ।

ईरानी नस्ल की दासियाँ

१ नं० की लेण के एक मौज मजे के दृश्य में दाहिनी ओर खड़ी एक दासी अपने स्वामी को शराब पिला रही है। वह एक समूर के किनारे वाली लाल टोपी, जिसकी चोटी में पर लगे हैं, पहने है। उसका पूरे बाँह का लंबा कंचुक नारंगी रंग का है और उसके गले, मोहरियों और

१४७—वही प्ल० १७

१४८—वही, प्ल० ,१८

१४९—वही, प्ल० २८०, चित्र १,

१५०—हेरिंगम वही प्ल० २८

१५१—वही प्ल०, प्ल० ० ११

१५२—यजदानी, वही, प्ल० २३

१५३—यजदानी, वही, भा० १, प्ल० २८ बी०, पृ० ४१ एर० गा० १, चित्र २



३९६



३९७



३९८



३९९



४००



४०१



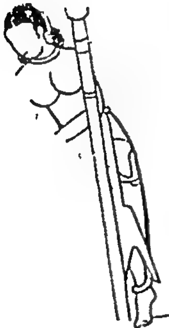
४०२



४०३ ४०५



४०४



४०६



४०७



४०८ ४०९

कंधों पर कसीदे का काम है। लंबे और सफेद घाघरे में हल्के नीले रंग की चूंदनदार झालरें लगी हैं (आ० ४०१)[१५४]। बायीं ओर की दासी का पहरावा कुछ थोड़े फरक के साथ वैसा ही है। इसकी लाल टोपी के साथ एक पीठ पर लहराता रुमाल लगा है जिसका एक सिरा कमर में खोंस दिया गया है। कंचुक के कंधों, मोहरियों और गले पर समूर लगा मालूम पड़ता है। लंबे घाघरे की चुनी झालरें हल्के हरे और नीले रंग की हैं (आ० ४०२) ईरानी सरदार के साथ बैठी हुई स्त्री की वेश-भूषा दासियों के वेश-भूषा सी ही है।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र के मध्य में एक दासी जो अपनी वेश-भूषा से विदेशी मालूम पड़ती है, फुल्लों से अलंकृत कंचुक तथा गोल टोपी, जिसके छज्जे ऊपर मुड़े हैं और जिसके चोटी पर कुब्बा है, पहने है[१५५]। उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक सेविका कंचुक और रुमाल, जिसके दोनों छोरों की गट्ठी गले पर लगी है, पहरे है (आ० ४०३)[१५६]। उसी चित्र में एक दूसरी दासी दो बगल में लगे हुए तस्मों वाली टोपी पहरे है (आ० ४०४)।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक विदेशी दासी काही रंग की एक अधबहियां जाकेट पहने है जो कमर तक चपकी है और जिसका आगा और कोने खुले हुए हैं (आ० ४०५)[१५७]। जाकेट के कपड़ों पर चौफुलियों की नकाशी है। उसका लहंगा शायद धारीदार रेशमी कपड़े से बना है। उसकी खोदनुमा टोपी के किनारे घुंडीदार हैं।

२ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री छोटे बांहों वाली नीले रेशमी कपड़े की बनी कसी चोली, जिसकी मोहरियों पर मोतियों की झालर है, पहने है[१५८]। दक्षिण में अब भी चोली की मुहरियों पर सोने के दानों की लड़ें लगाने की प्रथा है। उसी लेण के एक दूसरे चित्र में हम एक दासी के पहरावे में तीन कपड़े यथा, एक कसी चोली जिसके ऊपर शरीर के अंगों के सुगमता से संचालन के लिए बगलों में ऊपर से नीचे तक कटा हुआ सुंदर कंचुक है, तथा अंग सौष्ठव को दिखलाती एक साड़ी अथवा घघरी है (आ० ४०६)[१५९]। इसी लेण में एक दूसरी जगह हम इसी तरह के एप्रन से मिलने जुलने वस्त्र देख सकते हैं जो सफेद जमीन पर काले सितारों वाले कपड़े से बना है। इसमें शरीर की बगलें दिखलायी देती है[१६०]।

१६ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में पंखा हाकने वाली स्त्री एक स्तनपट्ट और

१५४—याजदानी, वही, प्ले० ३९ ए०

१५५—हेरिंगम, वही, प्ले० २८, ३१

१५६—मुकुल दे, अजंटा एण्ड बाग १४० पृ० के सामने लगा प्लेट

१५७—हेरिंगम, वही, प्ले० ४५, प्ले० ७

१५८—याजदानी, वही, भा० २, प्ले० ७ पृ० ४

१५९—वही, २ प्ले० १७ ए०

१६०—वही, २ प्ले० २५

घघरी पहने है (आ० ४०७)[१६१]। उसी दृश्य में मृतप्राय राजकुमारी के पास बैठी एक दासी अबन्नहिया जाकेट पहने है ।

१६ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक बैठी हुई दासी घुटनो तक पहुचता कसा हुआ अबन्नहिया कचुक पहने है (आ० ४०८)[१६२]। दवा तैयार करती हुई एक दूसरी दासी छाती को ढकता हुआ और शायद और नीचे की ओर जाता हुआ अबबहिया कचुक पहने है, पीछे का निचला भाग अनावृत मालूम पडता है (आ० ४०९) ।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री पारदर्शी कपडे की बनी घघरी और वैकक्ष्य पहने हुए उपवन मे घूम रही है (आ० ४१०)[१६३]।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे बुद्ध की सेवा मे निरत एक स्त्री बिना कधो और बाहो वाला धारीदार कचुक और रत्न जटित छ पहली टोपी पहने है (आ० ४११)[१६४] उसी दृश्य मे एक दूसरी स्त्री चौखूटी टोपी (आ० ४१२) और एक तीसरी स्त्री घाटदार (tiered) टोपी पहने है ।

अजटा में एक जगह जमीन पर पीठ पीछे बैठी एक मध्यवर्ग की स्त्री एक नीचे काले और बिना बाह की चोली पहने है जिसका ऊपरी हिस्सा हरा, पीला, और नीला है और निचला हिस्सा धारीदार (आ० ४१३)[१६५]।

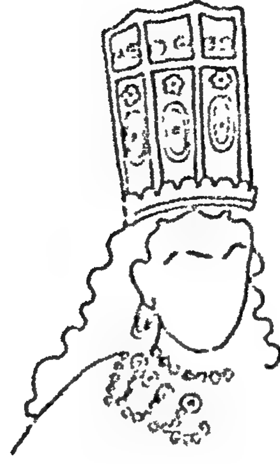
हाथी पर सवार स्त्रियो की वेश-भूषा

बाग के भित्ति-चित्र मे एक जगह हाथी पर सवार स्त्रियां दिखलायी गयी है । पृष्ठिका में हाथी का महावत सुनहरी धारियों वाली जाघिया पहने है । तीन स्त्रियो में एक जो महावत के पीछे बैठी है किमखाब की बनी छोटी बाहो वाली जिसकी मुहरियो पर हरी गोट लगी है पहने है । चोली या आगा स्तनो और पेट को ढकता हुआ नीचे बढता हुआ जाघो पर समाप्त होता है । इसका निचला भाग अर्धवृत्ताकार कटा है और दोनो छोर चोकदार है। यह स्त्री एक धारीदार घघरी भी पहनती है । एप्रन की तरह का उपरोक्त वस्त्र अजटा के भित्ति चित्रो में कई बार आ चुका है । तीसरी स्त्री का पहिरावा पहली स्त्री का सा ही है केवल चोली का निचला भाग अर्धवृत्ताकार न हो कर सादा है । इसका कपडा नीली गिलो पडा हुआ पीला है[१६६]।

१६१—हेरिंगम, वही, प्ले० ३५, ३८
१६२—मुकुल दे, वही
१६३—हेरिंगम, वही, प्ले० ३५, ३९
१६४—वही, प्ले० ४२, ५६
१६५—याजदानी, वही, १, प्ले० ११
१६६—मार्शल, दि बाग केवृस, प्ले० जी०



४१०



४११



४१२



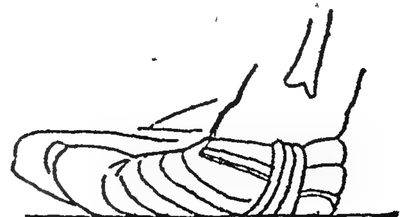
४१३



४१४



४१५ ए०



४१५ बी०



४१६



४१७



४१८



४१९



४२०



४२१

अजंटा में स्त्रियों के शिरोवस्त्र और मुकुट

अजंटा के भित्ति-चित्रो मे प्रायः स्त्रियां नगे सिर होती है, पर रानी और दूसरी उच्च श्रेणी की महिलाये कभी कभी मुकुट पहनती है । कुछ सेविकाये टोपियां भी पहनती है । कभी कभी चित्रकार हमे स्त्रियों के स्थानिक शिरोवस्त्रो की भी झलक दे देते है । १७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक स्त्री, जिनके तन पर यों ही मामूली सा कपड़ा है, एक छपे अथवा कसीदा किये रुमाल से अपना सिर ढंके है[१६७] । २ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री धारीदार और कामदार टोपी पहने है। फीतों की तरह कंधो पर लटकती चिद्धियां शायद टोपी की झालर की प्रतीक है (आ० ४१४)[१६८] । इस तरह का शिरोवस्त्र अजंटा के भित्ति-चित्रो और एलोरा की मूर्तियो मे काफी आता है ।

जंगली स्त्रियों की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक जंगली स्त्री पर्णनिर्मित घघरी पहने दिखलायी गयी है । इस घघरी की बनावट बहुत सादी है, केवल पत्रों सहित टहनियां एक मनकों की तिलड़ी करधनी से आगे पीछे लटका दी गयी है (आ० ३२४)[१६९] ।

ग्रामीण स्त्रियों की वेश-भूषा

अजंटा की कला का संबंध राजमहलो से है और इसमे ग्रामवासियो के चित्र कम ही आते हैं । अजटा के भित्ति-चित्रों मे ग्रामीण स्त्रिया छोटी साड़ी पहनती है । नं० २ की लेण के एक भित्ति-चित्र मे अपने प्रसाधन मे निरत ग्रामीण स्त्रियां सकच्छ धारीदार छोटी साडियां पहनती हैं । उनके बाल या तो एक रुमाल से ढके होते हैं या फीते से बंधे होते हैं (आ० ४१५ ए० बी०)[१७०] ।

नाचने, बजाने और गाने वाली स्त्रियों की वेश-भूषा

ग्वालियर रियासत के पवांय नामक स्थान से मिले हुए एक प्राक्-गुप्त या नाग-युग के उतरंग में एक नृत्य का दृश्य अंकित है । इस अर्ध चित्र मे आयी वेश-भूषा का काफी महत्व बुंदेलखंड मालवा की वेश-भूषा के इतिहास के लिए है। इस दृश्य मे आठ बजाने वाली मध्य मे एक नर्तकी को घेर कर बैठी है । यह नर्तकी घुटनों तक की धोती पीछे लाग मार कर पहने है। साड़ी अथवा धोती पहनने का यह ढंग बुंदेलखंड मे अभी तक प्रचलित है । उसकी छाती बायें कन्धे पर सकरमुद्धी लगे वैकक्ष्य से ढंकी है । उसका केश वेश फेरवटदार है ।

१६७—हेरिंगम, वही, प्ले०३५

१६८—याजदानी, वही, भा० २, प्ले० ३२ तथा ३३वीं

१६९—हेरिंगम, वही, प्ले० २७, २९

१७०—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की प्रतिकृति से

पृष्ठिका में बजानेवालिया तथा नर्तकी तरह तरह की धोतिया और सामने बधने वाली चोलिया पहने है (आ० ४१६)[१७१]।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे मजीरा बजाती हुई एक परियो का गिरोह दिखलाया गया है। वे साडिया और सुदरता से बधे कमरबद पहनती है और उनके दुपट्टे पीछे फडकते है[१७२]। १ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक गायक एक लवा नीला और धारीदार रेशम का बना कचुक पहने है। धारियो के बीच मे हम पेचक, वृषभ और हसो की आलकारिक आकृतिया देखते है (आ० ४१७)[१७३]। ये अलकार पडी पट्टियो मे है जिनके दोनो ओर वृत्तो से सजी पट्टिया है। उसी गरोह मे एक नर्तकी चूदरी का बना कचुक पहनती है।

१ न० की लेण के महाजनक जातक वाले भित्ति-चित्र में नर्तकी एक लवा, गहरे भूरे रग का वृत्तो से अलकृत पूरे बाह का कचुक पहरे है (आ० ४१८)[१७४]। इस कचुक के ऊपर एक एप्रन जैसा वस्त्र है जिसके पक्ष अग सचालन के सुभीते के लिए ऐसे कटे है कि उसके निचले कोने अलग से झूलते है[१७५]। उसका लवा घाघरा बैंगनी, हरी और पीली धारियो से सुसज्जित है जिन की सफेद जमीन पर नग बने है। ढोल बजाने वाली की छाती एक धारीदार स्तनपट्ट से, जिसकी गट्ठी पीछे बधी है और छोर नीचे लटक रहे है, ढकी है। उसकी जाघिया अथवा घघरी के बीच मे एक नग जवाहिर से सुसज्जित पट्टी लगी है (आ० ४१९)।

बाग के एक भित्ति-चित्र में गायिकाओ के दो गिरोह दिखलाये गये है। बायी ओर के गिरोह मे एक नर्तकी को चारो ओर से घेर कर सात बजाने वालियाँ खडी है। नर्तकी एक पूरे बाह का हरियाली लिए हुए घुटने तक पहुचता पीले रग का कचुक, जो वृत्त-बिंदु अलकार से सुसज्जित है, पहने है। कचुक चाकदार है और उसके मुहरियो और चाकदार किनारो पर गोट लगी है। चौडा कोणाकार गला लगता है पीछे से पोशाक की सुन्दरता बढाने के लिए लगा दिया गया था। पाजामा हरियाली लिए हुए पीली धारियो से सुसज्जित है और उसका कचुक से खूब जोड बैठता है (आ० ४२०)[१७६]। उसका सिर सुनहली धारियो वाले एक रुमाल से ढका है। टिपरी बजाने वाली, जो ढोल बजाने वाली के बगल मे खडी है, के बायें कधे पर एक नील और सुनहरी धारियो वाला दोहरा रुमाल है (आ० ४२१)। उसके बगल में खडी एक दूसरी टिपरी बजाने वाली हरी और नीली धारियो वाला घाघरा पहने है। उसका कचुक का बदामा गला खुला है (आ० ४२२)। नर्तकी के दाहिनी ओर खडी तीन टिपरी बजाने

१७१—एन० रि० आ० डि०, ग्वा०, १९३०-३१, प्ले० ८

१७२—हेरिंगम, वही, प्ले० ५७

१७३—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० १० ए

१७४—वही, प्ले० १२-१३

१७५—इस वस्त्र की तुलना सारनाथ मे मिले गुप्तयुग के उतरग पर एक नर्तकी के वस्त्र से कर सकते हैं। साहनी, वही, प्ले० २७

१७६—मार्शल, वही, प्ले० डी०

वालियों में बीच वाली एक आस्मानी रंग की अबवहियां कंचुकी पहने है जो छाती को ढाकती हुई घुटनों तक पहुंचती है। बखरी में हरी धारियां हैं और उनके बीच की सादी पट्टियों पर कटकुट है (आ० ४२३ ए० बी०)।

बजाने वालियों और नर्तकी के दूसरे गरोह में बैठी हुई नर्तकी पहले गरोह की नर्तकी जैसा ही पहरावा पहने है। उसके पीछे खड़ी एक बजानेवाली फाख्तई रंग की चोली जो शायद रुपहले किंखाब की बनी है पहरे है। उसकी एप्रन की काट पहले गिरोह की एक गाने वाली के कंचुकी की काट जैसी है।

बाग के एक ओर भित्ति-चित्र में एक स्त्री गायिकाओं का गिरोह है उसमें सबकी सब चोलियां पहने हैं। बीच वाली गायिका सफेद चित्ती वाली हरी चोली पहने है। उसके बायीं ओर वाली नर्तकी मुकुट पहने है और उसका जूड़ा एक सफेद रूमाल से ढंका है, उसके नीचे कंचुक पर एक एप्रन की शकल वाला वस्त्र है। नर्तकी की बगल वाली गायिका आसमानी रंग की अबवहियां चोली पहने है[१७७]।

कपड़ों पर आये हुए अलंकार

अभी तक तो हम पहरावों पर आयी हुई नक्काशियों का वर्णन करते आए हैं लेकिन अजंटा के भित्ति-चित्रों मे अंकित परदों चोलियों इत्यादि पर भी नक्काशियां मिलती हैं। इनका इसलिए अधिक महत्व है कि गुप्त-युग की कपड़ों पर की नक्काशियां और कहीं देख नहीं पड़ती। नं० १७ की लेण के एक भित्ति-चित्र मे हम दो परदे देखते है। उनमे से एक परदा हरे रंग का है और सफेद बिंदुओं की पंक्तियों से पट्टियों मे विभाजित है। उस पर फूल की नक्काशियां भी बनी है। दूसरे परदे पर गेरुए रंग की धारियां है और सफेद जमीन पर नीले फूलों की पंखड़ियां बनी है (आ० ४२४)[१७८]। इसी लेण के एक दूसरे चित्र में धारीदार कपड़े की गद्दी है जिसमें एक पट्टी छोड़ कर दूसरी पट्टी मे शतरंज का अलंकार बना है (आ० ४२५)[१७९]। उसी लेण के एक तीसरे चित्र में, जिसमें काशिराज सुनहरे हंस की पूजा करते दिखलाये गये है, कई थानों के परदे लटके हैं। काशी बहुत प्राचीन काल से ही कपड़े का केन्द्र था और इसीलिए काशी संबंधी दृश्य में नक्काशीदार कपड़ों का प्रदर्शन कोई आश्चर्यजनक बात नही है। एक टुकड़े में तिरछी पंक्तियों में सजे फुल्ले हैं (आ० ४२६)[१८०]। दूसरे मे खिले फूल है और तीसरे मे पेचकों की लड़ियां है।

१ नं० की लेण के एक महल के चित्र में भी हम कुछ कपड़ों पर बनी नक्काशियां

१७७—वही, प्ले० सी०

१७८—हेरिंगम, वही, प्ले० १, १

१७९—वही, प्ले० २२, २४

१८०—वही, प्ले० २५, २८

पाते है[१८१]। स्त्रिया धारीदार कपडो की बनी घघरियाँ पहने है। एक हल्के रग के कपडे से बनी रानी की घघरी पर कत्थई रग की पडी हुई धारिया है जिन पर तीर के फलो जैसे अलकार, जो पक्षियो के रूढिगत आकार भी हो सकते है, बने है (आ० ४२७)। रानी के ठेठ बायी ओर की स्त्री की घघरी पर वृत्त बने है। पृष्ठिका में बायी ओर खडी चामरग्राहिणी एक हल्के हरे रग की घघरी, जिस पर कत्थई रग की धारिया पडती है, पहने है। उसी लेण के एक महल के चित्र में गद्दिया चौपतियो से सजे कपडे से बनी है (आ० ४२८ ए० बी०)[१८२]। पुन उसी लेण के एक चित्र में दो तकियो पर निम्नलिखित नक्काशियाँ बनी है[१८३]। (१) चापेय को तकिया का कपडा सुनहरा अथवा रुपहला है जिस पर रेशम तथा सुनहले या रुपहले तार से छोटे छोटे सितारे बने है। (२) रानी की गद्दी के गहरे रग के कपडे पर सितारे अथवा चौपतिया बनी है।

२ न० की लेण के एक चित्र में गद्दी के कपडे पर शतरज का अलकार जिसके कोनो पर सितारे है बना है[१८४]।

१८१—वही, प्ले० १४, १६
१८२—वही, प्ले० २८, ३७
१८३—याजदानी, वही, भा० १, पृ० ५९, प्ले० ३४ ए० १
१८४—वही, भा० २, प्ले० १२



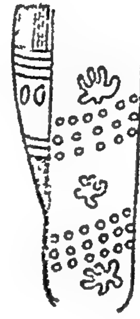
४२२



४२३



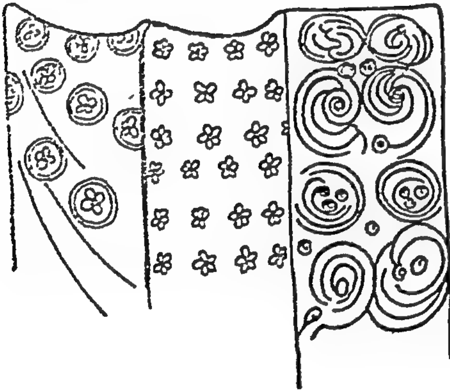
४२३



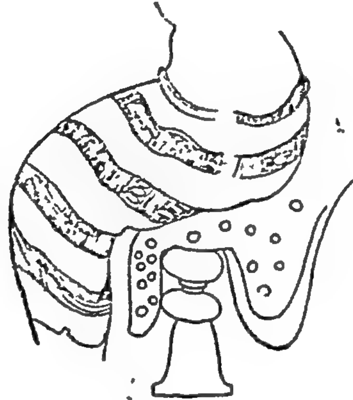
४२४



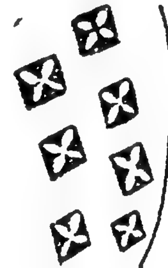
४२५



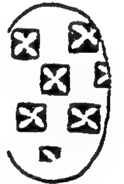
४२६



४२७



४२८



४२८

अनुक्रमणिका

कवर्ग

चवर्ग

टवर्ग

तवर्ग